प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

स्वतन्त्रता दिवस १९४४
मूल्य
ढाई रुपया

मुद्रक
देवीप्रसाद शर्मा,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली

समर्पण

कोई तीन साल की बात है, गाधीजी ने मुझसे कहा "हिन्दी में हुडी और चलण पर एक ऐसी सरल पुस्तक लिखो जो हर कोई आसानी से समझ सके।" उसी आज्ञा का फल यह पुस्तक है।

सारी कहानी दो हिस्सो मे सुनाई गई है। जब लिखना शुरू किया था तब तो सोचा था कि पूर्व भाग मीमासा का होगा और उत्तर भाग रुपए की हुडी का इतिहास होगा और सारा-का-सारा स्वय मै ही लिखूगा। पर मीमासा-भाग समाप्त करते-करते जब इतिहास-भाग के लिए मसाला इकट्ठा करने लगा तब स्मरण आया कि "फेडरेशन आफ इडियन चेम्बर्स आफ कामर्स ऐण्ड इडस्ट्री" के तत्वावधान मे श्रीपारसनाथ जी ने, कुछ साल पहले, रुपए की हुण्डी का एक अच्छा इतिहास अग्रेजी मे लिखा था। इसलिए उपयुक्त यही लगा कि मै श्रीपारसनाथ जी से कहू कि इस ग्रथ का इतिहास-भाग भी वही लिख दे और उसमे यथासम्भव आजतक की बातो का समावेश कर दे।

इस तरह मीमासा-भाग मैने लिखा और इतिहास-भाग श्रीपारसनाथ जी ने।

जिनकी आज्ञा से यह सब कुछ हुआ वे तो फाटक के भीतर बन्द है इसलिए छपने के पहले इसे गाधीजी को दिखा देना असम्भव था। उन्हे बिना दिखाए ही यह छापाखाने मे जा रहा है।

गाधीजी की आज्ञा थी कि इस जटिल विषय को सरल भाषा मे लिखा जाय। हम दोनो ने कोशिश तो यही की है, पर कहा तक सफलता मिली है यह तो पाठक ही बता सकेगे।

जिनकी आज्ञा से यह पुस्तक लिखी गई उन्ही महापुरुष के चरणो मे यह समर्पित की जाती है।

मकर सक्रान्ति, स० २०००]

घनश्यामदास बिडला

(पूर्व भाग)

मीमांसा

विषय-सूची

रुपए की कहानी

१

इस पुस्तक के नाम को सुन कर शायद किसीका यह खयाल हो कि यह चादी के सिक्के की कथा है, जिसमे यह बताया गया है कि चादी पहले खानो मे से कैसे निकली, फिर कैसे गलाई गई, कैसे इसके पात बने, फिर टकसाल मे कैसे रुपए ढाले गए, इत्यादि। बच्चो की बालबोधिनी मे अक्सर ऐसी कथाए आती है। पर यह इस पुस्तक का विषय नही है। इस पुस्तक का सम्बन्ध है रुपए की करामात से।

इसे सुन कर भी शायद कोई हँस पडे। 'कौन है नावाकिफ रुपए की करामात से कि इसकी भी कहानी लिखी जाय?' ऐसा वह कह तो सकता है। पर यह कथन अज्ञान का द्योतक होगा। रुपए की बाहरी ताकत से लोग चाहे अनभिज्ञ न हो, पर रुपए के पीछे कौन-सी शक्ति है जिसने इसे ताकत दी, इस बारे मे आम जनता का ज्ञान बिलकुल अपूर्ण है।

उदाहरणार्थ, आम लोग तो यही मानते है कि रुपए की कीमत स्थिर है। जिन्सो की दर चाहे घटे-बढे, पर रुपए की दर तो सुमेरु की तरह अचल है। यह कथन उतना ही सत्य है जितना कि यह कहना कि "पृथ्वी अचल है। पृथ्वी नही, सूर्य, चाद और तारे ही घूमते है। यदि पृथ्वी घूमती तो रात के समय हमारे पाव ऊपर की ओर और सर नीचे की ओर होता।" कोई नादान ही एसी नादानी की बात कह सकता है। पर जैसे पृथ्वी घूमती है वैसे ही रुपए की कीमत भी घटती और बढती है।

सन् १९२६-२७ मे बडे जोर से एक आन्दोलन हुआ था कि रुपए की दर १ शिलिंग ६ पेस निर्धारित न होकर १ शिलिंग ४ पेस निर्धारित हो। रुपए की दर के सम्बन्ध मे इसी तरह का एक आन्दोलन सन् १९१९ में भी बडे जोर-शोर के साथ चला था। उस समय सरकार ने रुपए की दर

२ शिलिंग निर्धारित की थी। प्रजा-पक्ष के लोगो का कहना था कि यह दर ऊँची है, १ शिलिंग ४ पेंस से ऊँची दर हर्गिज निर्धारित नही होनी चाहिए, इससे ऊँची दर टिक नही सकेगी और ऊँची दर टिकाने की कोशिश से देश को हानि है। हुआ भी अन्त मे ऐसा ही, पर करोडो रुपए खो देने के वाद। इसके पहले भी एक आन्दोलन १८९३ और फिर १८९८ के करीब इसी तरह दर के सम्बन्ध मे चला था।

यह रुपए की दर का झगडा क्या था? रुपए की दर आखिर है क्या? कैसे इसकी निर्धारित दर को टिकाया जाता है? घटा-वढी दर मे क्योकर होती है? घटा-बढी से हानि-लाभ क्या है? क्या कोई घटा-वढी के लिए जिम्मेवार है? कौन इसकी व्यवस्था करता है? समाज मे सिक्के का स्थान क्या है, और प्राचीन सिक्का-प्रथा और अब की सिक्का-प्रथा मे क्या भेद है?

इन प्रश्नो के झमेले मे शायद कोई पडता ही नही। इस विषय को जो समझना चाहते भी है वे यह मान कर सन्तोष करते है, कि यह प्रश्न अर्थ-शास्त्री ही समझ सकते है, यह चीज सर्वसाधारण के बूते के बाहर की है। फिर भी यह सही है कि रुपए की कथा जितनी रोचक है उतनी जटिल नही है। जटिल थोडी-सी है, तो अर्थ-शास्त्रियो ने वडी-बडी पेचीदा शब्दमाला का प्रयोग करके इसे और भी जटिल बना दिया है। सीधी भाषा मे लिखने से यह सम्भव है कि हम इसे सरल बना दे।

पहले पहल तो हमे यह जानना चाहिए कि यह रुपया है क्या?

"भाई भलो न भैयो, सबसे बडो रुपैयो"—ऐसा जब कोई कहता है तब तो रुपए के निश्चित मूल्य को ध्यान मे रख कर यह उक्ति नही कही जाती, क्योकि रुपए की निश्चित निर्धारित मूल्य और "भैयो भाई" के बीच यहा तुलना नही है। यहा तो रुपए को धन का साधारण प्रतीक मान कर उसकी महिमा को बखानना है। और उस महिमा को शास्त्रीय विधि से समझने के लिए हमे गहरे पानी मे उतरना होगा, रुपए के सब पहलुओ पर विचार करना होगा और उन पहलुओ से क्या हानि-लाभ है, समझना होगा।

पर मेरा प्रस्ताव है कि सबसे पहले हम यह समझ लें कि सिक्के के चलण की जरूरत क्या है और कैसे-कैसे इसकी व्यवस्था मे प्रगति हुई।

सिक्के की आवश्यकता

एक पल के लिए हम यह कल्पना करे कि एक ऐसा समाज है जिसमे सिक्का है ही नही, और फिर हम अपने मन मे एक ऐसा नक्शा खेंचे जो हमें यह बताए कि बिना सिक्के के उस समाज का रोजमर्रा की खरीद-फरोख्त और लेन-देन का व्यवहार कैसे चलेगा। मान लीजिए कि ऐसे बेसिक्के के समाज मे एक मनुष्य के पास कुछ अन्न है और कुछ नए वस्त्र भी हैं। दूसरा उसका पडोसी है। उसके पास कुछ कपास है, और कुछ भूसा भी है। एक तीसरे पडोसी के पास घी है, और कुछ तेल भी है।

अब ये तीनो आदमी सुबह उठकर कुछ तरकारी और दूध खरीदने के लिए निकलते है और दूध और तरकारी बेचनेवालो के पास पहुँचते है। दूधवाले को एक ने कहा कि मेरे पास कुछ कपडा है, उसे तुम ले लो और बदले मे मुझे दूध दे दो। इसी तरह तरकारी बेचनेवाले से इसने कहा कि कुछ तरकारी दे दो और बदले मे मुझसे कुछ अन्न ले लो। पर तरकारी बेचनेवाले और दूध बेचनेवाले—दोनो को न कपडा चाहिए, न अन्न चाहिए। इसलिए वे या तो कपडे या अन्न से तरकारी और दूध का बदला करने से इनकार करेगे, या दूध और तरकारी के बदले में इतनी ज्यादा मिकदार अन्न और कपडे की मागेगे कि शायद ये सज्जन बिना दूध और तरकारी के रहना पसन्द करेगे। नतीजा यह होता है कि बिना दूध और तरकारी के ही ये सज्जन वापिस घर लौट आते है।

दूसरे पडोसी के पास कुछ कपास और भूसा है। दूध बेचनेवाले को भूसे की जरूरत है, इसलिए भूसे से दूध का बदला करने पर तो वह राजी हो जाता है। पर कपास उसे नही चाहिए। इसलिए कपास पडोसी के पास ज्यो-की-त्यो अनचाही वस्तु के रूप मे पडी रह जाती है।

इसके बाद ये तीनो पडोसी कुछ मसाला खरीदने निकलते है। मसालेवाले को कुछ कपडे की जरूरत है। इसलिए प्रथम सज्जन का कपडा लेकर

वह वदले मे उसे मसाला दे देता है। पर उसे अन्न नही चाहिए। इसलिए उपरोक्त सज्जन का अन्न ज्यो-का-त्यो उनके पास रह जाता है। अन्य पडोसियो के पास कुछ घी है, तेल है, कपास है और भूसा है। उन्हे भी मसाला लेना है। पर मसालेवाले को न घी की जरूरत है, और न उसे तेल, कपास या भूसा चाहिए। इसलिए वह इन चीजो के वदले मे मसाला देने से इनकार कर जाता है।

अदला-बदली की व्यवस्था से असुविधा

अव प्रथम सज्जन को दूध, तरकारी, मसाला, ये तीन चीजे लेनी थी। उनमे से उन्हे केवल मसाला मिला। इनके पडोसियो को भी तीनो चीजे लेनी थी। उनमे से केवल एक को दूध मिला। अव ये सव लोग इसी खोज मे है कि जो चीजे इनके पास है उनकी चाह वाला कोई दूध, तरकारी और मसालाफरोश मिले तो इन लोगो को अपनी इच्छित वस्तुएँ मिले। और जव तक परस्पर की इस अदला-वदली की चाह वाले मनुष्य नही मिलते तव तक इन्हे अपनी इष्ट वस्तुओ के विना गुजारा करना पडता है। इन लोगो के पास जो चीजे है उनकी जरूर किसी-न-किसी को चाह है। वैसे ही जिनके पास दूध, तरकारी और मसाला है उन्हे भी इन चीजो को देकर दूसरी चीजे लाना है। पर जव तक परस्पर की अदला-वदली वाले मनुष्य नही मिल जाते तव तक सभी को अपनी-अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए वैठे रहना पडता है।

इस उदाहरण के आधार पर आप हजारो वेचनेवालो और हजारो खरीदनेवालो की कल्पना कर सकते है, जिनमे किसीको कोई चीज चाहिए, और किसीके पास कोई चीज आवश्यकता से ज्यादा है, जिसके लिए वह गाहक ढूढ रहा है। इन चीजो की अदला-वदली के लिए ये हजारो आदमी गाहक ढूढते-ढूढते शाम तक थक जायँगे और फिर भी शायद उनका सौदा समय पर समाप्त न होगा। ऐसे समाज मे समय की कितनी वरवादी होगी, कितनी अव्यवस्था होगी, भोले आदमी को चालाक आदमी कैसे ठग लेगा—इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

इसके अलावा ऐसे समाज मे यह जोखिम तो रहेगी ही कि इस अदला-बदली मे वस्तु की जात बिगडेगी, और तोल-जोख मे चीजे बरबाद भी होगी। समय की बरबादी, चीजो की बरबादी और चीजो की जात की बरबादी! और रोज का झगडा, तकरार, ठगी, यह अलग। जैसे बिना राजा के राज्य मे अधेर अवश्यम्भावी है, वैसे ही बिना सिक्के के समाज मे लेनदेन के राज्य मे यह अधेर अनिवार्य हो जाता है।

अधेर को मिटाने के लिए, व्यवस्था-स्थापना के लिए, शाति-रक्षा के लिए जैसे मनुष्यो ने मिल कर मनु मे राज्यसिहासन पर बैठने की प्रार्थना की, और उन्होने राजा बन कर सुख और शातिका सचार किया, वैसे ही किसी समझदार राजा ने समाज के लेनदेन के क्षेत्र मे अराजकता और इस गडबड को मेटने के लिए सिक्के को राज्यसिहासन पर बैठाया।

जैसे बुरी राज्य-प्रणाली, शाति और अमन का स्थापन करके भी, अन्य बातो मे समाज को हानिप्रद हो सकती है, वैसे ही सिक्का-प्रणाली भी यदि बुरी तरह या बदनीयती से सचालित की जाय तो सिक्के के क्षेत्र मे राजकता और नियम होते हुए भी, समाज के लिए हानिकारक साबित हो सकती है।

जो हो, सिक्के की समाज मे क्या आवश्यकता है, इसके बिना कितनी असुविधा हो सकती है, इसका उत्तर ऊपर दिए हुए काल्पनिक उदाहरण से समझ मे आ जायगा।

सिक्का शुरू-शुरू मे कब चला, यह बताना तो असभव है। पर हजारो साल पहले सिक्का था, इतना तो निश्चित है। प्राचीन समय मे सोना, चादी, तावा, पत्थर, कौडी—इनके अलावा और भी वस्तुओ के सिक्के चलते थे।

वैदिक काल मे यहा सोने के सिक्के चलते थे जिनके नाम निष्क, शतमान, सुवर्ण, पाद आदि थे। बाद चादी के सिक्को के नाम मिलते है—जैसे पण, कार्षापण, विशतिक, त्रिशतिक आदि। रुपया शेरशाह का चलाया हुआ बताया जाता है।

सिक्का राजा ने क्यों चलाया ?

यह प्रश्न हो सकता है कि सिक्का राजा ने ही क्यो चलाया ? व्यापारी भी तो चला सकते थे। या तो इन अदला-बदली करनेवालो ने ही क्यो न इसका सचालन किया ? इसका उत्तर कठिन नही है।

यदि लोग जिन्सो की अदला-बदली छोड कर सिक्के से हर चीज की अदला-बदली करे, जैसा कि सिक्के के आविर्भाव के वाद होता आया है, तो यह आवश्यक है कि सिक्के की साख इतनी जबरदस्त होनी चाहिए कि उस साख मे किसीको वहम या शक करने के लिए रत्ती भर भी गुजाइश न हो। यदि हम जिन्सो की जिन्सो से अदला-वदली करते है तो उन अदला-बदली की जानेवाली जिन्सो की जात, उनकी माप-तौल वगैरह, सब चीजो को सामने रख कर कितनी अमुक जिन्स से कितनी दूसरी अमुक जिन्स की अदला-बदली हो, इनका लेने और देनवाले दोनो को विचार करना पडता है। इस विचार में बहस-मुवाहसा तो होता ही है, पर चूंकि किसी भी जिन्स की जात हर हालत मे एक-सी नही बनी रहती, इसलिए जात की निरख की बार-बार जरूरत पडती है। इसमे समय की बरबादी होती है, बकझक होती है—फिर भी लेने-देनेवाले को पूरा सन्तोष नही होता।

इस बकझक को मिटाने के लिए ही तो सिक्का सिंहासन पर बैठा था। इसके माने यह थे कि सिक्के के सफलता से चलने के लिए यह आवश्यक था कि जैसे जिन्सो की जात और माप-तौल के बारे मे रोजमर्रा की निरख की जरूरत पडती थी वैसे कोई जरूरत सिक्के की जात और माप-तौल की निरख के सम्बन्ध मे न रहे—अर्थात् सिक्को मे जो धातु है उसकी जात सदा यकसा हो और उसकी तौल भी सदा यकसा हो। इस निश्चितता से ही तो सिक्के की धाक और साख जमती है। फिर यदि सिक्के की भी जात, माप-तौल पर लेने-देनेवालो के बीच बहस जारी रहे, तो सिक्के के राज्य मे भी वही अराजकता आ जाती है जो जिन्सो की अदला-बदली मे थी, और सिक्का ऐसी हालत मे एक अजा-गल-स्तनवत् निकम्मी चीज बन जाता है।

प्राचीन समय मे जब सिक्के का आविर्भाव हुआ, तब सिक्के की कीमत इसी बुनियाद पर टिकी थी कि इसमे कितनी, कौनसी—और कितनी अच्छाई की धातु है। धातु की कीमत पर ही तो आखिर सिक्के की साख थी। मान लीजिए कि एक सुवर्ण-मुद्रा मे एक तोला खालिस १०० की अच्छाई का सोना है, तो उस मुद्रा की कीमत है—१ मुद्रा=१ तोला १०० की अच्छाई का सोना। जब एक मनुष्य एक गाय १ सुवर्ण मुद्रा में बेचता था तो वह यह मान लेता था कि मैने एक तोला सोना १०० की अच्छाई का पाया है, याने उस मुद्रा की साख इस बात पर थी कि निश्चयात्मक रूप से उसमे १ तोला सुवर्ण है और वह सुवर्ण १०० की अच्छाई का है। गाय बेचनेवाले को इन दो बातो के सम्बन्ध मे कभी कोई शक नही होना चाहिए कि मुद्रा में सोना १ तोला से कम भी हो सकता है, या तो अच्छाई १०० नही, ९८ भी हो सकती है। और यह निश्चय कैसे होगा ?

सीधी बात है। जब तक उस मुद्रा की अच्छाई और वजन के बारे में कोई जोरदार व्यक्ति जामिन नही है तब तक उस मुद्रा की तौल और अच्छाई के बारे मे लोगो के दिल मे पूरा इतमीनान नही हो सकता। राजा को मुद्रा चलाने मे क्यो बीच मे पडना पडा, प्रजा ने ही क्यों नही मुद्रा चला दी, जिन्सो की अदला-बदली करनेवालो ने ही यह कारोबार क्यों न चला लिया, इसका उत्तर अब समझ में आ जायगा।

प्रजा यदि मुद्रा चलावे तो फिर उसमे भी एक ऐसे जबरदस्त व्यक्ति की जरूरत पडेगी, जिसकी साख आसमानी सुलतानी हरकतो से पैदा हुई बेबसी को छोड कर बाकी ध्रुव की तरह अचल हो। यदि लोभवश कोई मुद्रा का सोना कम कर दे या उसकी अच्छाई कम कर दे, तो फिर लोग तो चौपट हो जायँ, और मुद्रा चलानेवाला लोगो की श्रद्धा का अघटित फायदा उठा कर मालामाल हो जाय। और ऐसे धोखेबाज को फिर चाहे कारागार मे ही क्यो न ठेल दिया जाय, पर लोगो को जो चौपट कर दिया गया उस घाटे की पूर्त्ति तो होने से रही।

इस तरह की धोखेबाजी न हो, लोगो की सिक्के की अच्छाई और तौल

मे अटूट श्रद्धा बनी रहे, इस आश्वासन के लिए राजा को छोड अन्य कौन व्यक्ति उपयुक्त हो सकता था ? इसके यह माने नही कि किसी राजा ने ऐसी धोखेबाजी नही की है। इतिहास मे ऐसे उदाहरण मिलते है सही, जहा राजा ने भी लोभ का सवरण न करके ऐसा अघटित कर्म किया। पर ऐसे उदाहरण कम है। और यह बात भी है कि राजा के द्वारा इस तरह की गई धोखेबाजी के कारण जो क्षति हुई हो उसकी पूर्त्ति की सभावना है। साधारण नागरिक तो धोखा देकर नौ-दो-ग्यारह भी हो सकता है। इसलिए इस काम के भार के लिए स्वभावतया ही राजा सर्वश्रेष्ठ माना गया।

कई मुल्को मे कई ऐसे सेठ भी हुए है जिनकी साख को लोगो ने राजा की साख से कही ऊचा माना। यहा भी ईस्ट इडिया कपनी के जमाने मे जगत् सेठ को मुद्रा चलाने का अधिकार था, और वर्तमान समय में तो प्राय हर मुल्क मे सिक्के की व्यवस्था के लिए एक विशेष बेक के हाथ मे ही सिक्के-सम्बन्धी सारा कारोबार चला गया है। पर शुरू-शुरू मे यह सभव नही था कि सिक्के की व्यवस्था किसी साधारण नागरिक के हाथ मे हो। इसलिए राजा के हाथ मे इस व्यवस्था का होना अनिवार्य हो गया।

इतिहास-लेखक एक युग को सुवर्ण-युग के नाम से पुकारते है। इसके बाद का युग रौप्य-युग हुआ, पीछे ताम्र-युग और अन्त मे लौह-युग आया। सुवर्ण पृथ्वी के गर्भ मे शुद्ध अवस्था मे अन्य किसी धातु से अमिश्र मिलता है, और चादी अन्य धातुओ से मिश्रित अवस्था मे मिलती है। इसलिए चादी एक यग मे सुवर्ण की अपेक्षा दुर्लभ भी मानी जाती थी। यही कारण था कि उस प्राचीन काल मे चादी और ताम्र सुवर्ण से कही ज्यादा मूल्यवान माने जाते थे। जो हो, आज तो सोने और चादी के सिक्के ही अधिक लोकप्रिय है, और इस लोकप्रियता के पीछे दृढ कारण भी है।

सिक्का सोने-चाँदी का क्यों ?

अन्य किसी धातु या जिन्स के भी सिक्के क़ायम किए जा सकते है। मसलन, एक सेर गेहूँ का भी सिक्का हो सकता है। पर इसमे कितनी भारी अडचने है, यह सहज ही समझ मे आ जायगा। यदि एक सेर गेहूँ का

एक सिक्का चलाया जाय, तो फिर १-१ सेर गेहूँ को अलग-अलग कोथ-लियो मे हमे भर देना पडेगा। उसमे काम तो काफी वढ ही जायगा, पर जो साल भर की पुरानी कोथली होगी उसमे से, यदि वह फट गई तो, कुछ गेहूँ निकल भी जायेगें। इसलिए तौल का कोई भरोसा नही। गेहूँ की जात भी २-४ साल के बाद कोथली मे खराब हो सकती है। इसलिए नई कोथली जिसमे नया गेहूँ होगा, उसे तो लोग स्वीकार कर लेगे, पर पुरानी कोथली को कोई छूएगा भी नही, क्योकि उसके गेहूँ की जात के सम्बन्ध मे भी कोई खातिर नही। नतीजा यह होगा कि नई कोथली और पुरानी कोथली, याने नए और पुराने सिक्के, की कीमत मे फर्क पड जायगा। पुरानी कोथली, अर्थात् पुराने गेहूँ के सिक्के, का बट्टा लगने लगेगा—अर्थात उसकी कीमत नई के मुकाबिले मे नीची होगी। इसके अलावा गेहूँ की कोथली का सिक्का वजनी भी होगा। १०० सिक्को को एक साथ उठाना करीब करीब असम्भव-सा होगा। और भी अडचन है। कोथलियो का कपडा किसी काम मे न आकर बरबाद होगा, वह फिजूलखर्ची अलग। मेरा खयाल है कि इसमे कितनी असुविधा हो सकती है, इसे विस्तार से समझाने की जरूरत ही नही है। बताना तो यह है, कि यदि हम सुविधा-असुविधा का खयाल छोड दे, और कीमत की स्थिरता का खयाल भी छोड दे, तो सिक्का किसी भी चीज* का हो सकता है। ऐसे असुविधावाले सिक्को का हमे प्राचीन समय मे वर्णन भी मिलता है।

---

*सस्कृत व्याकरण में 'पचगु', 'पचाश्वा', 'मौद्गिकम्' जैसे शब्द मिलते है जिनसे पता चलता है कि प्राचीन समय में यहा पशु, अनाज आदि से चीजें 'खरीदी' जाती थी। अग्रेजी में pecuniary शब्द "आर्थिक" के अर्थ में व्यवहृत होता है। इसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के pecunia शब्द से है, जिसका अर्थ है ढोर, अर्थात् गाय-बैल। कहते है कि महाकवि होमर ने जब कभी किसी चीज की कीमत बताई है तब बैलो की सख्या में—सो भारत की तरह ग्रीस में भी मूल्य मापने का काम इन पशुओ से लिया जाता था।

प्राचीन काल में धनिको के धन की माप भी पशुओ से की जाती

सिक्का मेहनत की बुनियाद पर भी रचा जा सकता है। मसलन, एक मनुष्य की मेहनत के नोट निकाले जा सकते है, जो उस नोट के स्वामी को यह अधिकार देगे कि वह नोट छापनेवाली बैंक या उसकी कोई व्यवस्था करनेवाली सस्था से एक मनुष्य की मजदूरी चाहे जब आह्वान कर ले।

पर इसमे भी असुविधा होगी। एक मनुष्य की मजदूरी—वह मोटे की या दुबले की, जवान की या बूढे की ? रोगी की या नीरोग की ? इन सब असुविधाओ को दूर करने के लिए स्वाभाविक ही यह तय पाया कि सिक्का ऐसी वस्तु का हो, जो ज्यादा सुलभ न हो अर्थात् अति अधिक मिकदार मे जिस वस्तु की पैदाइश न हो, जो जल्दी न छीजे, अर्थात् जल्दी से घिस न जाय, जिसकी जात मे, सिक्का पुराना होने पर भी, कोई अन्तर न पडे, और जिसकी जात अमुक अच्छाई की जाच-पडताल के बाद निश्चयात्मक रूप से कायम की जा सके, जिसकी थोडी-सी मिकदार मे कीमत बडी हो, और जिसके, चाहे जितने टुकडे किए जायँ, प्रत्येक टुकडे की वजन के हिसाब से कीमत बनी रहे।

और चूकि ऐसी वस्तुएँ सोना और चादी ही थी, प्रधान सिक्के की रचना इन्ही धातुओ पर की गई। हीरे, पन्ने और अन्य रत्नो की रचना से थोडे से वजन की काफी कीमत हो जाती पर इनकी जात मे इतना अन्तर होता है कि एक ही हीरा लाख रुपए रत्ती का भी हो सकता है, और सौ रुपए रत्ती का भी। सो सिक्के के वास्ते रत्न भी उपयुक्त नही थे। इसलिए वरमाल सोने-चादी के गले मे ही पडी।

थी। अमुक पुरुष के पास इतनी करोड गाएँ थीं, इसका तात्पर्य इतना ही है कि इतनी करोड गायो की उसके पास सम्पत्ति थी। अमुक ने इतनी करोड गाए दान में दीं, यह भी दान की माप का द्योतक है। इससे यह पता लगता है कि जो स्थान आज सोने का या नोट का है वह किसी समय पशुओ का रहा होगा।

२

इस सिलसिले मे हमे नोटो की रचना और उनकी व्यवस्था के सम्बन्ध मे भी कुछ जान लेना जरूरी है।

सिक्का, जैसा कि हमने पहले बताया है, अपनी कीमत स्वय लेकर चलता है। एक सुवर्ण-मुद्रा १ तोला खालिस १०० की अच्छाई के सोने की है, तो वह कीमत उस मुद्रा के भीतर ही भरी पडी है। पर नोट मे यह बात नही है। नोट एक दृष्टि से तो महज कागज का टुकडा है। कागज के टुकडे की कीमत कैसी ? पर नोट की कीमत इसलिए है कि हमे आवश्यकता हो तो नोट निकालनेवाली सस्था से हम चाहे जब उस नोट की कीमत तलब कर सकते है।

आजकल तो सभी मुल्को की नोट निकालनेवाली सस्थाओ या प्रसारक कोठियो (Reserve Banks) ने नोट की स्वयसिद्ध मुद्रा से अदला-बदली बन्द कर दी है। पर इससे नोट की साख मे, देखने मे, कोई अन्तर नही हुआ है, क्योकि नोट के बदले मे जिन्स या श्रम खरीदने मे कोई कठिनाई नही है। नोट की जो कीमत है वह इसी आश्वासन पर व्यवस्थित है कि उसकी जिन्स या श्रम से अदला-बदली मे कोई दिक्कत नही है, पर किसी कारणवश यदि नोट निकालनेवाली सस्था नेस्तनाबूद हो जाय या उस सस्था का दिवाला निकल जाय, तो फिर नोट की कीमत अखबार के टुकडे से भी गई-बीती ! इसके विपरीत, मुद्रा की कीमत चूंकि मुद्रा के भीतर ही है, इसलिए मुद्रा निकालनेवाला राजा हतश्री हो जाय या सिहासनच्युत हो जाय तो भी मुद्रा के मालिक को कोई क्षति न होगी।

शायद नोट और सिक्के की तुलना के लिए साक्षात् विष्णु और विष्णु की मूर्त्ति की तुलना कुछ अश तक उपयुक्त हो सकती है। साक्षात् विष्णु स्वय विष्णु है,और पाषाण निरा पत्थर है। पर पत्थर की मूर्त्ति भक्त की दृष्टि

चले तो प्रतीक मुद्रा का स्थान चेक को मिला। सिक्के की प्रगति की यह कथा काफी दिलचस्प है।

हमारे देश मे तो बडे शहरो को छोड कर चेक का चलण कही नही है। चेक तो वही चल सकता है जहा प्रथम तो बैंक हो, दूसरे जहा लेन-देन का काम भी ज्यादा हो और बडी-बडी रकमो का लेन-देन हो। चूकि गावो मे यह स्थिति नही है, इसलिए हमारे देश मे तो, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, चेक का चलण बडे शहरो तक ही सीमित है, और नोटो का कस्बो और बडे गावो तक। छोटे गावो मे तो चादी और तावे के सिक्को का ही चलण है। पर ये चादी-तावे के सिक्के भी तो, जैसा कि पहले वताया जा चुका है, एक तरह के धातु पर छपे नोट—प्रतीक-मुद्रा ही है, क्योकि उनकी स्वयसिद्ध कीमत का उनकी निर्धारित कीमत से कोई मेल नही खाता।

नोट से लाभ

प्रतीक मुद्रा-प्रणाली के लाभ तो स्पष्ट है। वजन कम होता है। लेन-देन मे, गिनती करने मे, समय की वचत होती है। मुद्रा हाथो मे से रोज-रोज निकले, उससे धातु की जो छीजत होती है उसकी वचत होती है। पर एक और भी लाभ है। मान लीजिए, सारे देश के लेन-देन के कारोबार के लिए १० करोड सुवर्ण-मुद्राओ की जरूरत है। यदि प्रति मुद्रा की ४० रुपए कीमत मान ले, तो इस हिसाव से ४०० करोड़ रुपए के सोने की, देश के लेन-देन की सहूलियत के लिए जरूरत होगी। पर यदि नोटो का चलण है तो यही काम वहुत थोडे सोने से चल जाता है। आखिर नोट का काम तो इतना ही है कि वह उतनी निर्धारित मुद्राओ का स्वामित्व नोट के स्वामी को सौपता है।

यह सही है कि आज ऐसा कोई मुल्क नही है जहा नोट के वदले बैंक सुवर्ण-मुद्रा दे दे। पर इससे नित्य-प्रति के व्यवहार मे कोई वाधा नही पहुँची है। यदि सुवर्ण-मुद्रा भी हमे नोटो के वदले मे मिलती तो उस मुद्रा का उपयोग भी हम जिन्स, सम्पत्ति या मनुष्य-श्रम

खरीदने मे ही तो करते। और जब तक किसी मुल्क की साख सुरक्षित है तब तक सुवर्ण-मुद्रा प्रचलित न हो तो भी नोट क्रय-विक्रय मे वही काम देता है, जो काम सुवर्ण-मुद्रा देती। इसलिए सुवर्ण-मुद्रा का अभाव किसीको नही खटकता। साख सुरक्षित है या नही, इसका पता भी तो, हमारे नोट की कीमत विदेशो मे क्या है, इसीसे लगता है। इस प्रश्न का विवेचन तो आगे चल कर करेगे, यहा तो मुद्रा के बजाय नोट-चलण मे क्या-क्या किफायत है उसका दिग्दर्शन कराना है।

बताना तो यह था कि नोट का क्षेत्र इतना ही है, कि वह उतनी निर्धारित मुद्राओ का स्वामित्व नोट के स्वामी को सौंपता है। मसलन, आपके पास दस सुवर्ण-मुद्रा का नोट है। (यह उदाहरण-मात्र है क्योकि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, आज किसी भी मुल्क मे स्वयसिद्ध मुद्रा का चलण नही है) तो आप चाहे जब नोठ-प्रसार करनेवाली बैक या सस्था के पास जाकर अपना नोट देकर उसके बदले मे १० सुवर्ण-मुद्राए माग सकते है, जिसके कि आप अधिकारी है, और वह बैक आपको १० सुवर्ण-मुद्राए दे देगी, जिसके लिए कि वह बाध्य है।

पर ऐसे किसी भी साधारण समय की कल्पना नही की जा सकती जबकि तमाम नोटवाले अपने नोट बैक को पेश करके बैक से नोटो के बदले मे मुद्रा मागेगे। यदि देश के कारोबार के लिए १० करोड सुवर्ण-मुद्राओ के चलण की जरूरत है, और लोग अपनी सुविधा के कारण मुद्राओ से नही, पर प्रतीक मुद्रा अर्थात् नोटो से अपना काम चलाना चाहते है, तो यह स्पष्ट है कि जब तक नोट चलानेवाली बैक की साख साबित है तब तक कोई समझदार व्यक्ति नोट को भुना कर मुद्रा मागने के झझट मे न पडेगा। इसलिए बैक सावधानी के लिए १० करोड सुवर्ण-मुद्राओ के प्रतीको के पीछे केवल ३ करोड सुवर्ण-मुद्रा अपने कोष मे रखे तो भी पर्याप्त है।

इसके माने यह हुए कि यदि हम अपना कारोबार केवल सुवर्ण-मुद्राओ से ही चलाना चाहते है तब जहा १० करोड सुवर्ण मुद्राओ के लिए ४०० करोड़ रुपए के सोने की जरूरत होगी वहा, यदि हम नोट-

प्रथा को अपना लें तो, कुल १२० करोड रुपए के सोने से ही काम चल जायगा—अर्थात बेंक १२० करोड रुपए के सोने के आधार पर आसानी से ४०० करोड रुपए की कीमत की प्रतीक-मुद्राओ का प्रसार कर देगी। बैंक को सोने मे रोकना पडा कुल १२० करोड रुपया। नोट-प्रसार किए कुल ४०० करोड रुपए की कीमत के। नोट-प्रसारिणी बैंक का तलपट ऐसी हालत मे इस प्रकार होगा--

४०० करोड—नोट चलण मे डाले, उसकी कीमत आई	१२० करोड--सोना खरीदा २८० करोड—व्याज पर रोका
४०० करोड	४०० करोड

इस तरह २८० करोड रुपए का नाणा बेब्याज जो बैंक को मिल गया उसे लोगो को उधार देकर बैंक मुनाफा बना खाएगी। देश के लिए यह किफायतसारी अवश्य ही ग्राह्य चीज है। इस तरह नोट ने अपने गुणो से समाज को मुग्ध करके अपना सिक्का जमा लिया।

नोट से हानि

पर "जड चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार।" नोटो मे गुण है तो अवगुण भी है। एक अवगुण तो प्रत्यक्ष है। चूकि स्वयसिद्ध मुद्रा की कीमत तो इसके गर्भ मे ही है और प्रतीक-मुद्रा (नोट) की कीमत तो, जब तक प्रतीक-मुद्रा का प्रसार करनेवाली बैंक सलामत है, तभी तक कायम है, इसलिए राज-दुराजी के जमाने मे नोटो मे लोग सहज ही विश्वास खो बैठते है और स्वयसिद्ध सिक्को का सग्रह करके उन्हे दबाने लगते है।

इस महायुद्ध मे पोलैण्ड, फ्रास वगैरह मुल्को मे जहा-जहा राज गिरने की सम्भावना हुई वहा लोग नोटो मे विश्वास खो बैठे। पर चूकि स्वय-सिद्ध मुद्रा का इन मुल्को मे चलण नही था इसलिए लोग जवाहरात या सोना—ऐसी वस्तुओ का सग्रह करने लगे, या ऐसी वस्तुओ को लेकर देश के बाहर भागने लगे। यहा भी, जब फ्रास की हार हुई, उस जमाने मे लोगो ने

रुपयो का बुरी तरह संग्रह करना शुरू किया। यो तो जैसा कि पहले बताया जा चुका है, रुपए का सिक्का भी एक तरह का नोट ही था, क्योकि इसकी चादी की कीमत तो कुल ९ आने २॥ पाई थी। पर रुपए के सिक्के के पक्ष मे कुछ बाते थी। आखिर इसकी स्वयसिद्ध कीमत कागज के नोट की कीमत से तो ज्यादा ही थी। इसलिए लोगो ने घबडाहट मे इसका सग्रह करना शुरू कर दिया।

यह सग्रह करने का मर्ज यहा तक बढा कि छोटी रकमो के लेन-देन के लिए रुपए का सिक्का कुछ दिनो के लिए दुर्लभ-सा होने लगा था। सिक्को की कोई कमी तो न थी, पर जब लोग भय से पागल-से हो जाते है उस समय बुद्धि से काम नही लिया जाता। इसलिए भयभीत लोगो ने चादी के रुपयो की घरोहर इकट्ठी करके सिक्के का अकाल-सा पैदा कर दिया और अन्त में इस कठिनाई को दूर करने के लिए सरकार ने एक रुपए का नोट भी छापा और सिक्के दबा बैठने के विरुद्ध कानून भी बनाया। इस बीच मे लोगो मे भी विश्वास का पुन सचार होने लगा। पर भय के या अविश्वास के जमाने मे स्वयसिद्ध मुद्रा की या तो चादी के रुपए-जैसी अर्धस्वयसिद्ध मुद्रा की साख तो कैसे सुरक्षित रहती है और प्रतीक-मुद्रा की साख कैसे नेस्तनाबूद होने लगती है, इसका आभास इस और पिछले महायुद्ध के इतिहास से मिल सकता है।

इस दृष्टि से हम कह सकते है कि स्वयसिद्ध मुद्रा के मुकाबिले मे प्रतीक-मुद्रा का सबसे बडा दोष तो यह है कि प्रतीक-मुद्रा की कीमत के स्थायित्व के बारे मे या सुरक्षितता के बारे मे घबडाहट के जमाने मे पूरा यकीन तो कभी हो ही नही सकता। पर क्या इस सुरक्षितता के लिए इतनी बडी कीमत चुकानी वाजिब होगी, कि स्वयसिद्ध मुद्रा का ही चलण रख कर हम सुवर्ण-मुद्राओ के भार का वहन करे, उनके गिनने-सम्हालने के झझट मे समय खोवे और उनकी छीजत—जो मुल्क के धन की छीजत होगी—उसे बरदाश्त करे? और इसके अलावा, जो काम १२० करोड रुपए के सोने से चल सकता है उसके लिए, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ४०० करोड रुपए की रकम को सोने में फसा के रखे?

राज-दुराजी में अरक्षितता

आज हमारे देश मे नोटो का कुल चलण प्राय ८०० करोड रुपए की कीमत का होगा। पर कुछ समय पहले यह चलण २५० करोड रुपए का था। इसके माने यह है कि यदि रिजर्व बैंक, जो इन नोटो का प्रसार करनेवाली बैंक है, उसकी साख को ठेस पहुँचता तो इन २५० करोड के नोटो की कीमत को खतरा था।

पर ऐसी स्थिति की हम कल्पना करे तब तो यह जानना चाहिए कि इससे कही ज्यादा खतरा तो सरकारी प्रोमिसरी नोटो की रकम को हो सकता था और इन सरकारी प्रोमिसरी नोटो मे तो प्रजा की कुल रकम लगभग १००० करोड के लगी हुई थी—अर्थात् नोटो की २५० करोड की कीमत से चौगुनी रकम तो प्रोमिसरी नोटो मे लगी हुई थी। इससे पता लगेगा कि नोटो की सुरक्षितता की जब हम बात करते है तब हम भूल जाते है कि किसी भी राष्ट्र के पतन के कारण होनेवाली क्षति से बचने का तो कोई रामबाण उपाय है ही नही, और उस होनेवाली सारी क्षति मे, नोटो की कीमत नेस्तनाबूद हो जाने के कारण होनेवाली क्षति का स्थान अपेक्षाकृत छोटा है।

नोट का स्वामी यह सहज ही कह सकता है कि सारी क्षति क्या होगी इससे मुझे क्या मतलब—मुझे तो अपने नोट की कीमत के नाश से होने वाली क्षति का ही दर्द है। पर इसका उत्तर तो यह है कि देश के सिक्के की नीति व्यक्ति की सुविधा के लिए नही, पर समष्टि की सुविधा के लिए बनाई जाती है, और इस दृष्टि से स्वयसिद्ध मुद्रा से प्रत्येक मुद्रा की सुरक्षितता कम होने पर भी देश के लिए प्रतीक-मुद्राशैली का त्याग और केवल स्वयसिद्ध मुद्रा की नीति का ग्रहण बेशी खर्चीला होगा।

३

प्रतीक-मुद्राशैली म एक दोष और है---यदि उसे दोष कहा जाय तो---और उस दोष का वर्णन करने से पहले कुछ तत्सम्बन्धी वातो का विवेचन करना आवश्यक जान पडता है।

हमने वताया है कि नोट-प्रसार करनेवाली सस्था यदि ४०० करोड रुपयो के पीछे १२० करोड रुपए का भी सोना रखे तो पर्याप्त होगा, क्योकि जव तक वैंक की साख अक्षत है तव तक कौन नोट को भुना कर वदले में सुवर्ण-मुद्रा मागेगा ? इसलिए नोट की धाक अशत तो जो नोटो के पीछे सोना पडा है उस पर, वाकी नोट-प्रसारक वैंक की दक्षता, सावधानी और नेकनीयती पर है।

मान लीजिए कि १२० करोड के सोने के मद्दे ४०० करोड रुपए के नोटो के वजाय वैंक ने किसी भी कारणवश, अपनी मर्जी से या वाध्य होकर, ८००करोड रुपए के नोट चलणमे डाल दिए, तो जो सोने की मिकदार पहले प्रतिशत नोटो के पीछे ३० की थी वह सिर्फ १५ की रह गई। ऐसी हालत मे सहज ही नोटो की साख मे लोगो को कुछ शक होने लगेगा। और, मान लीजिए कि यदि नोट-प्रसारक वैंक ने ८०० के वजाय उसी १२० करोड रुपए की कीमत के सोने की पू जी के वल पर १६०० करोड के नोट चलण मे डाल दिए, तव तो फिर नोटो की साख जोरो से डूवने लगेगी। और यदि १६०० करोड के वजाय ३२०० करोड के नोट चलण मे डाल दिए तव तो लोगो मे घवराहट फैल जायगी और लोग नोटो से दूर भागने लगेगे, क्योकि ३२०० करोड के पीछे यदि कुल १२० करोड का ही सोना हो तव तो प्रति सौ नोट के पीछे केवल ३॥। रुपए का ही सोना रहा,जो वैंक की देनदारी को देखते हुए अत्यन्त अल्प कहा जायगा।

यह अनहोना-सा उदाहरण जानवूझ कर ही दिया है। कोई समझदार वैंक जानवूझ कर सुख-शाति के जमाने मे ऐसी वेहूदी हद तक नही जाती।

पर असाधारण समय में ऐसी घटनाए कई मुल्को म हुई भी है। भारतवर्ष की ही बात लीजिए। इस समय जहा नोट प्राय ८०० करोड रुपए के है वहा सोना कुल ४४ करोड रुपए का है।

नोटो का प्रसार करना आसान काम है। उसके लिए जरूरत है बस कुछ कागज की। टेढे समय मे या तो सरकार को कोई कर्ज देनेवाला नही मिलता, या मिलता भी है तो बहुत कडे सूद पर। इसलिए कई बार ऐसा हुआ है कि सकटापन्न सरकार ने अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति न तो टैक्स लगा कर की, न कर्ज लेकर—उसने बस नोट छापनेवाली मशीनो को दिन-रात चला कर अपना मतलब पूरा किया। प्राय ऐसा भी हुआ है कि जिस सरकार ने यह तरीका अख्तियार किया उससे औचित्य की सीमा का उल्लघन हुए बिना न रह सका—और वह इतनी दूर आगे बढ गई कि उसका दिवाला निकल के ही रहा।

फ्रास की इतिहासप्रसिद्ध क्राति के समय वहा कुछ नोट जारी किए गए थे, जिन्हे assignat कहते थे। महन्त-मठाधीशो की जो जायदाद जब्त कर ली गई थी उसीकी पुश्ती या आधार पर ये नोट जारी किए गए थे। मगर उस जायदाद की कीमत से कही अधिक के नोट निकाल दिए गए और इसका नतीजा यह हुआ कि इनकी कीमत बहुत नीचे गिर गई। कुछ काल बाद सरकार को मजबूर होकर इन नोटो को चलण से हटा लेना पडा।

२४ साल पहले रूस मे, कम्यूनिस्ट क्राति के समय भी ऐसी ही बात हुई। वहा चलण मे जो सिक्का था उसका नाम रूबल (Rouble) था। क्राति से पहले एक रूबल की कीमत प्राय २ शिलिंग अर्थात् १।=) थी। मगर बाद इसकी कीमत यहा तक गिर गई, कि कुछ समय तक रूस मे आध सेर रोटी के २५० रूबल और आध सेर चीनी के ९०० रूबल लगते थे।

फुलावट और गिरावट

इस तरह थोडे सोने की पूजी पर बेहद परिमाण मे नोट निकालने की नीति को अग्रेजी मे Inflationary policy कहते है। हम इस अग्रेजी

परिभाषा के लिए "चलण की फुलावटी नीति"–इस मुहाविरे का प्रयोग कर सकते है। इसी तरह किसी कारणवश नोट-प्रसारक बैंक यह भी कर सकती है कि १२० करोड की कीमत के सोने के मद्दे ४०० करोड रुपए की कीमत के नोट चलण मे न रख कर केवल २०० करोड रुपए के नोट ही चलण मे रखे, या तो और भी घटा कर १२० करोड के ही रखे। इस नीति को अंग्रेजी मे Deflationary policy कहते है। हिन्दी मे हम इसे "चलण की गिरावटी नीति" कह सकते है।

इस फुलावटी नीति या गिरावटी नीति का क्यो प्रयोग किया जाता है, इसका विवेचन भी आवश्यक है। पर यह विवेचन करने के पहले, नोट कैसे अधिक परिमाण मे चलण मे डाल करके फुलावट पैदा की जाती है और कैसे नोट कम करके गिरावट की जाती है, इस प्रयोग को भी हम समझ ले।

कोई नोट-प्रसारक बैंक बिना सरकार की मर्जी के तो फुलावट या गिरावट ज्यादा हद तक कर ही नही सकती। इसलिए जब सरकारी मर्जी से यह काम होता है तो सरकारी सहयोग भी अपने-आप मिल जाता है। ऐसी हालत मे यदि फलावटी नीति का प्रयोग करना होता है तो एक तरीका तो यह है कि सरकार जितना खर्च करती है उससे कर कम उगाहनी है—याने, मान लीजिए कि सरकार का खर्चा सालाना १००० करोड है, तो कर लगा कर सरकार ने उगाहा केवल ७५० करोड, और बाकी जो २५० करोड का घाटा है उसको वैसा-का-वैसा रखा, अर्थात् कर वसूल करके उसकी पूर्त्ति नही की। नतीजा यह होता है कि कोष मे आया ७५० करोड, और कोष से निकला १००० करोड। यह २५० करोड जो कोष से बेशी निकला वह सरकार ने कहा से निकाला ? बस, सरकार ने सीधा-सा काम किया। उसने २५० करोड के नोट छापकर, या तो बैंक से नोट छपवाकर उसे उधार लेकर लोगो को चुका दिया, और इस तरह २५० करोड चलण मे ज्यादा प्रवेश कर गया।

यह तरीका तो तभी काम मे लाया जाता है जब कि सरकार आर्थिक कठिनाइयो मे फसी हुई होती है, या तो दिवालिया बनने की

राह पर होती है। पर कभी-कभी अपने देश का व्यवसाय सुधारने के उद्देश्य से भी, हुण्डी की दर गिराने के लिए फुलावटी नीति की शरण लेनी पडती है। फुलावटी नीति से दामो में तेजी आती है, और मात्रा से सीमा के भीतर, इस नीति का प्रयोग करने से व्यवसाय पर अच्छा असर पडता है, मुल्क की पैदाइश और कारखाने पनपते है। विदेशी आयात पर इसका असर खराब पडता है। इसलिए धनी मुल्क भी कभी-कभी अपने लाभ के लिए इस नीति का सीमा के भीतर प्रयोग करते है। उसका तरीका इस तरह का है।

उदाहरण के बतौर हमने बताया है कि प्रसारक बैंक ने ४०० करोड के नोटो के पीछे १२० करोड का सोना बतौर इसकी पुश्ती के रखा था। सोने की कीमत १ मुद्रा की १ तोला सोना थी और उसीका प्रतीक १ मुद्रा का नोट था। इसके माने थे १ तोला सोना=१ मुद्रा= १ मुद्रा का नोट। अर्थात् १ नोट की कीमत १ तोला सोना थी। अब हमने यह निश्चय कर लिया कि हम अपने नोट की कीमत एक तोला सोना न रख कर केवल पौन तोला सोना ही रखेगे। तो फिर प्रसारक बैंक के पास जो १२० करोड का सोना ४०० करोड के नोटो की पुश्ती के लिए था वह नोटो की ३० प्रतिशत कीमत का न रहकर ४० प्रतिशत कीमत का हो गया। फल यह हुआ कि १२० करोड के सोने के बदले मे १६० करोड के नोट निकालने की हममे शक्ति हो गई। बस, हमने नए नोट निकाल कर बैंक और सराफो की मार्फत व्यापार मे डाल दिए। व्यापार पनपने लगा। चीजो के दाम बढने लगे।

एक हद के भीतर फुलावट नीति से व्यापार, व्यवसाय-वाणिज्य और कारखानो पर अच्छा असर क्यो होता है, विदेशी आयात पर बुरा असर क्यो होता है, इसकी चर्चा आगे करेगे।

मौसिम के दिनो मे फसल जब पकती है तब अक्सर बाजार मे रुपए की टान होती है। उसकी वजह से व्यापारियो मे दिक्कत न हो और रुपए की कमी की वजह से किसानो की जिन्स नीचे दामो मे न बिक जाय, इस-लिए बैंक ऐसी टान के समय मे भी फुलावट करती है सही, पर वह

थोडे समय के लिए, और स्वल्प मात्रा मे। तरीका उसका वही है जो व्यापार-व्यवसाय की स्थायी उन्नति के लिए काम मे लाया जाता है।

पर जो अस्थायी होता ह उसमे सिक्के की कीमत नही बदली जाती। वहा तो केवल यही होता है कि नोट-प्रसारक बैंक अत्यन्त सस्ते ब्याज पर लोगो को रुपए उधार देती है। मान लीजिए कि ब्याज इतना सस्ता कर दिया कि लोगो को रुपया उधार लेकर कारोबार मे लगाने मे अत्यन्त लाभ प्रतीत होने लगा, तो फिर चारो तरफ से धडाधड लोग रुपया उधार लेना शुरू करेगे और नोट-प्रसारक बैंक दूसरी बैंको के जरिए रुपया उधार देना शुरू कर देगी। मान लीजिए, इस तरह २५० करोड रुपए के नए नोट छाप कर बैंक ने उधार दे दिए, तो चलण मे २५० करोड रुपया और बढ गया।

और गिरावट पैदा करने के लिए ठीक इससे उल्टे उपायो का प्रयोग होता है—याने या तो सरकार कर ज्यादा वसूल करती है और खर्च कम करती है, या तो बैंक खुद ऊचे ब्याज पर उधार लेकर बाजार से नोट खैंच लेती है। दोनो ही के कारण चलण मे से नोट निकल आते है और चलण मे गिरावट पैदा कर देते है। जहा फुलावट के कारण दाम चढते है वहा गिरावट के कारण दाम गिरते है।

फुलावट या गिरावट के सम्बन्ध मे एक बात ध्यान मे रखने की है। आवश्यकतानुसार नोट चलण मे महज बढ गए या घट गए, केवल इसीलिए उस स्थिति को फुलावट या गिरावट की स्थिति नही कहना चाहिए। आवश्यकता से अधिक, और सो भी थोडे से सोने पर, जब हद से बाहर नोटो का चलण बढ चले तो फुलावट, और पर्याप्त सोने पर आवश्यकता से कम नोटो का चलण हो जाय तो गिरावट की नीति कही जानी चाहिए। मसलन, बैंक ने यह नियम कर रखा है कि १००के नोट के चलण के पीछे ३० प्रतिशत सोना बैंक के कोष मे रहेगा, अब यदि सोने का अनुपात ३० से नीचे जाता है तो हम क्रमश फुलावट की ओर, और ऊपर जाता है तो गिरावट की ओर बढ रहे है।

विस्तार और संकोच

स्वभाव से और उचित परिमाण से, आवश्यकतानुसार जो नोटो के चलण मे कमी या बेशी हो उसे स्वाभाविक सकोच या विस्तार कहना चाहिए।

मान लीजिए, देश मे धन बढा है, चीजो के दाम तेज है। विदेश के लोग हमारा माल धडाधड ले रहे है। हमने अपना माल बेच कर इस साल विदेशो से ५० करोड का सोना खरीदा। उसीके मद्दे १०० करोड के नोट चलण मे रखे, हाला कि नियम के हिसाव से १५० करोड के भी नए नोट निकाल सकते थ। नए नोट, विना सोने का कोष बढाए नही निकाले। इसके अलावा पहले जो सोना १२० करोड का और नोट ४०० करोड के थे, अब वह सोना १७० करोड का और नोट ५०० करोड के हो गए। इस तरह कुल सोना, जो पहले नोटो के अनुपात से ३० प्रतिशत था, वह अब ३४ प्रतिशत हो गया। दूसरे, यह सारा काम जरूरत के मुताबिक हुआ। देश की सम्पत्ति बढ रही थी, दाम बढ रहे थे, चलण मे ज्यादा नोटो की जरूरत भी थी। इसलिए जो हुआ, ठीक हुआ। यह स्वाभाविक विस्तार हुआ।

इसी तरह मान लीजिए, देश मे भयकर अकाल पडा, भूमिकम्प हुआ या प्लेग-महामारी हुई। इसके कारण देश की सम्पत्ति इस साल कम हो गई। बाहर से माल मगाया ज्यादा, और भेजा कम। इसलिए हमे २५ करोड सोना कुल बाहर भेजना पडा। बैंक ने इस २५ करोड सोने के मद्दे ५० करोड के नोट चलण मे से निकाल लिए। इस हिसाब से अब नोटो का चलण ४०० करोड से घट कर ३५० करोड रह गया, और सोना रह गया १२० करोड से घट कर कुल ९५ करोड, जो नोटो की कुल कीमत का २७ प्रतिशत हुआ। पर चूकि यह सब सावधानी से, आवश्यकतानुसार हुआ, और सोने का परिमाण भी ३० से गिर कर २७ प्रतिशत रह गया, इसलिए इसे स्वाभाविक सकोच कह सकते है।

अर्थशास्त्री आम तौर से फुलावट या गिरावट, इन दो ही परिभाषाओ का प्रयोग करते है । पर मेरा खयाल है कि यह यथार्थ नही है । सकोच और गिरावट मे कुछ भेद तो है ही, और इसी तरह विस्तार और फुलावट मे भी भेद है। यह भेद अवश्य सूक्ष्म है, पर इस भेद को मान लेना ही शायद ज्यादा शास्त्रीय है, इसलिए मैने यह भेद मान कर फुलावट–विस्तार, और गिरावट—सकोच, ऐसी अलग-अलग परिभाषाएँ रखी है। यह भेद इसलिए मान लिया है कि जहा फुलावट और गिरावट कृत्रिम उपायो से की जाती है, और विशेष हेतु को लेकर की जाती है, सकोच और विस्तार आवश्यकतानुसार स्वभावतया ही होते है। तो भी यह सही है कि यह भेद सूक्ष्म-सा ही है ।

४

चूंकि फुलावट या गिरावट कृत्रिम उपायो से और विशेष हेतु के लिए की जाती है, इसलिए, यह क्यो की जाती है और इसका क्या फल होता है, यह समझना भी जरूरी है। पर इसी सिलसिले मे एक और मत का उल्लेख आवश्यक है।

जिन्सो के दाम मे घटा-बढी के, मोटे तौर पर, दो कारण हो सकते है—एक तो उन जिन्सो से ही सम्बन्ध रखनेवाला, दूसरा उस द्रव्य से सम्बन्ध रखनेवाला जिसके द्वारा दाम सूचित किया जाता है, जैसे नोट या धातु का सिक्का। एक चीज की कीमत कल दो पैसे थी, आज तीन पैसे है। अर्थशास्त्री इसका कारण दो जगह ढूढेगा। हो सकता है कि पैसे के परिमाण मे कोई अन्तर नही पडा है पर वह चीज घट चली है—कल जितनी उपलभ्य थी आज उतनी नही है—और इस घटी के अनुपात से उसका दाम बढ गया है। और हो सकता है कि चीज के परिमाण मे कोई अन्तर नहीं पडा है, पर पैसे का परिमाण बढ गया है, और इस वृद्धि के अनुपात से उस चीज का दाम बढ चला है।

यहा जो सवाल पैदा होता है वह यो रखा जा सकता है, कि दाम बढा वह चीज महगी होने से या द्रव्य सस्ता होने से ? अगर हम Value के अर्थ मे मूल्य और P11ce के अर्थ मे दाम गब्द व्यवहृत करे तो इसे यो रख सकते है कि उस वस्तु का अपना मूल्य चढ जाने के या द्रव्य का अपना मूल्य गिर जाने के कारण दाम बढा ?

वस्तुओ के मूल्य मे घटा-बढी के कारण ढूढ निकालना कठिन प्रयास है। एक फसल मारी गई अनावृष्टि से, दूसरी बाढ या जल-बाहुल्य से, तीसरी टिड्डियो के आक्रमण से। तीनो चीजे कम हो गई, उनकी माग ज्यो-की-त्यो बनी रही, फलत उनका मूल्य बढ गया—अर्थात् उनके दामो मे तेजी आ गई। सम्भव नही कि कोई भी ऐसा मत प्रतिपादित किया जा सके

जो अनावृष्टि, बाढ और टिड्डियो का आक्रमण-जैसे विभिन्न, असम्बद्ध कारणो को अपने घेरे मे लाकर तज्जनित जटिलता को किसी भी हद तक सरलता मे परिणत कर सके। वास्तव मे जहा तीन कारण दिए गए है वहा तीन सौ तो क्या, तीन हजार भी हो सकते है। किसी वस्तु के मूल्य मे इस कारण भी वृद्धि हो सकती है कि लन्दन के "टाइम्स" अखबार ने एक खास तरह की राय जाहिर कर दी—या राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने किसी पत्रकार के तत्सम्बन्धी प्रश्न को मजाक मे उडा दिया—या किसी करोड-पति ने स्वप्न देखा कि वह उस वस्तु के ढेर पर बैठा हुआ आसमान की ओर उठता जा रहा है। जहा दाम मे घटा-बढी किसी वस्तु के मूल्य मे घटा-बढी का प्रतिविम्ब है वहा इस घटा-बढी पर कोई सूत्रात्मक मत या नियम प्रकाश नही डाल सकता—जिज्ञासु को प्रत्येक कारण का अलग अन्वेषण और उसकी अलग व्याख्या करनी पडेगी।

द्रव्य-परिमाण-मत

द्रव्य अर्थात् रुपए-पैसे के मूल्य मे घटा-बढी के कारण न तो इतन अधिक है, न इतने विभिन्न। इसलिए इनके सम्बन्ध मे Ricardo नामक अग्रेज अर्थशास्त्री के समय से एक ऐसा उपयोगी मत चला आता है, और उसका नाम है "द्रव्य-परिमाण-मत" (Quantity Theory of Money)। जितने भी दाम होगे, द्रव्य के ही रूप मे होगे। इसलिए द्रव्य के रूप मे वृद्धि या ह्रास के जो भी कारण होगे वे दामो के प्रसग मे सर्वत्र लागू होगे।

इस मत का निचोड यह है —

द्रव्य के मूल्य मे घटा-बढी का दामो पर उल्टा असर होता है और वे उसी अनुपात से तेज या मन्दे हो जाते है। मान लीजिए कि किसी वस्तु का दाम होता है ४ ग्रेन सोना। अगर सोने का मूल्य घट कर आधा हो जाय, तो उस चीज का दाम ४ ग्रेन की जगह ८ ग्रेन सोना हो जायगा।

अब यह देखना है कि द्रव्य के मूल्य मे घटा-बढी होती क्यो है। इसके चार कारण हो सकते है —

(१) द्रव्य के परिमाण का घटना-बढना। सोना या चादी खानो से

ज्यादा निकली तो उसका मूल्य कम हो गया—कम निकली तो उसका मूल्य बढ गया। अगर सिक्के सोना-चादी के है तो उनके मूल्य मे भी ऐसी ही घटा-बढी होगी और चीजो के दाम मे —उसी हिसाब से—फर्क पडेगा। अगर चलण मे सोना-चादी के सिक्को की जगह कागजी नोट है और इनका परिमाण बढता-घटता है, तो इनके मूल्य मे भी उसी प्रकार अन्तर पडेगा और चीजो के दाम उसी प्रकार तेज या मन्दे होगे।

(२) हो सकता है कि द्रव्य का परिमाण ज्यो-का-त्यो बना हुआ है, पर उसके चलण या रफ्तार मे कुछ खास कारण या कारणो से तेजी आ गई। इस तेजी का असर वही होगा जो उस द्रव्य का परिमाण बढने का होता। कारण यह कि रफ्तार मे तेजी के माने है उतने ही द्रव्य का ज्यादा चक्कर लगाना, अर्थात् द्रव्य के परिमाण का बढ-सा जाना। अगर चलण या रफ्तार धीमी हो गई तो इसका असर उल्टा पडेगा, क्योकि इसका अर्थ होगा द्रव्य के परिमाण का घट-सा जाना। जब कोई रुपए को अपने पास रखना नही चाहता तब दाम चढते है, जब लोग रुपए को दबाकर बैठ जाते है तब दाम गिरते है।

(३) द्रव्य की माग, अवस्था-विशेष मे, इस कारण कम हो जाती है कि लोग भुगतान के लिए चेक या हुण्डी-पुरजे का अधिकाधिक व्यवहार करने लगते है। ऐसी अवस्था मे दाम गिरते नही, ऊपर चढते है, क्योकि द्रव्य की माग कम हो गई, द्रव्य का मूल्य गिर गया, चीजो के दामो मे तेजी आ गई। चेक और हुण्डी भी तो आखिर द्रव्य के ही प्रतीक है। उनकी सख्या बढ गई तो एक प्रकार से वह द्रव्य ही बढ गया, क्योकि यदि चेक-हुण्डी न होती तो उनके स्थान की पूर्ति नोटो को करनी पडती। इसलिए इस पहलू को यो भी बताया जा सकता है कि द्रव्य-परिमाण बढ गया, इसलिए द्रव्य के दाम गिर गए, और चीजो के दाम चढ गए।

(४) मगर इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि वाणिज्य-व्यापार या लेन-देन की वृद्धि के कारण द्रव्य की माग बढ जाय। माग की पूर्ति न की जाय और चलण मे द्रव्य न बढाया जाय तो स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था मे द्रव्य का मूल्य बढ़ेगा—अर्थात् चीजो के दाम गिरेगे।

द्रव्य के मूल्य मे घटा-बढ़ी के कारणो को समझाने के लिए ऊपर यह मान लिया है कि जहा एक बात बदलती है वहा और सब बाते समान बनी रहती है। पर प्रकृत जीवन मे ऐसी अवस्था बहुत कम मिलती है। एक नही, अनेक बाते प्राय साथ-ही-साथ बदलती रहती है और परस्पर-विरोधी शक्तियो की मुठभेड-सी बनी रहती है। घटा-बढी का जो अन्तिम कारण बताया गया है उस पर फिर एक नजर डालिए। लिखा है कि द्रव्य की माग बढने से उसका मूल्य बढेगा और चीजो के दाम गिरेगे। मगर सम्भव है कि जहा एक ओर द्रव्य की माग बढे वहा, दूसरी ओर, साथ-ही-साथ उसका परिमाण भी इतना बढ जाय कि उसके मूल्य में किसी प्रकार की वृद्धि न हो और दामो पर कोई असर न पडे। वास्तव मे वस्तु-स्थिति कभी-कभी इतनी जटिल होती है कि उसका पूरा विश्लेषण करना और यह जान लेना कि वह कौन-कौन से कारणो के फलस्वरूप बनी है, अत्यन्त कठिन कार्य हो जाता है। पर जटिल-से-जटिल अवस्था मे भी द्रव्य के मूल्य मे घटा-बढी उपरोक्त कारणो से ही होती है—चाहे उनमें से एक मौजूद हो, चाहे एक से अधिक। माग बढेगी या परिमाण कम होगा तो उसके मूल्य मे वृद्धि होगी। माग घटेगी या परिमाण बढेगा, तो मूल्य मे ह्रास होगा। यह सरल या जटिल प्रत्येक अवस्था के लिए सत्य है।

उपरोक्त विश्लेषण को सामने रख कर ही हम "द्रव्य-परिमाण-मत" के शुद्ध स्वरूप को समझ सकते है, जो यह है कि सिक्का—चाहे वह स्वयसिद्ध मुद्रा हो चाहे प्रतीक मुद्रा—जब चलण मे ज्यादा होता है तो जिन्सो के दाम—बढे चलण के अनुपात से—बढ जाते है; और सिक्का चलण मे कम होता है तो, जितना कम होता है उसी अनुपात से, जिन्सो के दाम गिरते है।

यह बात सहज ही समझ में आ सकती है। मान लीजिए कि अचानक सोने की नई खाने निकल आई और सोने की पैदाइश बेहद बढ चली। उसके कारण सोने के दाम गिर गए, यहा तक कि सोने के दाम पहले से आधे हो गए —तो स्वभावतया ही, यदि हम विदेशो मे खरीद से ज्यादा माल बेचते रहे है तो बदले मे पहले जितना सोना खरीदते थे उसके बजाय

उतने ही माल के लिए दुगुना सोना हमे मिल सकेगा। सोना दुगुना मिलेगा, उस पर फिर नोट भी ज्यादा चलण मे बढेगे। जैसे, पहले यदि १० करोड का नया सोना हम हर साल खरीदते थे और उसके मद्दे ३० करोड के नए नोट चलण मे रखते थे, तो अब उतने ही माल के बदले मे विदेशो मे हमे १० करोड के बजाय (क्योकि सोने के दाम आधे हो गए) २० करोड का सोना मिलेगा, जिसके मद्दे हम आसानी से ६० करोड के नए नोट चलण मे रख सकेगे। नए नोट चलण मे आने से व्याज गिरेगा, नाणा मन्दा होगा और बहुतायत से उधार मिल सकेगा। कोई भी चीज कम होती है तो वह महगी हो जाती है, ज्यादा होती है तो सस्ती होती है। चूकि नाणा ज्यादा हो गया, इसलिए नाणा सस्ता हो गया। नाणा सस्ता हो गया, इसके माने दूसरे शब्दो मे यह हुए कि चीजे महगी हो गई। दर असल जब हम कोई चीज खरीदते है तो उस चीज का नाणे के साथ तबादला-मात्र होता है, याने नाणा हम बेचते है और चीज खरीदते है। जब नाणा सस्ता होता है तो सस्ते मे बिकेगा--अर्थात् जिन्सो के साथ नाणे की अदला-बदली मे, यदि नाणा सस्ता है तो, हमे नाणा ज्यादा देना पडेगा। दूसरे शब्दो मे इसका अर्थ यह हुआ कि चीजो के दाम महगे हो गए।

जब नोट चलण मे बढ जाते है तो नाणा आसानी और सहूलियत से और बहुतायत से कम ब्याज पर मिलने लगता है। ऐसी हालत मे लोगो को अपना व्यवसाय बढाने की फिक्र होती है। नए कारोबार मे रुपया लगाने मे किसीको हिचकिचाहट नही होती। नतीजा यह होता है कि व्यापार पनपता है, हर चीज के दाम बढते है। पर इस मत के पूर्णतया सिद्ध होने की कई एक शर्ते है। एक शर्त तो यह है कि द्रव्य का चलण बढा—चाहे नोटो का या सिक्को का--उतना ही यदि व्यापार और लेन-देन भी बढ गया, तो फिर दाम नहीं बढेगे। दाम तो तभी बढेगे जब कि चलण अपेक्षाकृत बढ गया हो—अर्थात् यदि व्यापार बढा है रुपए मे एक आना, और चलण बढ गया रुपए मे दो आना, तभी नाणा मन्दा है, ऐसा हम कहेगे। ऐसी हालत मे रुपए की छूट होगी और इसके कारण चीजो के दाम बढेगे।

इसके विपरीत यदि व्यापार या लेन-देन की जरूरत बढी रुपए मे एक आना और चलण बढा पौन आना ही, तो यह कहा जायगा कि अपेक्षाकृत चलण में सकोच हुआ है, और इसलिए चीजो के दाम झुकाव की ओर होगे। असल मे तो इस मत की सिद्धि के लिए हमे यह शर्त लगानी होगी कि यदि दो तुलनात्मक स्थितिया और हर बात मे बिल्कुल यकसा है, तो फिर यह नि सकोच कहा जा सकता है कि द्रव्य-परिमाण (नोट या सिक्को का चलण) बढने पर, जितना परिमाण बढा उसी अनुपात से चीजो के दाम बढेगे और नाणा सस्ता होगा। और द्रव्य-परिमाण घटने पर, जितना परिमाण घटा उसी अनुपात से, चीजो के दाम गिरेगे।

द्रव्य की पंगुता

यहा, फुलावट और गिरावट के सम्बन्ध मे, हमे एक बात कहनी है जो, जाहिरा तौर पर, अब तक जो कुछ कहा जा चुका है उसके विपरीत जान पडती है। हर हालत मे फुलावट या गिरावट के नतीजे वही नही होते जो ऊपर बताए जा चुके है। सभव है, फुलावट होते हुए भी दाम समान-से बने रहे, या उनमे तेजी भी आए तो नाममात्र की। और सभव है, गिरावट होते हुए भी जिन्सो के दाम चढ जाय। आप कह सकते है कि "यह खूब रही ! और अगर यह सच है, तो इससे तो 'द्रव्य-परिमाण-मत' का खोखलापन ही साबित हुआ। आप दोनो बातो का सामञ्जस्य कैसे करते है ?"

फुलावट होते हुए भी, अगर लोगो के खर्च करने का वेग उस हिसाब से नही बढता और द्रव्य या पैसा पगु-सा होकर बैठा या पडा रहता है तब दामो मे उतनी तेजी नही आ सकती, जितनी फुलावट को देखते हुए सभव जान पडती है। इस महासमर मे इग्लैण्ड की बात लीजिए। वहा फुलावट काफी हो चुकी है, पर उस अनुपात मे दाम नही बढ पाए है। कारण यह है कि लोग मौजूदा हालत मे मनोवाञ्छित रीति से जिन्स नही खरीद सकते। उनके पास पैसा अधिक है, उनकी क्रयशक्ति बढ गई है, पर वह पैसा तरह-तरह के नियत्रणो के कारण निष्क्रिय-सा पडा हुआ है। सरकार को लडाई के लिए हर तरह की जिन्स की जरूरत है—

और सख्त जरूरत है। अगर बाजार मे उन जिन्सो को खरीदते समय सरकार को सर्वसाधारण की प्रतियोगिता का सामना करना पडे, तो उसकी समस्या बडी जटिल हो जाय, और लडाई के लिए जैसी तैयारी होनी चाहिए, न हो सके। उस प्रतियोगिता को सरकार ने विभिन्न उपायो से वहुत कुछ रोक दिया है। इस कारण लोगो की क्रय-शक्ति अशक्त-सी हो गई है—उनके पास पैसा अधिकाधिक होते हुए भी वह उसे एक हद से आगे खर्च करने मे असमर्थ है। फिर दाम फुलावट के हिसाब से बढे तो कैसे ?

मान लीजिए कि लडाई बन्द होते ही सरकार की नीति फुलावट से गिरावट की हो गई, तो क्या दाम गिरने लगेगे ? आज आय-वृद्धि होते हुए भी व्यय करने के मार्ग बन्द है, इसलिए उस पैसे का दामो पर जो असर पड सकता था वह नही पड रहा है। पर, कल अगर वह मार्ग खुल गए, और लोग मनमाना खर्च करने के लिए स्वतन्त्र हो गए तो गिरावट के बावजूद भी जिन्सो के दामो मे बेहद तेजी आ सकती है।

साराश यह कि दामो की दृष्टि से प्रधानता इस प्रश्न की है कि कितना पैसा खर्च हो रहा है—न कि इस प्रश्न की, कि कितना पैसा मौजूद है। साधारण समय मे यह भेद कोई खास अर्थ नही रखता, क्योकि लोग अपने पैसे को मनमानी रीति से खर्च करने के लिए स्वतन्त्र रहते है। पर इस महासमर-जैसे असाधारण समय मे—जबकि पैसा होना एक बात है, उसे मनमानी रीति से खर्च करने की स्वतन्त्रता होना दूसरी बात—यह भेद विशेष महत्वपूर्ण है। फिर भी यह बात कोई ऐसी नही, जिसका "द्रव्य-परिमाण-मत" से मेल या सामञ्जस्य न हो सके। वास्तव मे यह उसी मत के अन्तर्गत है, क्योकि वह द्रव्य के परिमाण पर ही नही, उसके चलण या रफ्तार पर भी जोर देता है। हम अपने शब्दो को दोहराते है—"जब कोई रुपए को अपने पास रखना नही चाहता तब दाम चढते है, जब लोग रुपए को दबा कर बैठ जाते है तब दाम गिरते है"। इस समय रुपया अधिक होते हुए भी दबा हुआ है, इसलिए दाम जितने ऊचे हो सकते थे, नही है।

पर चलण के स्वाभाविक विस्तार और सकोच से जो असर चीजो के दामो पर पडता है उससे कही अधिक जोरदार असर चीजो के दामो पर चलण की फुलावट और गिरावट के कारण पडता है। चूकि विस्तार या सकोच तो अपने-आप करीव-करीव स्वभाव से ही होता है, इसकी गति भी मन्द होती है और इसका असर भी सह्य और मृदु होता है।

पर चूकि फुलावट और गिरावट जान-बूझ कर की जाती है, इसकी गति द्रुत होती है। इसलिए जितनी ही कस कर फुलावट या गिरावट की नीति काम मे लाई जाय, उतना ही अधिक तात्कालिक असर इस नीति का जिन्सो की कीमत पर होगा। और खास कर फुलावट की नीति मे तो—यदि अत्यधिक, वेपरिमाण, फुलावट की जाय तो—लोगो का नोटो से विश्वास इस कदर भाग जाता है कि वे नोटो को एक रात भी अपने पास रखना नापसन्द करते है और अपना पूजी-पल्ला जिन्सो मे ही रोकना पसन्द करते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि चीजो के दाम अनाप-शनाप वढ जाते है। और व्याज की दर भी वढने लगती है।

लडाई के वाद जर्मन मार्क और रूसी रूवल के चलण की फुलावट यहा तक वढी कि साधारण समय मे जितने नोट चलण मे थे उससे कई लाख गुने नोट चलण मे रख दिए गए। नतीजा यह हुआ कि नाणा कागज के टुकडो की तरह इतना सस्ता हो गया कि उसकी कोई कीमत ही नही रह गई और जर्मनी मे जिस चीज के दाम साधारण समय मे १-२ मार्क रहे होगे उसके दाम लाखो मार्क तक हो गए। ज्यो-ज्यो मार्क छप-छप कर जोर से चलण मे आने लगे, त्यो-त्यो वडी तेजी के साथ चीजो के दाम वढने लगे—यहा तक कि हर मिनिट दाम ऊँचे जाने लगे। कहा जाता है कि जव एक नानवाई अपने गाहक को रोटी वेचकर उसके मार्क पाता था तो उसे यह चिन्ता होती थी कि ताजा रोटी वनाने के लिए आटा खरीदते-खरीदते

कही आटे के दाम वढ न जाय । इसलिए वह रोटी वेचते ही मार्क लेकर वेतहाशा दौड कर आटेवाले की दूकान पर पहुँच कर आटा ले लेता था और मार्क से पिण्ड छूटने पर ही शान्ति से सास लेता था ।

वेहद फुलावट के नतीजे

उस जमाने की इससे भी ज्यादा मजेदार कई सच्ची कहानिया प्रचलित है । जव मार्क की कीमत कौडी से भी कम होने जा रही थी, तव तो ऑस्ट्रिया और जर्मनी के लोगो का विश्वास इस वुरी तरह डुल गया कि कई लोगो ने तो अपनी कफन-काठी भी मरने के पहले खरीद कर रख दी ताकि वाद मे कही दाम वेशुमार ज्यादा न वढ जायँ ।

एक प्रतिष्ठित भारतीय कोठी का कुछ मार्क एक जर्मन व्यापारी से पावना था । वह मार्क हजारो की तादाद मे था, जिसकी सावारण समय मे हजारो रुपए कीमत थी । भारतीय कोठी ने जव जर्मन व्यापारी से रुपया मागा और लिखा कि आप हमारे मार्क भेज दीजिए, तो जर्मन व्यापारी ने जवाव लिखा कि "महाशय, आपके २५,००० मार्क पावने थे, पर मै जो यह खत आपको लिख रहा हू उसके टिकिट और लिफाफे के दाम ही तो ढाई लाख मार्क हो जाएगे । इस हिसाव से यदि मै हिसाव लगाऊ तो उल्टा मेरा ही आप से पावना निकलेगा ।"

कहते है, ऑस्ट्रिया मे दो भाई थे, जिनमे से एक के पास २०-३० हजार क्राउन थे, जिसके कारण वह सम्पन्न माना जाता था । और दूसरा शरावी था, जो नित्य जितना कमाता था उसका एक वडा हिस्सा शराव मे वरवाद कर देता था और शराव की वोतले घर मे जमा रखता था । जव क्राउन की फुलावट हुई तव, जो भाई सम्पन्न था उसके क्राउन तो कौडी के हो गए, पर जो शरावी था उसकी खाली वोतलो की कीमत लाखो क्राउन हो गई ! नाणे की फुलावट क्या-क्या करामात दिखाती है, इसका यह एक मजेदार उदाहरण है। अस्तु ।

मान लीजिए कि हमारे यहा २५० करोड रुपए के नोटो का चलण

है, उसे बढा कर २५,००० करोड के नोटो का कुल चलण कर दिया जाय–अर्थात् सौगुना चलण बढा दिया जाय, तो स्वभावतया रुपए की साख सौआ हिस्सा रह जायगी। और जो मेथी की सब्जी आज दो पैसे सेर मिलती है उसके दाम २०० पैसे सेर, अर्थात् एक सेर मेथी की कीमत करीव-करीव ३ रुपए हो जायगी।

ऊपर हमने वताया है कि नाणा चलण मे ज्यादा होता है तो चीजो के दाम पनपने लगते है और सस्ते व्याज मे उधार मिलने लगता है। पर यह सस्ते व्याज की वात केवल नियत्रित विस्तार तक ही सीमित है—अर्थात् व्यापार को पनपाने के लिए या केवल मौसिमी टान को मेटने के लिए ही जब हम चलण मे सिक्का ज्यादा डालते है, और सो भी नियत्रण के साथ स्वल्प मात्रा मे, तभी तक व्याज मदा रहता है। पर जहा फुलावट की नीति जोर से शुरू की और चलण मे लोगो का विश्वास कपित हुआ कि व्याज की दर जोर से वढने लगती है।

जर्मनी मे फुलावट के जमाने मे चीजो के दाम कैसे वढ गए, इसका उदाहरण हमने ऊपर दिया है। उस जमाने मे व्याज की दर भी यहा तक वढी थी कि एक जमाने मे व्याज १२०० प्रतिशत–अर्थात् १०० सिक्के का व्याज एक साल का १२०० रुपया हो गया। आपने यदि कुल १०० सिक्के उधार दिए तो एक साल के वाद आपको अपने देनदार से १२०० सिक्के व्याज के मिल गए। ऐसी विषम स्थिति हो गई थी।

यह कुछ अनहोनी-सी वात लगती है कि इतनी ऊची व्याज की दर हो सकती है—और सो भी एक सुसभ्य देश मे। कावुली व्याज कडा होता है। पठान लोग गरीवो को अत्यत ऊचे व्याज पर उधार देते है। पर यह १२०० प्रतिशत का व्याज तो कावुलियो से भी वाजी मारता है। पर उस समय की परिस्थिति को देखते हुए इसमे कोई आश्चर्य की वात नही है।

जैसा कि हमने पहले वताया है, जब फुलावट-नीति जोर से शुरू होती है तो चलण का मूल्य धडाधड गिरने लगता है। मान लीजिए, जिस चलण का मूल्य आज एक मात्रा है उसका मूल्य एक साल मे शताश रह

गया, और भय यह हो कि शायद महीने-बीस दिन के बाद १/२०० रह जाय या इससे भी कम हो जाय, तो फिर चलण अपने पास कोई नही रखेगा। इसलिए जिस नानबाई का हमने उदाहरण दिया है वह बेतहाशा दौड कर मार्क का आटा खरीद कर ही दम लेता था। ऐसी जहा हालत हो वहा फिर चलण को अपने पास कौन रखे? जिसने उधार दिया वह तो मारा गया, क्योकि साल भर के लिए यदि किसी ने १०० मार्क उधार दिए और मार्क के दाम गिर कर साल भर मे १/२०० रह जाय, तो जो मार्क उसे वापिस मिलेगे वे सौ के बजाय आधे मार्क का सा काम देगे। इसके माने यह हुए कि यद्यपि उसे वापिस १०० मूल रकम और १२०० व्याज के, कुल १३०० मार्क मिले, पर १३०० की कीमत १/२०० के हिसाब से (१३००×१)/२०० = ६½ मार्क ही कुल रह गई। इतना व्याज पाने पर भी कर्ज देनेवाला घाटे मे ही रहा। यही कारण है कि इस तरह की फुलावट की नीति के जमाने मे नाणा प्रचुर मात्रा मे होते हुए भी व्याज की दर बेहद बढ जाती है, क्योकि उधार देनेवाले को बडी जोखिम उठानी पडती है।

फुलावट का कर्ज पर असर

फुलावट मे प्रतीक की साख मे ठेस पहुच गई और प्रतीक की मिकदार चलण मे ज्यादा हो गई। इसलिए, जैसा कि पहले बता चुके है, जिन्सो के दाम भी बढ गए। पर किसी कर्जदार को एक सौ का देना था और पावनेदार का उतना ही पावना था तो—यद्यपि जब दोनो का लेन-देन हुआ था तब प्रतीक स्वयसिद्ध मुद्रा का सच्चा प्रतिनिधि रहा हो—आज प्रतीक स्वयसिद्ध मुद्रा का प्रतिनिधित्व खो बैठा, तब भी पावनेदार को वही सौ मिलेगे, और देनेवाले को वही सौ देने पडेगे। फुलावटके कारण प्रतीक की करामात कम हो गई, इससे लेन-देन की निर्धारित रकम पर कोई असर नही पडेगा।

पहले जो एक रुपया दस सेर गेहू खरीद सकता था, अब फुलावट के कारण रुपए की साख गिर गई और जिन्सो के दाम बढ गए, इसलिए चाहे दस सेर गेहू के बदले ८ सेर ही खरीद सके, पर पावनेदार देनदार से

यह नही कह सकता,"भाई साहब---मैंने जब आपको उधार दिया तब रुपए की साख सोलह कला सपूर्ण थी। प्रतीक के स्वामी को बैकवाले आठो पहर छूट से स्वयसिद्ध मुद्रा देते थे। अब वह बात नही रही। फुलावट की नीति के कारण प्रतीक हतश्री हो गया। इसकी कलाए घट गई। १० सेर गेहू के बजाय अब इसके बदले मे ८ सेर गेहू ही मिल सकते हैं। इसलिए मेरा रुपया जो पहले सोलह कलावाला था उसीको लौटाने की आपकी जिम्मेवारी है'। इसलिए आप या तो मुझे स्वयसिद्ध मुद्रा का प्रतीक लौटाइए, और यदि आप मुझे घटे दाम का रुपया लौटाना चाहते है तो सौ के ऋण के बजाय आपको सवा सौ देना होगा।" यदि पावनेदार ऐसी बात कहे तो देनदार अवश्य ही कहेगा,"तुम कहा आकाश-पाताल की बाते कर रहे हो? मालूम होता है, तुम्हारे दिमाग की कोई कील गिर भागी है, इसलिए बेहतर है कि तुम अपनी चिकित्सा कराओ।"

लाभ और हानि

पर बावजूद इस प्रश्नोत्तरी के यह तो मानना ही पडेगा कि इस फुलावट की नीति के कारण पावनेदार को घाटा हुआ, और देनदार को लाभ, क्योकि पावनेदार का जो पावना था, वह था पूर्णकला रुपया या सुवर्ण-मुद्रा, और अब वापिस मिल रहा है उसे घटी कीमत का प्रतीक, जो पुराने रुपए की अपेक्षा कम जिन्स खरीद सकता है। पर चूकि कानून का यह तकाजा है कि फुलावट या गिरावट के कारण प्रतीक की कीमत मे चाहे जो घटा-बढी हो (उस घटा-बढी को निश्चित रूपेण मापने का कोई साधन नही है, और यदि हो भी तो वह सरकार को मान्य नही है) उससे पावनेदार या देनदार के पावने देने की रकम पर कोई असर नही होगा---अर्थात् यदि स्वयसिद्ध मुद्रा के चलण के समय का १०० का पावना देना है, तो वह फुलावट-नीति के समय भी १०० का ही पावना देना माना जायगा।

करोडो का देना-पावना हर मुल्क मे होता है और उस देने-पावने की रकम ज्यो-की-त्यो बनी रहती है, इसलिए सर्वसाधारण को प्रतीक की कीमत गिर गई है या बढ गई है, इसका थोडी घटा-बढी मे कोई पता भी नही

चलता। पर पता न भी रहे तो भी उसके असर से लोग वचित नही रहते। यदि दाम चढते है तो सभी को उसका फल भुगतना पडता है, और गिरते है तब भी यह सभी को लागू पडता है।

एक सावधान और सम्पन्न व्यक्ति ऑस्ट्रिया में कैसे दरिद्र हो गया और उसका भाई, जो शराबी था, कैसे धनिक बन गया, इसका उदाहरण हम पहले दे आए है। यद्यपि फुलावट के कारण प्रतीक-मुद्रा की दर कितनी गिर गई है, इसकी माप-तौल का सर्वसाधारण को पूरा पता नही चलता, पर जाननेवाले तो जानते ही है कि फुलावट के कारण प्रतीक की कीमत कम हो जाती है और इसके फलस्वरूप पावनेदार को, नकद रुपया रखनेवाले को, जिन्सो की खपत करनेवाले को, मजदूरपेशा लोगो को, और जिनकी आय निर्धारित हे उनको (जैसे जमीदार, पेन्शनयाफ्ता लोग, नौकरीपेशा लोग, कर वसूल करनेवाली सस्थाएँ—जैसे सरकार, म्युनिसिपैलिटी, कॉलेज, स्कूल इत्यादि) हानि होती है, और कर्जदार लोग, कारखानेवाले, माल पैदा करनेवाले, (जैसे किसान, जुलाहा, वढई, लोहार, चमार आदि) इन लोगो को लाभ होता है।

गिरावट की नीति मे, जिन्हे फुलावट मे लाभ होता है, उनको हानि है, और फुलावट मे जिन्हे नुकसान है, उनको लाभ है।

६

इस फुलावट या गिरावट के कारण हमारी मुद्रा की कीमत पर विदेशो मे क्या असर होता है, इसका भी जरा विवेचन कर ले ।

हमने पहले वताया है कि प्रतीक-मुद्रा तो स्वयसिद्ध मुद्रा की प्रतिनिधि-मात्र है—अर्थात् एक सुवर्ण-मुद्रा की कीमत का प्रतीक हम नोट-प्रसारक वैक के पास पेश करे, तो हम एक सुवर्ण-मुद्रा पाने के अधिकारी होगे और वैक एक सुवर्ण-मुद्रा देने के लिए वाध्य होगी। पर यह अधिकार और जिम्मेवारी, दोनो-के-दोनो फुलावट-नीति के प्रवेश करते ही समाप्त हो जाते है, और गिरावट-नीति के आने पर दोनो और भी सुरक्षित वन जाते है ।

कारण स्पष्ट है । थोडे से सोने की पू जी पर एक तरफ तो अत्यधिक और वेपरिमाण प्रतीक चलण मे डाल दिए जाय, और दूसरी तरफ प्रतीक के स्वामी का प्रतीक के वदले मे स्वयसिद्ध मुद्रा पाने का अधिकार अक्षुण्ण वना रहे और वैक प्रतीक-मुद्रा के वदले मे सुवर्ण-मुद्रा देने के लिए वाध्य हो—ये दोनो वाते असगत है, क्योकि १२० करोड की कीमत के सोने के आधार पर यदि ३२०० करोड के नोट चलण मे डाल दिए जाय और उनमे से यदि २०० करोड की कीमत के नोटवाले भी अपने अधिकार का उपयोग करे और वैक से नोट भुना कर सुवर्ण-मुद्रा मागे, तो वैक को अपना दरवाजा वन्द करने के सिवा कोई चारा न होगा। कुल पू जी ही यदि १२० करोड है,तो फिर २०० करोड के नोटो का भुगतान वैक चुका ही कैसे सकती है ? ज्यादा से ज्यादा—३२०० करोड के नोटो मे से—कुल १२० करोड ही तो चुका सकती है। वाकी के नोटो के पीछे जव कोष मे सोना ही नही रहता, तो फिर नोटो की पुश्ती ही नेस्तनावूद हो जाती है, और इसलिए नोटो की साख शून्यवत् रह जाती है। इसलिए जहा फुलावट-नीति के प्रयोग का विचार हुआ कि प्रतीक मुद्रा के स्वामी का सुवर्ण-मुद्रा पाने का अधिकार समाप्त हुआ ।

गिरावट की नीति मे, इसके विपरीत, यह अधिकार और भी ठोस बन जाता है, क्योकि चलण के नोटो के परिमाण के मुकाबिले मे बैंक के कोष मे स्थित सोने का परिमाण और भी बढ जाता है। इसलिए स्वभावतया प्रतीक-मुद्रा की साख बढ जाती है। पर फुलावट-नीति मे तो प्रतीक नाममात्र का प्रतीक रहता है। पहले प्रतीक की कीमत जो एक सुवर्ण-मुद्रा थी, फुलावट होने पर अब उसकी कोई निश्चित कीमत नही रही। अब प्रतीक की कीमत उसकी साख की घटा-बढी के अनुसार घटती और बढती रहती है। और वह साख फुलावट के परिमाण के पीछे कमो-बेश होती रहती है। यदि फुलावट ज्यादा होती है तो, जैसा कि ऊपर बताया है, प्रतीक की कीमत ज्यादा गिर जाती है, और यदि फुलावट अपेक्षाकृत कम होती है तो प्रतीक की कीमत कम गिरती है।

जब तक प्रतीक और स्वयसिद्ध मुद्रा का कानूनन सम्बन्ध था, दोनो गँठजोडे-से बधे थे, तब तक तो प्रतीक की निर्धारित कीमत कायम थी। पर जहा प्रतीक और स्वयसिद्ध मुद्रा का तलाक हुआ कि कीमत की स्थिरता गायब हुई। यद्यपि कहने के लिए तो प्रतीक फिर भी एक सुवर्ण-मुद्रा का नोट ही होगा, जैसा कि इग्लैण्ड मे एक पाउण्ड का नोट आज भी एक पाउण्ड का नोट ही कहलाता है, पर उसके माने यह नही कि उसके पीछे एक पाउण्ड की सुवर्ण-मुद्रा पडी है, जिसे हम चाहे जब बैंक ऑफ इग्लैण्ड से माग लेगे और वह हमे दे देगी। इस तलाक के बाद असल मे तो प्रतीक की कीमत कटी पतग की तरह हो जाती है, और जैसे हवा के झोको के बल पर पतग गिरती है या उठती है, उसी तरह प्रतीक की कीमत भी चलण की फुलावट की कमी-बेशी के आधार पर झिलोरे खाती रहती है।

प्रतीक की कीमत और विदेशी बाजार

यह सही है कि सर्वसाधारण को फुलावट या गिरावट के कारण प्रतीक की दर मे क्या घटा-बढी हुई, इसका कोई पता नही चलता, क्योकि उनकी नजरो के सामने तो सिवाय जिन्सो की कीमत की घटा-बढी के और कोई ऐसे लक्षण नही आते जिनसे उन्हे प्रतीक की नई कीमत का

प्रत्यक्ष ज्ञान हो। उनके सामने रुपए की वही पहलेवाली शक्ल है, वही देनदार-पावनेदार की रकम है, वही रुपए का नाम है।

पर विदेश मे लोग हमारे प्रतीक की कीमत के सम्बन्ध मे इतने अन्धकार मे नही रहते। उन्हे हमारे प्रतीक की कीमत का और उसमे रोज होनेवाली घटा-बढी की करीब-करीब सही माप-तौल मिल जाता है, और इसलिए, जैसे मनुष्य अपने चेहरे को स्वय नही देख सकता किन्तु दर्पण की सहायता से अपने मुह की बदसूरती या सुन्दरता की सही माप-तौल कर सकता है, उसी तरह हमारे प्रतीक का विदेशी लोग क्या दर-दाम करते है, इससे उसकी कीमत का अधिक सही ज्ञान हमे हो सकता है। विदेशी बाजार एक तरह दर्पण का काम देते है, क्योकि उन्हीके द्वारा हमे अपने प्रतीक की सही कीमत का पता लगता है।

पर विदेशी बाजार हमारे दर्पण क्यो बन जाते है? यदि विदेशो से हम माल न तो खरीदे और न उन्हे बेचे, तब तो किसको फुर्सत है कि हमारे चलण की क्या कीमत होनी चाहिए, इसपर कोई विदेशी बहस करने बैठेगा। पर चूकि हम विदेशो मे जिन्स मोल लेते है और बेचते है, इसलिए हमारे चलणी प्रतीक की कीमत को हर समय कूतते रहना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है। यह क्यो?

मान लीजिए, आप लन्दन के बाजार मे कुछ चीजे मोल लेते है, तो उनका दाम आप यदि भारतीय नोटो मे चुकाना चाहेगे तो कोई दूकानदार आपको माल न बेचेगा, इसलिए आपको वह दाम अग्रेजी नोटो मे चुकाना पडता है। अग्रेजी नोट आप कहा से लाते है? आपके घरवाले हिन्दुस्तान मे किसी विदेशी बैक को रुपया देते है और उसकी कीमत का अग्रेजी द्रव्य खरीद कर आपको उसी बैक की मार्फत भेज देते है, जो आपको अग्रेजी नोट या सिक्को की शक्ल मे मिल जाता है। पर इसी तरह यदि सब लोग यहा से इग्लैण्ड भेजनेवाले ही होगे, और मगानेवाला कोई न रहेगा, तब तो कारो-बार अपने-आप कुछ दिन के बाद बन्द हो जायगा। पर चूकि जैसे भेजने-वाले है वैसे ही लन्दन से द्रव्य मगानेवाले भी है, इसीलिए यह दुतरफा

कारोबार चलता रहता है, और जब हम रुपए से अंग्रेजी पाउण्ड खरीदते है (लन्दन धन भेजने के लिए) या तो पाउण्ड बेच कर रुपया खरीदते है (लन्दन से धन मगाने के लिए) तब जिस कीमत में या तो हम रुपया बेच कर पाउण्ड खरीदते है, या पाउण्ड बेच कर रुपया खरीदते है, उससे हमे पता लग जाता है कि हमारे प्रतीक (चलण) की विदेश मे क्या कीमत है ।

विदेश में कीमत कैसे बनती है ?

प्रश्न का उत्तर यह है कि हर चीज की कीमत लेने और बेचनेवालो की गरज पर अवलम्बित है । वैसे ही इस विषय मे भी होता है ।

पर इसे ज्यादा स्पष्टतया समझ लेना आवश्यक है । यदि हम विदेशो मे माल ज्यादा लेते है और कम बेचते है , जैसे कि हमने १०० का माल तो लिया और ६० का बेचा, तो हमे विदेशो को ४० चुकाना बाकी रहा । यह ४० हम कैसे चुकाएँगे ?

इसके तीन तरीके हो सकते है ।

एक तरीका तो है पावनेदार को सोना भेज कर । सोने के सभी ग्राहक होते है, और तमाम मुल्को ने करीब-करीब सोने की एक निर्धारित कीमत कायम कर रखी है, उस निर्धारित कीमत पर, हर मुल्क की नोट-प्रसारक बैंक प्राय सोना खरीदने को तैयार रहती है । इसलिए पावनेदार को सोना भेज कर हमारा कर्ज चुकाने मे तो कोई कठिनाई है ही नही । पर हर साल सोना भेज कर तो वही मुल्क माल खरीद सकता है जिसके पास सोने की बडी-बडी खाने हो और जहा सोने की बडी मिकदार मे पैदाइश भी हो । इसलिए सोना भेज कर दाम चुकाने का यह तरीका चाहे १-२ साल के लिए भले ही चले, पर हर मुल्क के लिए निरन्तर इस तरीके का चलाना व्यावहारिक नही हो सकता ।

दूसरा तरीका है—जहा माल खरीदा वही लोगो से धन उधार लेकर माल का दाम चुकाया । यह तरीका भी विशेष समय के लिए चाहे उपयुक्त हो, पर निरन्तर नही चल सकता । निरन्तर उधार कौन देता जायगा ?

आखिर कभी तो वापिस चुकाना ही होगा। इसलिए यह तरीका भी निरन्तर नही चल सकता।

अब एक तीसरा तरीका है, जो दाम चुकाने के लिए सर्वदा व्यावहारिक होता है। यह तरीका यह है कि अपने यहा बनी चीजो को या अपनी सेवा या श्रम को विदेश मे बेचकर उससे जो द्रव्य मिले, हम उसीसे अपना विदेशी देन चुकावे।

उपरोक्त तीन तरीको मे से प्रथम दो तरीके तो सर्वदा और बडे परिमाण मे चल ही नही सकते। तीसरा ही एकमात्र तरीका है, जो हमे विदेश के भुगतान चुकाने मे हमारा सहायक हो सकता है। हर मुल्क के लिए यह लाजिमी है कि या तो वह विदेशी व्यापार से मुह मोडे या विदेश मे माल लेने और बेचने की कीमत को एक हद तक समतल पर रखे—अर्थात् जितना-सा ले उतना-सा ही बेचे।

इसके कुछ अपवाद है सही। मान लीजिए कि हमारे पास ऐसी चीजे है जिनके बिना दुनिया का काम ही नही चल सकता है, तो विदेश-वाले हमसे हमारी जिन्से खरीदते जाएँगे और बदले मे हमे सोना भेजते जाएँगे। या तो ऐसा भी हो सकता है, जैसा कि इग्लैण्ड के सम्बन्ध मे था। इग्लैण्ड ने तमाम दुनिया को कर्जदार बना रखा था, इसलिए यद्यपि इग्लैण्ड बेचता था कम, खरीदता था दुनिया मे ज्यादा—उस ज्यादा खरीदे हुए माल की कीमत—अपने कर्जदारो से ब्याज-वसूली का जो धन आता था, उसीमे चुका देता था। पर ऐसे अपवादो को छोड कर यह मानना होगा कि विदेशी खरीद और बिक्री की कीमत को समतल पर लाना हमारे लिए आवश्यक है।

पर जब तक हम इस लेवा-बेची को समतल पर नही लाते तब तक यदि विदेशो मे हम जितना बेचते है उससे हम ज्यादा खरीदते है, तो उसकी कीमत चुकाने के लिए हमे हर समय अपने द्रव्य याने मुद्रा को बेच कर विदेशी द्रव्य याने विदेशी मुद्रा खरीदने की जरूरत बनी रहती है। इसके कारण हमारे प्रतीक का दाम विदेशो मे झुकाव की ओर—अर्थात् गिरने की ओर होगा। और यदि हम विदेशो मे जितना लेते है उससे वहा ज्यादा बेचते है, तो उस बेचाण की कीमत को स्वदेश लाने के लिए या तो हमे वहा सोना मिल

जायगा, अन्यथा हम हर समय विदेशी द्रव्य-प्रतीक के बेचवाल और अपने चलण-प्रतीक के लेवाल रहेगे। नतीजा यह होगा कि हमारे प्रतीक की कीमत विदेशो मे चढाव की ओर होगी।

जब फुलावट की नीति होती है तब, हमने बताया है कि, हमारे प्रतीक की कीमत कम हो जाती है। पर किस समय कितनी कीमत गिरी, उसका सही अन्दाज भी, जैसा कि ऊपर बताया है, विदेशी बाजारो से ही लगता है। विदेशो मे हमारे द्रव्य की कीमत कैसे भिन्न-भिन्न, पर तमाम सजोगो के कारण, कायम होती है, इसकी कुछ कल्पना उपरोक्त चित्रण से ही की जा सकती है। इन तमाम सजोगो मे कई सजोग ऐसे होगे जो विदेशो मे हमारे चलण की कीमत को चढानेवाले होगे, और कई ऐसे सजोग होगे जो हमारे चलण की कीमत को गिरानेवाले होगे। इन सब सजोगो के जोड-बाकी के बाद शेष जो सजोग कीमत बढाने या घटाने के पक्ष का रह जाता है उसीका फिर एकपक्षीय असर होता है।

जब फुलावट की नीति हमारे यहा बरतती है तो हमारी जिन्सो के दाम हमारे देश मे तो बढते है, पर चूकि विदेशो मे तो न फुलावट है, न गिरावट, स्पष्ट है कि वहा दाम साधारणतया स्थिर रहेगे—अर्थात् न चढेगे, न गिरेगे। "साधारणतया"—पाठको का ध्यान इस क्रिया-विशेषण की ओर आकृष्ट किया जाता है। अवस्था-विशेष मे—जैसा कि आगे चल कर बताया गया है—एक देश मे दाम गिरने मे दूसरे देश या देशो मे भी मन्दी आ सकती है।

अच्छा, तो हमने कहा कि फुलावट की नीति के कारण अपने देश मे हमारी जिन्सो के दाम बढते है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि हमने फुलावट-नीति धारण की, उस समय हमारे यहा गेहूँ का दाम १ रुपए का १० सेर था। और यह भी मान लीजिए कि उसी जमाने मे हमारे १ रुपए के सिक्के की कीमत किसी एक विदेशी मुल्क मे १ मार्क जितनी थी। इसके माने हुए कि हमारे यहा और वहा, दोनो जगह १ मार्क मे १० सेर गेहूँ मिल सकते थे। (१ रुपया=१ मार्क। १ रुपया=१० सेर गेहूँ। इसलिए १ मार्क=१० सेर गेहूँ।) अब हमारे यहा तो फुलावट की

नीति जारी हो गई, उसके कारण गेहूँ के दाम अन्य जिन्सो के दामो के साथ चढ गए और अब एक रुपए मे केवल ८ सेर ही गेहूँ मिलता है। पर उस विदेश मे तो आज भी वही भाव है जो पहले थे, याने १ मार्क का भाव १० सेर गेहूँ ही है। (इस उदाहरण मे हमने यह मान लिया कि और तमाम स्थिति दोनो मुल्को मे यकसा है, इसलिए जिन्सो के दाम भी, यदि हमारे यहा फुलावट न हो तो यकसा रहते।)

अब मान लीजिए कि हमने उस विदेश मे एक मार्क की कोई चीज खरीदी, उसकी कीमत चुकाने के लिए बदले मे हमने वहा गेहूँ बेचा। अब गेहूँ यहा मिलता है १ रुपए का ८ सेर। वहा भाव है १ मार्क का १० सेर गेहूँ। हमे १ मार्क वहा भेजना चाहिए, क्योकि हमने १ मार्क की वस्तु ली है। तो हमको एक मार्क चुकाने के लिए वहा दस सेर गेहूँ बेचना पडा, जिसका कि हमे यहा स्वदेश मे $१\frac{१}{४}$ रुपया देना पडा। इसके माने यह हुए कि पहले जहा १ रुपए की कीमत १ मार्क थी, अब $१\frac{१}{४}$ रुपए की कीमत १ मार्क हुई। दूसरे शब्दो मे हमारे रुपए की दर १ मार्क से गिर कर ८० मार्क रह गई। $\frac{\text{१ मार्क}}{\text{१}\frac{१}{४}\text{ रुपया}}$ = ८० मार्क। अर्थात् २० प्रतिशत कीमत गिर गई।

विदेशी मुल्को मे हमारे द्रव्य की कीमत को शास्त्रीय भाषा मे हुण्डी की दर कहते है। जब हमारे चलण की कीमत विदेशो मे बढती है तो हम कहेगे कि हमारी हुण्डी की दर तेज है। हमारे चलण की कीमत गिरी, तो कहेगे कि हुण्डी की दर मन्दी है।

७

हुण्डी की दर गिरने से या ऊची होने से हमारे मुल्क के उद्योग-धधो और आयात-निर्यात पर क्या असर होता है, और वह असर कैसे होता है, इसका विवेचन भी कर ले।

यह तो अब समझ मे आ ही गया होगा कि फुलावट-नीति की रचना चलण मे प्रतीक की बहुतायत की बुनियाद पर खडी की जाती है,और इसके फलस्वरूप जिन्सो के दाम चढ जाते है। जिन्सो के दाम क्यो चढ जाते है, यह पहले हम समझ चुके। नाणे की अधिकता के माने है कि नाणा सस्ता है। नाणा सस्ता है, इसी भाव को हम दूसरी भाषा मे यो भी व्यक्त कर सकते है कि चीजे महगी है। यदि फुलावट-नीति द्रुत गति से आती है, तो फिर लोग मुद्रा की साख मे विश्वास भी खो बैठते है। इससे भी लोगो की रुचि मुद्रा मे धन रोकने से हट कर जिन्सो मे धन रोकने की ओर ज्यादा वढ जाती है। ये सब-के-सब जिन्सो के दाम तेज करने के हेतु बन जाते है।

पर एक और चीज है, जो जिन्सो के दाम बढाने मे सहायक होती है। वह है विदेश से आनेवाली चीजो का ऊचा पडता। जब हमारी हुण्डी की दर गिर जाती है तो विदेश मे तो, हमारे यहा आनेवाली चीज के दाम चाहे वही पुराने दाम हो पर हुण्डी गिर जाने से यहा का पडता अपने-आप ऊचा हो जाता है।

मसलन, हमे एक घडी विदेश से मगानी है। उसकी कीमत, मान लीजिए १० मार्क है। पुराने हिसाब से १० मार्क के माने थे १० रुपए। पर चूकि अब हमारी हुण्डी की दर २० प्रतिशत, जैसा कि हम ऊपर बता चुके, गिर गई, इसलिए १० रुपए के हमे कुल ८ मार्क ही मिलते है। इसके माने यह हुए कि १० मार्क खरीदने के लिए हमे अब १२॥ रुपए की जरूरत है। इसके माने यह भी हो गए कि जिस घडी का पडता पहले १० रुपए का था वह अब १२॥ रुपए का हो गया।

इसी तरह हमारी निर्यात की चीजो का पडता भी वढ जाता है, वह इस तरह---मान लीजिए कि हम यहा से वाहर रूई भेजते है, और १ गाठ रूई के दाम जर्मनी मे १०० मार्क पहले थे। उसके माने थे, पुरानी हुण्डी के हिसाव से, १०० मार्क=१०० रुपए। अव भी मान लीजिए, जर्मनी मे रूई की कीमत वही १ गाठ के १०० मार्क है। पर चूकि हुण्डी की दर गिर गई, इसलिए १०० मार्क को वेच कर हम रुपया खरीदते है तो, .८० मार्क=१ रुपया, इस हुण्डी की दर से हमे १०० मार्क के १२५ रुपए उपलब्ध होते है। इसके मान हुए कि रूई के निर्यात के लिए पडता लगता है १२५ रुपया प्रति गाठ, जो पहले १०० रुपया प्रति गाठ था।

विदेशो से आनेवाली और विदेशो को जानेवाली चीजो का जव पडता वढ जाता है तो उन चीजो के चढे दाम देख कर अन्य चीजो के दाम भी अपने-आप ऊचे जाने लगते है। इस तरह अन्य कारणो के अलावा विदेशो से सम्वन्ध रखनेवाली चीजो का पडता ऊचा होने की वजह से भी जिन्सो के दामो को ऊचा जाने मे सहायता मिलती है।

हुंडी की दर और उद्योग-धंधे

अव इस परिस्थिति मे उद्योग-धधो पर क्या असर होता है? इसका उत्तर तो साफ है। जव जिन्सो के दाम ऊचे जाते है तो कारखानेदार का मुनाफा भी वढता है। यह सही है कि जिन्सो के दाम ऊचे जाते है तो कच्चे माल के दाम भी वढते है। पर इतना होने पर भी कारखानेदार या अन्य माल उपजानेवाले लोगो (जैसे किसान, जुलाहा, खटीक इत्यादि) के मुनाफे की वृद्धि मे कोई रुकावट नही होती। वतौर उदाहरण, हम एक कारखानेदार के काल्पनिक पडता का जरा विश्लेषण कर ले। हर १०० रुपए के माल पर, मान लीजिए, कारखानेदार का खर्च नीचे लिखे अनुसार होता है —

रुपया	
५०	कच्चा माल
२५	मजदूरी

१०	घिसाई
५	व्याज
१०	मुनाफा
१००	

अव मान लीजिए फुलावट-नीति के कारण जिन्सो के दाम वढे और जिस माल का कारखानेदार को पहले १०० रुपया मिलता था उसका अब १२५ रुपया मिलेगा। इसके साथ-साथ, मान लीजिए, कच्चे माल का दाम भी वढा और मजदूरी भी उसी अनुपात से वढी, तो फिर मुनाफे पर क्या असर होगा ? नीचे के तलपट से इसका स्पष्ट अन्दाज लग जायगा।

	पुरानी कीमत	नई कीमत
	रुपया	रुपया
कच्चा माल	५०	६२॥
मजदूरी	२५	३१।
घिसाई	१०	१०
व्याज	५	५
मुनाफा	१०	१६।
	१००	१२५

उपरोक्त तफसील से पता लगेगा कि जहा कच्चे माल और मजदूरी का दाम २५ रुपया प्रतिशतक वढा वहा घिसाई और व्याज मे पुराने और नए खर्च मे कोई फर्क नही पडा। कारण प्रत्यक्ष है। जैसा कि हम पहले वता चुके है, फुलावट और गिरावट के कारण लेन-देन की रकम पर कोई प्रभाव नही पडता। १०० रुपए हमने कर्ज ले रखा था तो आज भी हमे १०० रुपया ही चुकाना है। इसलिए व्याज पर कोई असर नही पडता। और घिसाई पर भी क्या असर पड़ेगा ? इसलिए मुनाफा जो पहले १० रुपए एक अदद पर था, वह अव १६। हो गया। या तो यो भी हो सकता है कि कारखानेदार की आज यह शक्ति है कि पहले जहा

बाहर की चीज का पडता १०० रुपए का था और कारखानेदार मुनाफे को अक्षुण्ण रखते हुए १०० रुपए से कम मे नही बेच सकता था, आज वह विदेशी माल का पडता १२५ रुपया होने पर भी १० रुपए का ही मुनाफा रखे तो ११८ रुपया १२ आने मे बेच सकता है।

इस हिसाब से यह सही है कि कारखानेदार का मुनाफा बढ गया, और यदि वह अपने दाम नही घटाता तो मुनाफा १० के बजाय १६। हो गया, याने ६२।। प्रतिशत बढ गया। पर साथ ही यह भी जानना चाहिए कि जिन्सो के दाम बढने के कारण उस मुनाफे की ताकत ६२।। प्रतिशत नही बढी। यदि जिन्सो के दाम औसतन सवाए हो गए है, जैसा कि हमने हिसाब लगाया है, तो फिर दाम बढने के पहले जो करामात १३ रुपए मे थी वही आज १६। मे है। मान लीजिए कि पहले १३ रुपए मे १ मन पाट मिलता था और अब पाट के दाम बढ कर सवाए हो गए—अर्थात् १६। हो गए, तो पहले के १३ और अबके १६। रुपए की क्रय-शक्ति मे कोई फर्क नही पडा। खैर।

तो अब इस परिस्थिति के दो असर साथ-साथ हुए। एक तो स्वदेशी उद्योग-धधो पर, और दूसरा विदेशी आयात पर और निर्यात पर। स्वदेशी उद्योग-धधो पर अच्छा असर हुआ। विदेशी आयात मुरझाने लगा, और निर्यात पनपने लगा।

सबसे पहले स्वदेशी उद्योग-धधो को लीजिए।

यह स्वाभाविक है कि जब मुनाफा बढता है तो कारखानेदार या माल उपजानेवाले को ज्यादा माल पैदा करने की चाह होती है। ऊपर के हिसाब मे हमने मान लिया है कि मजदूरी भी अन्य जिन्सो के दामो के साथ-साथ बढने लगती है। पर व्यवहार मे ऐसा होता नही। जब जिन्सो के दाम बढते है तो मजदूरी भी जब तक उसी अनुपात से नही बढती तब तक कारखानेदार को हमारी कूत मे भी मुनाफा अधिक रहता है। इसके फलस्वरूप कारखानेदार माल ज्यादा पैदा करने लगता है, कारखाना बढाने भी लगता है। नए-नए कारखाने भी खुलने लगते है। अधिक लोगो को मजदूरी मिलने लगती है।

इसका प्रभाव वाहर से आनेवाली चीजो पर भी पडता है। चूकि कारखानेदार का मुनाफा वढा है, इसलिए उसमे यह ताकत आ जाती है कि वह मुनाफे को थोडा कम करके भी विदेशी चीजो के मुकाविले मे अपना माल सस्ता बेच सके। विदेशी चीजो का ऐसी प्रतिद्वद्विता मे टिकना मुश्किल हो जाता है। विदेशी आयात पर इससे वुरा असर पडता है।

इसके विपरीत, निर्यात पर अच्छा असर होता है, क्योकि जव ऊचे पडता की वजह से यहा दाम ऊचा हो गया पर विदेशो मे हमारी चीज का दाम वही पुराना है, तव यहा के उपजानेवाले थोडा सा यहा भाव मदा कर दे तो विदेश मे भाव पुराने दामो से भी सस्ता हो जायगा। और इस तरह विदेशो मे हमारे माल की बिक्री वढेगी। साराश यह कि अपनी मुद्रा की कीमत गिरा देने से हमारे कल-कारखाने, उद्योग-धधे सव पनप उठते है, विदेशी आयात पर प्रहार होने लगता है, विदेशी निर्यात जागने लगता है। इस तरह देश की समृद्धि बढने लगती है।

दर गिरने से लाभ स्थायी या अस्थायी ?

यह प्रश्न हो सकता है कि जरा हुण्डी के हेरफेर से या मुद्रा की कीमत कम कर देने से समृद्धि वढने का क्या वास्ता? वास्ता है। वह इस तरह से।

एक आलसी मनुष्य है, वह न खेत बोता है, न मेहनत करता है। इसलिए दारिद्रय ने उसके घर पर प्रभाव जमा रखा है। अव किसीने उससे कहा कि हम तुम्हे रोजमर्रा कुछ मिठाई खिलाएगे, कुछ तमाशे दिखाएगे और कुछ अच्छे कपडे भी देगे, वशर्ते कि तुम अपने खेत को मेहनत के साथ जोतो और उसमे जो फसल हो उसका आधा हिस्सा हमे दे दो। वह आलसी मिठाई और अच्छे कपडो के प्रलोभन मे आकर काम करने लगता है, और अन्त मे अच्छी फसल तैयार कर लेता है। फसल के आधे हिस्से की आमदनी वह प्रलोभन देनेवाले सज्जन को सौप देता है। इस सज्जन को तो, उसने जितना मिठाई इत्यादि पर खर्च किया था उसकी पूरी कीमत उस फसल के आधे हिस्से मे से वसूल हो जाती है, और उस आलसी को अच्छा खाने-पहनने को मिला, और आधी फसल मिली जिससे उसकी

समृद्धि वढ गई। इसके अलावा उसकी आदत भी तो वदली। काम करते-करते वह आलसी कर्मशील वन गया। प्रलोभन देनेवाले सज्जन का कुछ व्यय नहो हुआ, और आलसी कर्मण्य वन गया।

अव कोई कहे कि हुण्डी की दर गिरने और समृद्धि से क्या वास्ता? तो यह भी कहा जा सकता है कि आलसी के मिष्टान्न-भोजन से उसकी समृद्धि का क्या वास्ता? पर वात यह है कि गिरती हुई हुण्डी की दर, या दूसरे शव्दो मे, गिरती हुई मुद्रा की कीमत माल उपजानेवालो के दिलो मे एक तरह का उत्साह और तृष्णा पैदा करती है, जो उन्हे ज्यादा काम करने के लिए खदेडती है, और इस तरह देश की समृद्धि पर इसका अच्छा असर होता है।

ठीक इसका विपरीत असर गिरावट की नीति का होता है।

हमने यह वताया है कि यह अच्छा असर मुद्रा की गिरती हुई कीमत का होता है। पर एक दफा कीमत गिरा दी गई, फिर भी क्या उसका असर होता है?

होता है, पर आशिक। हमने पप का पहिया घुमाया और पानी कुए मे से निकलने लगा। जव पहिया घुमाना वन्द कर दिया तव पानी भी निकलना वन्द हो गया। इसी तरह जव हुण्डी की दर गिरती ही रहती है तव तो चीजो के दाम भी वढते ही चले जाते है और उससे पैदा होनेवाले नतीजे—जैसे उद्योग-धधो की उन्नति, अधिक माल की पैदाइश, वेकारो को रोजगार, विदेशी आयात को ठेस, निर्यात की पुष्टि इत्यादि अपना प्रभुत्व जमाए रखते है। उसी तरह हुण्डी की गिरी हुई दर भी एक जगह आकर जव स्थिर हो जाती है और लोगो को उसकी स्थिरता मे विश्वास आ जाता है, तव गिरती हुई हुण्डी से जो नतीजे पैदा हुए थे वे धीरे-धीरे करके रफा होने लगते है—अर्थात् पप मे से पानी निकलना धीरे-धीरे वन्द हो जाता है।

पर इसके माने यह नहीं कि हुण्डी गिरा कर फिर स्थिर कर दी तो उसका कोई असर ही नही हुआ। जो पानी कुए से निकल आया उसकी भी तो कोई कीमत है। उस निकले हुए पानी से हमने सिंचाई की,

धान पैदा किया, उससे हम पुष्ट बने। पुष्ट बन कर हमने मेहनत ज्यादा की। उस मेहनत से फिर नई सम्पत्ति पैदा की, और इस तरह से समृद्धि-चक्र जो चला तो फिर चलता ही गया। इस दृष्टि से गिराई हुई मुद्रा की दर का लाभ भी एक दृष्टि से स्थायी-सा हो गया।

पर यह भी कोई कह सकता है कि फिर हुण्डी की दर गिरने से इस तरह लाभ होता है तो हम दर को गिराते ही क्यो न जायँ ? स्थिर करे ही क्यो ? इस रामबाण औषधि से अघाना ही क्यो ? अफसोस ! मकर-ध्वज के सेवन से शरीर की चपलता अवश्य बढती है, पर वह स्वय मनुष्य की क्षुधा को नही मेटता। और ज्यादा सेवन से तो शरीर का अन्त भी हो सकता है। फिर यदि हम मुद्रा की दर को गिराते ही चले जायँ तो एक समय ऐसा आ सकता है कि जब मुद्रा की साख मे किसीको श्रद्धा ही न रहे और मुद्रा स्वय नेस्तनाबूद हो जाय। और फिर तज्जनित हानि-लाभ भी कहा रहे ? जब शरीर ही नही तो प्राण कहा ? मुद्रा ही मर मिटे, तो उससे होनेवाले हानि-लाभ कहा रहे ? और यदि मुद्रा की कीमत गिरा देना ही एक जादू का डडा हो, जो एक पल मे समृद्धि पैदा कर दे, तो फिर हर मुल्क ही इसका प्रयोग क्यो न करे ? और यदि हर मुल्क इसका प्रयोग करने लग जाय तो दो देशो के बीच जो हुण्डी की घटा-बढी से हानि-लाभ होता है वह होने ही नही पाए। दो लकीर पास-पास मे हो, और एक बडी हो, तो दूसरी छोटी कहलायगी। पर यदि बडी को काट कर छोटी कर दी जाय तो, जो पहले छोटी थी वह अब बडी कहलायगी।

हुण्डी गिरने के माने भी तो यही है कि हमने अपनी मुद्रा की दर गिरा दी, अन्य मुल्कवालो ने नही गिराई। ऐसी हालत मे अपेक्षाकृत हमारी मुद्रा सस्ती हो गई। पर यदि दूसरे देशवालो ने भी गिरा दी, तो फिर हमारी हुण्डी की दर दूसरे देशो के मुकाबिले मे नीची नही रही। और ऐसी हालत मे विदेशी आयात-निर्यात पर कोई अच्छा-बुरा असर नही हुआ। बताना तो यह है कि हुण्डी गिरने का असर पूर्णतया स्थायी नही है, एक अश मे स्थायी है। मकरध्वज-सेवन का कुछ तो लाभ शरीर को मिलता ही है। हुण्डी गिराने से समाज की आर्थिक स्थिति को जो एक मर्तबा लाभ मिलता

है उसका स्थायी असर भी रह ही जाता है। ठीक इसके विपरीत, गिरावट-नीति द्वारा मुद्रा की दर चढा कर समाज की आर्थिक स्थिति को हानि पहुँच जाती है, वह भी स्थायी नुकसान कर बैठती है। छाती मे जो सेल लगा उसका घाव तो रुझ गया, पर उसका दाग तो रह ही गया, और वह जगह भी सदा के लिए नाजुक बन गई।

कभी-कभी तो ऐसा देखा गया है कि ससार की बडी-बडी ऐतिहासिक घटनाओ की तह मे एक छोटी-सी घटना हुई है, जिसको इतिहास लिखने-वालो ने कम महत्व दिया। प्रशिया के फ्रेडरिक दी ग्रेट को महान बनने का मौका यो मिला कि ऑस्ट्रिया का शाहन्शाह मर गया। पर ऑस्ट्रिया का शाहन्शाह भी तो इसलिए मरा कि वह एक रोज कुकुरमुत्ते की तरकारी वेहद परिमाण मे खा गया। 'विधि का लिखा को मेटनहारा' यह उक्ति सही है। पर विधि भी जब कोई बडी होनेहार को घटने बैठता है तब शुरुआत एक नगण्य चीज से करता है। ऑस्ट्रिया के शाहजादे के खून ने यूरोप मे खून की नदिया वहा दी। दुर्योधन और अर्जुन, जब दोनो श्रीकृष्ण के पास महाभारत–युद्ध के लिए सहायता मागने गए तब यदि दुर्योधन श्रीकृष्ण के सिरहाने न बैठ कर पैताने बैठता, या तो श्रीकृष्ण की सेना न लेकर स्वय श्रीकृष्ण को अपने पक्ष मे लेता, तो महाभारत-युद्ध का अन्त क्या होता, यह बताना कठिन है।

पर कोलम्बस ने अमेरिका का आविष्कार किया, और नई दुनिया से व्यापार-रोजगार चमक उठा। उसके कारण यूरोप भर मे सरसब्जी फैल गई, ऐसा यूरोप के आर्थिक इतिहासज्ञ मानते है। अमेरिका की भूमि क्या मिली, यूरोप के लिए तो गडा सोना मिल गया। और केलीफोरनिया मे तो सचमुच सोने की खाने मिल गई जिन्होने यूरोप की समृद्धि की खूब वृद्धि की। इन सबका यूरोप पर कितनी मात्रा मे असर हुआ, यह चाहे न मापा जा सके, पर जो जाहोजलाली की बाढ यूरोप मे आ गई उसने उसको सदा के लिए सम्पन्न कर दिया, इसमे कोई शक नही।

इसलिए हुण्डी गिरने का असर चाहे अस्थायी हो, पर एक मर्तबा

मिला हुआ सहारा कमजोर शरीर के पनपने मे काफी सहायता पहुचा देता है।

फुलावट—नियंत्रित और अनियंत्रित

फुलावट-नीति के शुभ परिणामो का भी हमने जिक्र किया और अति मात्रा मे उसके बुरे नतीजे का भी वर्णन किया। यहा यह समझ लेना चाहिए कि जहा फुलावट-नीति केवल व्यापार-रोजगार को चमकाने के लिए, उद्योग-धधो को पनपाने के लिए काम मे लाई जाती है, वहा फुलावट स्वल्प मात्रा मे, और नियन्त्रण के साथ, उपयोग मे लाई जाती है।

हम बता चुके है कि जब फुलावट द्रुत गति से अनियन्त्रित होकर चलती है तब ब्याज सस्ता नही, महगा—अत्यन्त महगा हो जाता है। महगा ब्याज भी रोजगार-व्यापार के लिए घातक है। इसलिए स्वेच्छा से जब फुलावट-शस्त्र का प्रयोग होता है तब सारी नीति पर इस हिसाब से नियन्त्रण रखा जाता है कि जिसमे सिक्के की साख मे से लोगो की श्रद्धा न टूटे, लोगो मे इसके सम्बन्ध मे भय या घबराहट का सचार न हो, ब्याज की दर साधारणतया ठीक हो और दामो मे तेजी इतनी ही आवे जितनी कि सचालक चाहते हो। इसके माने यह हुए कि ऐसी नीति तो स्वेच्छा से ही काम मे लाई जाती है, और उसी हालत मे काम मे लाई जा सकती है जबकि देशकी सरकार प्रजा का विश्वासभाजन हो, बलिष्ठ हो और देश और परदेश मे उस सरकार और उस देश की पूरी धाक हो। और चूकि यह सारा-का-सारा खेल अपने देश मे उद्योग-धधो को प्रोत्साहन देने के लिए और लोगो मे नई आर्थिक जागृति पैदा करने के लिए खेला जाता है इसलिए यह फुलावट भी स्वल्प मात्रा मे ही होती है।

पर इसके विपरीत, जहा फुलावट अनियन्त्रित होती है—जैसा कि रूस, जर्मनी वगैरह के सम्बन्ध मे हम ऊपर बता चुके है—तब इसका परिणाम दूसरी तरह का होता है। यह सही है कि उस फुलावट मे भी कल-कारखाने बेहद पनपते दिखाई देते है, पर मुद्रा की शक्ति का इस जोर से ह्रास होता चला जाता है कि वह करोडो का मुनाफा हजारो के मुकाबिले मे भी बलहीन

होता है। और दूसरी तरफ सरकार और देश की साख में इतने जोर का धक्का पहुँचता है, कि जिनके पास पूंजी होती है वे तबाह हो जाते हैं। लोग अपना माल-मत्ता, सम्पत्ति आदि बाहर भेजने लगते हैं। परस्पर की साख में भी विश्वास हट जाता है। अन्तरराष्ट्रों में देश की साख कौडी की रह जाती है। सारा आर्थिक तन्त्र छिन्न-भिन्न हो जाता है।

ऐसी स्थिति अवश्य ही अवांछनीय है, और यह स्पष्ट है कि जान-बूझ कर ऐसी स्थिति को कोई निमन्त्रण नहीं देता। यह तो मजबूरी से ही आती है। देश का दिवाला निकलने का दूसरा नाम यह उग्र फुलावट है, जिसे राज-दुराजी के जमाने में ही सरकार बलात् बाध्य होकर अपनाती है। सरकार को जब राजतन्त्र चलाने के लिए कर-संग्रह में भी कठिनाई आने लगती है तब कागज, स्याही और प्रेस की शरण लेकर इस जोर से नोट छापना शुरु करती है कि इस ताण्डव नृत्य को देख कर एक छिन के लिए भी कोई अपने पास नोट रखने की हिम्मत नहीं करता।

८

हम वता चुके है कि चलण का मूल्य स्थिर नही, पर घटना-वढता है। तो भी जन-समाज के मन पर एक ऐसी थोथी और वेवुनियाद छाप पडी हुई है कि चलण का मूल्य स्थायी है। यदि ऐसा नही होता तो जिस निर्भयता के साथ लोग रुपया उधार देते है और सरकारी कागजो मे लगाते है वैसा कभी नही होता। पर मनुष्य तो प्राय वर्तमान का पुजारी होता है, और पुरानी स्मृति कटु भी हो तो उसे भूल जाता है। इसलिए जव तक कोई भयकर युद्ध, विप्लव या आकस्मिक घटना के कारण चलण की कीमत वुरी तरह नही गिरने लग जाती तव तक साधारण मनुष्य को तो पता भी नही चलता कि चलण की कीमत गिरी है क्या! साधारण फुलावट यदि नियन्त्रित हो तव तो आम जनता को पता भी नही चलता कि पर्दे के पीछे क्या नाटक खेला जा रहा है। तो भी जिन्सो के दामो के आकडो का हम सूक्ष्म अध्ययन करे तो हमे सहज ही पता लग जायगा कि पिछले सौ सालो मे चलण के मूल्य मे घटा-वढी होती ही रही है।

जिन्सो के दामो के आकडे कैसे तैयार होते है इसका सक्षिप्त विवरण भी जान लेना चाहिए। मान लीजिए कि हमारे देश के गरीव किसान अधिकतर गेहूँ, वाजरा, मोठ, चना, घी, तेल, दियासलाई, कपडा, गुड, इत्यादि—४० या ५० चीजो का उपयोग करते है। तो आकडे तैयार करने वाले विशेषज्ञ उन सव जिन्सो के दामो का एक गड-पडता निकाल लेते है। वह गड-पडता साधारण तरह से यो निकाला जाता है कि जिस साल को हम वुनियादी साल मानते है उसके गड-पडता का अक सौ मान लिया जाता है। मान लीजिए, सन् १९१४ को हमने वुनियादी साल माना। उस साल मे

गेहूँ का भाव था	५ रुपया मन
जौ का भाव था	४ रुपया मन

तेल का भाव था — २० रुपया मन
घी का भाव था — ४० रुपया मन
गुड का भाव था — ५ रुपया मन
कपडे का भाव था — ४ आने गज

(यह महज उदाहरण है, इसीलिए ४०-५० चीजो के दाम न देकर सिर्फ ६ जिन्सो के दाम दिए है।)

तो हमने उस साल की जिन्सो की कीमत १०० के अक पर कायम कर दी। अव १९४१ मे मान लीजिए—

गेहूँ का भाव था — ६। रुपया मन (याने २५ प्रतिशत वढा)
जौ का भाव था — ५ रुपया मन (याने २५ प्रतिशत वढा)
तेल का भाव था — १५ रुपया मन (याने २५ प्रतिशत घटा)
घी का भाव था — ८० रुपया मन (याने १०० प्रतिशत वढा)
गुड का भाव था — २॥ रुपया मन (याने ५० प्रतिशत घटा)
कपडे का भाव था — ६ आने गज (याने ५० प्रतिशत वढा)

तो—

१ वस्तु मे — २५ प्रतिशत वढा
१ " — २५ " वढा
१ " — २५ " घटा
१ " — १०० " वढा
१ " — ५० " घटा
१ " — ५० " वढा

तो १२५ प्रतिशत कुल वढा, और ६ जिन्सो द्वारा १२५ प्रतिशत को विभाजित किया तो फल यह निकला कि एक जिन्स पर २०$\frac{५}{६}$ प्रतिशत वृद्धि हुई ($\frac{१२५}{६}$=२०$\frac{५}{६}$ प्रतिशत)—अर्थात् जिन्सो की दर १०० से वढ कर १२०$\frac{५}{६}$ हो गई। तात्पर्य यह हुआ कि जिस चलण की क्रय-शक्ति १९१४ मे १०० थी वह १९४१ मे २०$\frac{५}{६}$ प्रतिशत कम हो गई। दूसरे शब्दो मे, चलण का दाम २०$\frac{५}{६}$ प्रतिशत गिर गया।

सूचक अंक

इस तरह जिन्सो की दर के जो अक तैयार किए जाते है उन्हे हम "सूचक अक" के नाम से पुकार सकते हैं। अब १९१५ से १९४० तक के सूचक अक नीचे की तालिका मे देते हैं। इससे पता लगेगा कि चलण की क्रय-शक्ति मे कितनी घटा-बढी हुई है, अर्थात् चलण की कीमत किस कदर घटती या बढती रही है।

कलकत्ते में कुछ खास चीजों के थोक दाम

१९१४ = १००

१९१५	औसत	११२	१९२८	औसत	१४५
१९१६	,,	१२८	१९२९	,,	१४१
१९१७	,,	१४५	१९३०	,,	११६
१९१८	,,	१७८	१९३१	,,	९६
१९१९	,,	१९६	१९३२	,,	९१
११२०	,,	२०१	१९३३	,,	८७
१९२१	,,	१७८	१९३४	,,	८९
१९२२	,,	१७६	१९३५	,,	९१
१९२३	,,	१७२	१९३६	,,	९२
१९२४	,,	१७३	१९३७	,,	१०२
१९२५	,,	१५९	१९३८	,,	९६
१९२६	,,	१४८	१९३९	,,	१०८
१९२७	,,	१४८	१९४०	,,	१२०

पर यह भी सही है कि चलण की कीमत के स्थायित्व मे जितनी श्रद्धा यूरोपवासियो की रही उतनी इस देश के लोगो की न रही। हमारे पिछले इतिहास मे समय-समय पर इतने राज्य बदलते रहे है, इतने दगे-फसाद होते रहे है कि इसके कारण भारतवासियो को स्वभाव से ही सोने-चादी में मोह ज्यादा रहा। इसके विपरीत इग्लिस्तान मे, बाहर के आक्रमणो से

मुक्त रहने की वजह, वहा के लोगो मे काफी अमन-चैन रहा। नतीजा यह हुआ कि स्वभाव से ही चारो ओर शान्ति और व्यवस्था दिखाई देती रही, ओर इसलिए उन्हे अपनी सरकार की साख मे श्रद्धा भी ज्यादा रही। लदन नाणे का एक वृहत् बाजार बन गया और अग्रेजो की देखा-देखी हमने भी सरकारी कागजो मे और तरह-तरह के शेयरो मे रुपया लगाना सीख लिया।

चलण की कीमत गिरती आई है

पर बताना तो यह था कि चलण की कीमत स्थायी नही रही, और दूसरी बात यह बतानी थी कि चलण की कीमत गिरा कर अपना उल्लू सीधा करने का तरीका इतिहास मे हर सल्तनत ने—जब वह विपद्ग्रस्त हुई तब—बिना किसी हिचकिचाहट के अख्तियार किया है। रोम की प्राचीन सरकार ने हजारो साल पहले अपने चलण को अशत खोटा करके अपना खजाना भरा, तभी से हर सल्तनत ने यह पाठ सीख लिया। और चलण के दाम गिरा कर प्रजा की बिना जानकारी के कर-वसूली का यह अद्भुत् तरीका मौके-मौके पर हर सरकार ने विपद् के समय अपने लाभ के लिए कामयाबी के साथ आजमाया।

बात यह है कि सिक्का जैसा भी हो, अच्छा या बुरा, उसके चलण का सपूर्ण अधिकार तो हर देश की सरकार के पास रहता है। और इस अधिकार का दुरुपयोग करके भी यदि कोई सल्तनत अपना दिवाला दबा सके और राज्यच्युत होने से अपने-आपको बचा सके तो कौन ऐसी सयमी सल्तनत हो सकती है जो इस अधिकार का दुरुपयोग करने के लोभ का सवरण कर सके? इसलिए जहा किसी सल्तनत पर आफत आई, कोई बडा बलवा होने को है या कोई बडा युद्ध छिड गया और धन की बडी राशि की जरूरत आ पडी और प्रजा सीधी तरह से देने को तैयार नही, यदि जबरन लिया जाय तो क्राति की आग धधक उठती है, लोगो की रही-सही सहानुभूति भी गायब हो जाती है, तो ऐसे विकट समय म सबसे सीधा और सहज मार्ग कर-वसूली का यही रह जाता है कि नोट छापे जाओ

और उसीसे अपना खर्च चलाए जाओ। धन की जरूरत पडी और सीधी अगुली से घी न निकला तो फिर चलण के दाम गिरा कर टेढी अगुली से —चाहे वह फिर अधिकार का दुरुपयोग ही क्यो न हो—घी निकाला।

पर एक वात और है। चलण के दाम गिराने मे ऐसी विपद्ग्रस्त सरकार का तो स्वार्थ रहता ही है, पर प्रजा के एक दल-विशेष की भी सहानुभूति रहती है। हमने पहले बताया है कि चलण के दाम गिरने से कर्जदार और वधी मालगुजारी देनेवाले और अन्य ऐसे लोग,जिनका दायित्व वधी हुई रकम मे हो, उन्हे लाभ होता है। इसलिए ऐसे सव लोग चलण के दाम गिरने के स्वभाव से ही पक्षपाती होते है,और विपद्ग्रस्त सरकार को तमाम ऐसे लोगो की सहानुभूति अपने-आप मिल जाती है। प्रख्यात अर्थ-शास्त्री श्री केयन्स ने सच कहा है —

"चलण का मूल्य जव गिरता है तव उसका लाभ केवल सरकार तक ही सीमित नही रहता। किसान, कर्जदार और अन्य लोग, जिन्हे अपने-अपने क्षेत्र मे एक निर्धारित रकम देनी पडती है—मसलन व्याज या माल-गुजारी इत्यादि—वे सव-के-सव इस लाभ मे शरीक हो जाते है। जैसे आर्थिक क्षेत्र मे आजकल व्यापारी लोग समाज के एक रचनात्मक और क्रियात्मक अग माने जाते है, वैसे ही प्राचीन समय मे किसान इत्यादि एक विशिष्ट अग माने जाते थे, और सल्तनत पर इनका प्रभाव तो पडता ही रहता था। कोई भी सासारिक परिवर्तन, जो द्रव्य के मूल्य को ठेस पहुचाता था, वह नए आदमियो के लिए एक रसायन का काम कर जाता था। यह परिस्थिति पुराने लोगो की दौलत का नाश करके नए लोगो के पास दौलत ला देती थी। जिन्होने धन सग्रह करके रखा था उनका खातमा करके व्यवसायशील लोगो को यह परिस्थिति सहायक हो जाती थी। कुदरत का यह खेल ऐसा लगता है मानो सग्रह और क्रिया के वीच के सग्राम मे द्रव्य के मूल्य का गिरना क्रिया का पक्ष लेता रहा हो। द्रव्य के मूल्य के गिरने की प्रवृत्ति ने वपौती धन और उस पर चक्रवृद्धि व्याज खानेवाले इन्सान की खासियत पर काफी आक्रमण किया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि वपौती सपत्ति को अकर्मण्य होकर भोगने की वृत्ति को इसने जवरदस्त धक्का मारा।

इस परिक्रिया ने हर पीढी को बपौती सम्पत्तिके उत्तराधिकार से एक तरह से वचित-सा कर दिया। जो हो, विपद्ग्रस्त सरकार की जरूरते और कर्ज-दार वर्ग की आवश्यकताए, इन दो प्रभावो ने मिल कर, कभी एक तो कभी दूसरी शक्ति ने, द्रव्य के मूल्य का लगातार घटाना जारी रखा है। यह क्रिया ईसा के ६०० साल पहले, जब पहले-पहल सिक्का चला, तभी से न्यूनाधिक रूप से चलती आ रही है।"

फुलावट का यह एक दिलचस्प पहलू है। किस तरह समाज की भिन्न-भिन्न श्रेणियो का स्वार्थ सिक्के के मूल्य के साथ बधा है, किस तरह जान-बूझ कर समाज की कुछ श्रेणिया चलण के मूल्य को गिरा देने के पक्ष मे रहती है और असाधारण समय मे लुढकती हुई सल्तनत के लिए भी चलण का मूल्य गिराना कितना उपयोगी शस्त्र है, यह ऊपर के कथन से जाहिर होता है।

फुलावट एक तरह का कर—प्रच्छन्न कर है, यह कम लोग जानते हैं। पर यह ध्रुवसत्य है कि एक कमजोर सरकार भी, जिसके कर लगाने के अन्य सब साधन सूख गए हो, और जिसके लिए कोई भी कर उगाहना असभव-सा हो गया हो, इस अन्तिम शस्त्र का उपयोग करके प्रच्छन्न कर उपार्जन कर सकती है। इस प्रच्छन्न कर का यह मजा है कि कोई कितना ही सरकार का विरोधी क्यो न हो, वह भी इस कर से बच नही सकता। इस पहलू को कुछ और विश्लेषण के साथ समझाने की जरूरत है।

जहा हमने "द्रव्य परिमाण मत" का जिक्र किया है वहां यह बतला दिया है कि अन्य सब स्थिति समान रूप से वर्तती हो तो जितना ही चलण मे हम द्रव्य का अधिक प्रवेश करावेगे उसी अनुपात से द्रव्य का मूल्य गिरेगा और जिन्सो के दाम चढेगे। इसका फिर एक उदाहरण दे देना अच्छा होगा।

मान लीजिए कि सामान्य अवस्था मे हमारे यहा २५० करोड रुपए के नोट चलण मे है, जिनकी सोने की कीमत १० करोड तोला सोना है। (एक तोला सोने की कीमत=२५ रुपए। इसलिए १० करोड तोला सोना×२५=२५० करोड रुपए) तो यदि हमने चलण मे २५० करोड रुपए के नोट और छाप कर डाल दिए, तो भी सोने की कीमत तो वही १० करोड तोले की रहेगी। पर चूकि चलण मे नोट अब ५०० करोड के हो गए, इसलिए जहा पहले २५० करोड रुपए के नोटो की कीमत १० करोड तोला सोना थी, अब ५०० करोड रुपए के नोटो की कीमत १० करोड तोला सोना रही—अर्थात् नोटो की सोने की माप मे जो कीमत पहले थी उससे आधी हो गई। इसके माने यह भी हुए की जिन्सो की कीमत दुगुनी हो गई—अर्थात् नोटो का चलण दुगुना हुआ, उसके अनुपात से नोटो का मूल्य तो आधा रह गया, पर जिन्सो का मूल्य दुगुना हो गया।

अब सरकार को जो नए २५० करोड रुपए नए नोट छापने के कारण हासिल हुए वह सारा-का-सारा धन उन लोगो की जेब से निकला, जिनके पास चलण की धरोहर थी—अर्थात् ऐसे लोगो की जेब से निकला जो रुपया उधार देने का काम करते थे—जैसे बैंक, साहूकार इत्यादि, या तो जिन्हे जेब-खर्च के लिए भी अपनी जेब मे कुछ नोट रखने पडते थे। इस २५० करोड की क्रय-शक्ति अवश्य ही पहले के मुकाबिले मे घट गई, क्योकि जिन्सो के दाम जो चढ गए। पर जब फुलावट-नीति पहले-पहल शुरू होती है तब लोगो के अज्ञान के कारण जिन्सो के दाम अचानक नही चढ जाते, और इसलिए नए २५० करोड की क्रय-शक्ति भी शुरु-शुरू मे पहले से बिल्कुल आधी शायद न होगी। अब सरकार इस तरह से यदि २५० करोड का कर उगाहती तो सैकडो झमेले होते, पचासो तरह का विरोध होता, कर-कानून बनाना पडता। इसके विपरीत, इस तरह से चुपचाप नोट छाप कर चलण मे प्रवेश करा देने से सरकार ने चुपचाप अपना काम बना लिया।

इस कर से बचना असंभव-सा है

कोई कह सकता है कि क्या इस कर से कोई बच भी सकता है ? हा, कल्पना मे बच सकता है, पर व्यवहार मे शायद ही। आखिर यह कर उसी की जेब से निकलता है, जिसके पास द्रव्य की धरोहर हो। जैसा कि हम पहले बता चुके है, यह कर एक तो इस तरह के लोगो की पाकेट से निकलता है जो उधार रुपया देते है, दूसरे, ऐसे लोग जिन्हे क्रय-विक्रय के लिए रोजगार-धधे के लिए कुछ-न-कुछ रुपया तो सिलक मे रखना ही पडता है, उनकी जेब से भी यह कर निकलता है।

अब ये दोनो तरह के लोग कर-से इस तरह बच सकते है कि उधार देनेवाले तो उधार देना बन्द कर दे, घर मे जवाहरात इत्यादि रख छोडे, और क्रय-विक्रयवाले नोट का व्यवहार तक करना छोड दे। पर यह नाममकिन है। सूद पर उधार देनेवाले शायद उधार देना बन्द करके अपना धन जिन्सो मे रोक दे, पर नित्य की खरीद-फरोख्त के लिए रुपए

का व्यवहार बन्द करना, यह दवा मर्ज से भी कही ज्यादा कष्टप्रद है। हम गहरे उतरने पर देखेंगे कि रोजमर्रा की खरीद-फरोख्त के लिए जो रुपया हम उपयोग मे लाते है उसके कारण हर व्यक्ति पर यह नई तरह का कर इतनी कम मिकदार मे पड़ता है कि बजाय इसके कि वह रुपए का व्यवहार बन्द कर दे, एक नागरिक इस कर को अदा करना अधिक पसन्द करेगा।

हम एक अन्तिम सीमा का उदाहरण ले ले। मान लीजिए सरकार चलण मे इतना द्रव्य प्रविष्ट करती है कि जिसके कारण हर महीने द्रव्य का मूल्य करीब आधा ही रह जाता है। अब यदि रोजमर्रा के व्यवहार के लिए हर मनुष्य दो दिन से ज्यादा फरोख्त किए हुए माल का रुपया अपने पास नही रखता, तो इसके मान यह हुए कि रुपए की एक महीने मे १५ बार पल्टाई हुई—अर्थात् १५ बार भिन्न-भिन्न कामो के लिए उसी रुपए का उपयोग हुआ। द्रव्य का मूल्य गिरा एक महीन मे ५० प्रतिशत। रुपए की पल्टाई हुई एक महीने मे १५ बार। तो ५०—१५=३ ३३। अर्थात् हर सौदे की लेवा-बेची पर ३ ३३ प्रतिशत कर पडा। याने, १०० रुपए मे जिस सौदे को खरीदते उसके १००+३ ३३, अर्थात् १०३ ३३ रुपए असल मे आपको देने पडे। यह कर असाधारण जमाने के लिए इतना कम है कि केवल इससे बचने के लिए ही कौन रुपए का व्यवहार बन्द करेगा?

इसलिए, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस कर से अत्यन्त विरोधी भी बच नही सकता, और निकम्मी-से-निकम्मी सरकार भी यह कर उगाह सकती है। असल मे तो इस शस्त्र का उपयोग भी वही सरकार करती है, जिसका दिवाला निकलने जा रहा हो। हा, अल्प मात्रा मे, और नियत्रण के साथ, तो उद्योग-धधो को पनपाने के लिए, जैसा कि पहले बता चुके है, हर अच्छी सरकार भी फुलावट-नीति को समय-समय पर काम मे लाती है।

पर यह भी सही है कि जिस तरह हर चीज की सीमा होती है वैसे ही इस शस्त्र की करामात के बारे मे भी कहा जा सकता है। जब साख मे लोगो की कोई श्रद्धा नही रहती तब लोग महज खरीद-बिक्री के लिए, और

सो भी अत्यन्त कम समय के लिए ही, अपने पास नोट रखते हैं। नतीजा यह होता है कि चलण को व्यवहार में लानेवाले इतने कम हो जाते हैं कि फिर हजारों मन नोट छाप कर चलण में प्रविष्ट करने पर भी कोई लम्बी रकम सरकार को हासिल नहीं होती। इसलिए इस शस्त्र की धार भी अंत में करीब-करीब भूठी-सी पड जाती है।

ऐसी भयंकर फुलावट का एक परिणाम और होता है। सरकार का कर्ज तो अपने-आप चुक जाता है। जब द्रव्य का मूल्य इतना गिर जाय कि रुपया एक कौडी का भी न रहे तो, फिर हजारो-अरबो का देना-पावना भी केवल हिसाब-बहियो की शोभा की चीज रह जाता है, और इस तरह सरकार का कर्ज अपने-आप रफा हो जाता है। चूंकि सारा-का-सारा यह कर द्रव्य के धरोहरधारी की जेब से निकला, इसलिए इसे हम यदि पूंजी-कर की भी उपमा दे तो यह अनुपयुक्त उपमा न होगी। पर यह पूंजी-कर घुमाके नाक पकडने-जैसी चीज है। सीधे रास्ते से पूंजी-कर लगाने में मनुष्य शास्त्रीय विधि का उपयोग कर सकता है। पर लुढकती हुई सल्तनत में सीधा मार्ग अख्तियार करने की हिम्मत कहा? इसलिए यह अशास्त्रीय और भद्दा मार्ग ऐसी विपद्ग्रस्त सरकार के लिए ज्यादा आसान होता है।

१०

हमने अबतक फुलावट-नीति की चर्चा की। उससे पाठक के दिल पर यही असर होगा—और वह स्वाभाविक है, क्योकि सारे विवेचन मे ध्वनि भी वही निकलती है—कि फुलावट या गिरावट की क्रिया का सचालन केवल सरकार या नोट-प्रसारक बैंक के हाथ मे ही रहता है। किन्तु यह बात अशत ही सही है। हद दरजे की भयकर फुलावट या गिरावट का सचालन तो अवश्य ही या तो सरकार कर सकती है या उसके इशारे से नोट-प्रसारक बैंक। पर, एक सीमा के भीतर, फुलावट या गिरावट अन्य बैंक या अन्य साहूकार भी पैदा कर सकते हैं।

हमने बतलाया है कि धन का प्रतीक मुद्रा, मुद्रा का प्रतीक नोट और नोट का या मुद्रा का प्रतीक चेक या हुडी हो जाती है। जिस आसामी की साख अच्छी है उसकी हुडी भी धन ही है। फुलावट या गिरावट नोटो के अधिक विस्तार या सकोच से पैदा होती है, क्योकि नोट धन के प्रतीक है। तो उसी तरह चेको और हुडियो-द्वारा भी तो धन का प्रसार या सकोच किया जा सकता है, क्योकि यह भी तो धन के प्रतीक है। वह इस तरह होता है—

मान लीजिए एक बैंक है या एक साहूकार है। उसके पास रुपया सिलक मे नकद पडा है, अथवा, सरकारी कागजो मे, कम व्याज मे रुका पडा है। न तो वह अक्रिय रकम किसी तरह के वाणिज्य-व्यवसाय मे लगती है, न लेन-देन मे काम आती है। उधार लेनेवालो की कमी नही, पर उन्हे बैंक या साहूकार की उस अक्रिय पूजी से कोई लाभ नही मिल रहा है। अब व्यापार को पनपते देखकर पूजी के स्वामी उस बैंक या साहूकार की रुपया उधार देने की इच्छा होती है। वह व्यापारियो एव अन्य उधार लेनेवालो को रुपया देना शुरू करता है और इस तरह उस धन का उपयोग होने लगता है। अक्रिय रकम अब सक्रिय बन जाती है-और जितनी ही रकम सक्रिय बनती जाती है, उतनी ही बाजार मे नाणे की बहुतायत होती जाती है।

उधार की फुलावट

इस बहुतायत का वही असर होता है जो नोट-प्रसार के कारण होता है, बल्कि नोट-प्रसार से पैदा हुई फुलावट की अपेक्षा , उधार-द्वारा की गई फुलावट कभी-कभी ज्यादा शक्तिशाली भी होती है । एक करोड रुपए का नया नोट हम चलण मे डालते है और सौ करोड का नोट पहिले से चलण मे है, तो साधारणतया यह कहा जा सकता है कि एक प्रतिशतक फुलावट हुई और उसका साधारणतया (यदि और कोई नया मसला उलट-फेर का मौजूद न हो तो) उसी परिमाण मे दामो पर भी असर होना चाहिए। पर उधार-द्वारा एक करोड की पूजी यदि नाणे के बाजार मे प्रवेश करती है तो यह नही कहा जा सकता कि उसका दामो पर असर, एक करोड की फुलावट के अनुपात से ही होगा ।

हम कल्पना कर सकते है कि किसी आसामी के पास एक लाख का गल्ला पडा है जिसपर उस आसामी की रकम लगती है। उसे रुपया उधार न मिलने की वजह से उसका हाथ रुका पडा है। उसे अचानक बैंक से रुपए उधार मिल जाते है । अब उसका हाथ खुला हो जाता है । एक लाख रुपए से वह एक तेल का कारखाना खोलता है। उसे अब सरसो की जरूरत पडती है। सरसो बेचनेवाले आसामी के पास मुद्दत से सरसो पडी थी, वह बिक नही रही थी। उसे बेच कर सरसोवाला आसामी एक बर्तन बनाने का कारखाना खोल लेता है। उसके लिए ताबा खरीदता है। ताबेवाले आसामी के पास मुद्दत से ताबा पडा था जो बिक नही रहा था। ताबा बिकते ही वह नया माल खरीदने लगता है। नया माल खरीदने से खानवाला काम बढाता है। चारो तरफ से मजदूरो की माग होने से ठलुए मजदूरो को काम मिलता है। वे फिर ज्यादा कपडा खरीदने लगते है, तो कपडे की पैदाइश बढती है। उसके माने है—ज्यादा मजदूरो की माग, ज्यादा रुई की जरूरत। बस, इस तरह से बाजार की रोशनी जो फीकी हो चली थी, फिर चमकती है। उस चमक का दूसरी चीजो पर प्रभाव पडता है। इस तरह उत्पन्न हुई आशावादिता चारो ओर प्रकाश डालती हैं और थोडी-सी रकम से, बडी-सी फुलावट भी आ सकती है।

हमने यह उदाहरण इसपर काफी रग चढाकर पेश किया है। ऐसा ही होता है सो नही, पर ऐसा हो सकता है, इतना ही बताना है। गरज यह है कि उधार से पैदा हुई फुलावट कभी-कभी अपने अनुपात से ज्यादा काम कर जाती है, क्योकि उसके पीछे एक भावना रहती है, जो लोगो मे आशा का सचार करके कभी-कभी आवश्यकता से अधिक सरगर्मी ला देती है। इसी तरह जब बैंक अपना उधार सिमेटती है तो आवश्यकता से ज्यादा मुर्दनी भी पैदा कर देती है।

अब हम देख सकते है कि उधार-द्वारा भी धन का विस्तार और सकोच और तज्जनित फुलावट या गिरावट पैदा की जा सकती है।

नोटो के प्रसार और सकोच से जो काम होता है, एक तरह से उधार के विस्तार और सकोच से भी वही काम होता है। दोनो चीजे एक तरह से तो एक ही है, क्योकि दोनो के द्वारा धन का सकोच या विस्तार हो सकता है। पर बैंको या साहूकारो-द्वारा धन का विस्तार अर्थात् धन का चलण मे प्रवेश तभी होता है जब कि व्यापार चलता हो या तो अच्छे चलने की आशा हो, कारखानेवाले कमाते हो, भविष्य उज्ज्वल दिखता हो। रुपया उधार देने मे किसी तरह का खतरा न लगता हो, तभी उधार का विस्तार होता है। साख एक नाजुक चीज है जो लाजवती पौधे की तरह खतरे की आशका होते ही अपने डाल-पात को समेट लेती है। जहा समय अच्छा आया, व्यापार पनपने लगा, कि पूजीवाले उधार देने मे बहादुरी दिखाने लगते है, और जहा खतरे की घटी बजी कि वे अपना बोरिया-बधना उठाने लगते है। इस तरह से उधार देनेवाले भी फुलावट और गिरावट के कर्ता बन जाते है। इस फुलावट या गिरावट को साख की फुलावट या गिरावट भी कह सकते है।

पर यह उधार की फुलावट या गिरावट सीमा के भीतर ही रहती है। किसी पूजीवाले के पास अगनित धन तो होता नही, सख्याबद्ध धन ही होता है। इसलिए बैंक या साहूकार-द्वारा की गई फुलावट या गिरावट भी सीमा के भीतर बद्ध रहती है।

११

फुलावट-नीति का हमने विस्तार के साथ जिक्र किया। गिरावट का हमने ज्यादा जिक्र नही किया है। पर शायद यह समझाने की जरूरत नही कि गिरावट का परिणाम हर बात मे फुलावट से उल्टा होता है।

विपद्ग्रस्त सरकार धन उगाहने के लिए—चारो तरफ से उसकी चाल रुक जाती है तब—फुलावट-नीति का आसरा लेती है, या तो स्वल्प और नियत्रित मात्रा मे फुलावट उद्योग-धधो को पनपाने के लिए भी काम में लाई जाती है।

तो फिर यह प्रश्न हो सकता है कि गिरावट-नीति का दौरदौरा कब होता है?

गिरावट-नीति आम तौर से ऐसी दशा मे प्रयोग म लाई जाती है जब कि सरकार तो व्यवस्थित है और व्यवस्था के साथ विशेष हेतु के लिए उस सरकार ने फुलावट-नीति का प्रयोग किया है, पर मात्रा से कुछ ज्यादा फुलावट हो गई है, और इसलिए, फुलावट का जोश ठडा करने के लिए व्यवस्था के साथ अब कुछ गिरावट-नीति के प्रयोग की आवश्यकता है। ऐसी आवश्यकता पडने पर गिरावट-नीति का उग्र प्रयोग किया जाता है।

पर जैसे फुलावट बेबसी की चीज है, वैसे ही गिरावट इस बात की द्योतक है कि सरकार सहीसलामत है, उसकी ताकत या व्यवस्था मे कोई कमजोरी नही है। गिरावट म तो चलण की साख बढानी पडती है। इसलिए यह काम एक व्यवस्थित सरकार ही, और सो भी विशेष हेतु के लिए ही, कर सकती है। यह इसलिए स्वाभाविक है कि जिस तरह फुलावट असीमित हो सकती है, वैसे गिरावट सीमा के बाहर नही जा सकती।

पर गिरावट-नीति के प्रयोग के उदाहरण ससार के आर्थिक इतिहास मे कम मिलते है। ज्यादातर लोगो ने विवश होकर, या तो देश के उद्योग-धधो की उन्नति के लिए, फुलावट-नीति का ही प्रयोग किया है। इसलिए फुलावट-नीति के गुण-दोषो का हम अच्छी तरह विवेचन कर ले तो काफी है, क्योकि जो हानि-लाभ फुलावट के है उसको ठीक तरह समझने के बाद गिरावट के गुण-दोष अपने-आप समझ मे आ जायगे।

जब गिरावट-नीति का प्रयोग होता है तब फुलावट-नीति से ठीक उल्टे नियमो को काम मे लाया जाता है—अर्थात् किसी भी बहाने नोटो को चलण मे से निकाल कर नोटो की एक बनावटी तगी पैदा की जाती है। सरकारी खर्च के लिए, मान लीजिए, आवश्यकता है एक सौ करोड की और कर-वसूली की गई सवा सौ करोड की, तो जनता के पास से पचीस करोड का धन खैंच लिया गया। और इसी परिमाण मे जनता की क्रय-शक्ति कम हो गई, या तो ब्याज ऊचा देकर बिना किसी हेतु के सरकार ने पचीस करोड का ऋण ले लिया और उसे खर्चने के बजाय कोष मे ही रख छोडा। तो इसका भी वही असर पडा—अर्थात् जनता की क्रय-शक्ति कम हो गई।

गिरावट कब वांछनीय है ?

जनता की क्रय-शक्ति को कम करने की यह नीति एक तरह से तो दम घोटने की नीति-जैसी लगती है। इसलिए ऐसी नीति को काम मे लाना तभी वाछनीय हो सकता है जब कि सल्तनत को यह लगे कि जनता समृद्ध है और समृद्धि के नशे मे वित्त-शाठ्य करने जा रही है—अर्थात बूते के बाहर खर्च करने की या व्यवसाय करने की जन-साधारण की प्रवृत्ति बढ रही है, जिसका आगे जाकर परिणाम भयानक हो सकता है। जब सरकार को ऐसी विपत्ति की आशका होती है तभी, जैसे दूध के उफान को ठडा करने के लिए पानी से छाट दिया जाता है उसी तरह समृद्धि के उफान को—समृद्धि को नही, क्योकि समृद्धि तो ठोस असली चीज है, उफान धोखा है—आवश्यकतानुसार गिरावट

का प्रयोग करके शान्त करना प्रजाप्रिय सरकार का कर्तव्य बन जाता है।

सरकार ने कर-वसूली से या ऋण-द्वारा जो धन जनता से खेंचा उसका आखिर तो व्यय ही करना है। और वह व्यय उस समय किया जाता है जब कि उफान के बाद की सुस्ती के मारे जनता भयभीत होकर अपनी सारी प्रगतियो को बन्द कर देती है, व्यय मे आवश्यकता से ज्यादा कजूसी करने लगती है, व्यापारी मदी से भयभीत होकर अपने हाथ-पाव सिमेट लेते है, बेकारी बढने लगती और जिन्सो के दाम गिरने लगते है। ऐसे समय मे जनता को फिर प्रोत्साहन देने के लिए, अतिशय आई हुई मदी को शान्त करने के लिए, ठडे खून मे फिर से गर्मी लाने के लिए, जनता से खैंचा हुआ धन सरकार खर्चने लगती है। और जहा खर्च शुरू हुआ कि फिर ताजगी आने लगती है।

इसके यह माने नही कि हिन्दुस्तान मे सरकार ने जो गिरावट का प्रयोग किया वह इसी सिद्धान्त पर किया और जब मदी ने तबाही शुरू की तब उसको रोकने के लिए फिर फुलावट का प्रयोग किया। यहा की कथा तो निराली है।

इस देश मे गिरावट-नीति अक्सर इसलिए काम मे लाई गई है कि द्रव्य के परिमाण मे कमी करके उसका मूल्य ऊचा कर दिया जाय।

आगे जब हम भारतवर्ष की हुण्डी का विवेचन करेगे तब गिरावट-नीति से इस देश की जिन्सो के दामो पर, कल-कारखानो पर, समृद्धि पर और आयात-निर्यात पर क्या असर हुआ, गिरावट की नीति को सफल बनाने के लिए कैसे करोडो रुपए बरबाद किए गए, इन सब बातो का विवेचन करने के लिए हमे काफी मौका मिलेगा।

१२

फुलावट मे दामो मे तेजी, गिरावट मे मन्दी, यह हमने बतलाया है। और फुलावट या गिरावट मुख्यतया सल्तनत की मर्जी की चीज है। कम-से-कम सरकार सहीसलामत रहे तो बेबसी की फुलावट को तो हम अनहोनी चीज करार दे सकते है। इसलिए सीमाबद्ध फुलावट या गिरावट सरकार की मन्शा पर अवलम्बित रह जाती है। तो फिर यदि फुलावट से तेजी और गिरावट से मन्दी होती है तो दाम करीब-करीब स्थिर रखने के लिए भी कभी फुलावट तो कभी गिरावट की चाभी घुमाई जा सकती है। दूसरे शब्दो मे, दाम स्थिर रखने के लिए भी इन दोनो तरकीबो का उपयोग किया जा सकता है। और दाम स्थिर रहना, यह भी तो समाज के लिए एक बडा लाभ है।

हम पहिले बता चुके है कि दामो की तेजी से माल उपजानेवालो को लाभ और बधी आय वालो को नुकसान है, दामो की मन्दी मे इससे उल्टा। पर इस तेजी-मन्दी के उलट-फेर मे कभी किसीको लाभ और कभी हानि से सामाजिक असन्तोष फैलता है सो बुराई तो है ही, पर इस असन्तोष के साथ-साथ पैदाइश पर भी बुरा असर पडता रहता है। धीरे-धीरे लगातार तेजी चलती है तो पैदाइश बढती रहती है पर फिर, जब दामो मे मुडकी आती है और दाम गिरते है तो कारखानो को ताला लगने लगता है, बेकारी बढती है और इससे समाज मे गरीबी आने लगती है। उससे असन्तोष बढता है। सम्भव है दाम स्थिर हो—कम-से-कम एक परिधि के भीतर—तो शायद इस परिस्थिति से पैदाइश की वृद्धि भी हो और समाज के विभिन्न फिरको मे दामो की घटा-बढी से पैदा हुआ असन्तोष भी न होने पाए। इस भावना से प्रेरित होकर कई अर्थशास्त्री दामो की साम्यावस्था की पुष्टि करते है।

दामों की साम्यावस्था

दामो की साम्यावस्था से इतना ही प्रयोजन है कि दामो के सूचक अक (Index Figure) की साम्यावस्था। यह तो नामुमकिन चीज है कि हम सब जिन्सो के अलग-अलग दामो की घटा-बढी को रोक सके। मान लीजिए, एक साल गेहू की फसल बहुत बढिया बैठी, और सरसो की फसल मारी गई। तो गेहू की बहुतायत से गेहू की मन्दी और सरसो की कमी के कारण सरसो की तेजी अवश्यम्भावी है। इसे कोई नही रोक सकता। पर अलग-अलग चीजो की तेजी या मन्दी एक बात है, और सम्मिलित दामो की तेजी या मन्दी दूसरी बात। जब सम्मिलित दामो की तेजी या मन्दी आती है तभी समाज के एक अग को लाभ और दूसरे को हानि होती है। इस सम्मिलित दामो की तेजी या मन्दी को गिरावट या फुलावट की नीति-द्वारा काफी दर्जे तक रोका जा सकता है। वह इस तरह—

सल्तनत दामो के सूचक अको का अध्ययन करती रहती है और जहा दाम कुछ बढे कि नोट-प्रसारक बैक चलण मे से नोटो को निकाल कर धन का सकोच शुरू कर देती है, जहा दाम गिरे कि नोटो का चलण बढाकर विस्तार कर देती है। इस तरह के सकोच-विस्तार-द्वारा दामो को यथासाध्य साम्यावस्था मे रखने की कोशिश की जाती है। और उसमे उसे साधारणतया सफलता भी मिलती है। इस सारी क्रिया को विस्तार से समझाने मे छोटी-मोटी अन्य कई क्रियाओ का भी उल्लेख करना पडेगा। चूकि पाठको के सामने एक मोटी-सी रूप-रेखा देना ही इस पुस्तक का ध्येय है इसलिए ज्यादा ब्यौरे मे उतरना आवश्यक नही है। बतलाना इतना ही है कि फुलावट-गिरावट की नीति से दामो मे तेजी, मन्दी और साम्यावस्था तीनो चीजे लाई जा सकती है।

पर दामो को साम्यावस्था मे रखने के और भी तरीके है। एक तरीका तो खास करके इसी महायुद्ध मे बहुतायत से काम मे लाया गया है। यह तरीका नया नही है, पर इतने विस्तार से इसी युद्ध मे काम मे

-लाया गया है, इसलिए इसे नया तरीका भी कह सकते है। यह तरीका है मालकी उपज, खपत और दामो का नियत्रण करना।

जब हम नोट-प्रसार अधिकता से करके दामो की तेजी को प्रोत्सा-हन देते हैं या तो कम करके दामो की मदी को आह्वान करते हैं तो एक तरह से हम दामो की तेजी या मदी पर सीधा हल्ला न बोलकर ऐसे टेढे-मेढे उपायो का प्रयोग करते है कि जिससे जनता की क्रय-शक्ति कमोवेश होकर चीजो की उपज और खपत पर अपने-आप अच्छा या बुरा असर पडता रहे।

जनता के पास क्रय-शक्ति है और वह उसका उपयोग करके दामो को तेज करना चाहती है। उस क्रय-शक्ति को हमने कर-द्वारा या उधार लेकर अपने कब्जे मे कर लिया। फलस्वरूप अब जनता बाजार से हट जाती है और दाम गिर जाते हैं। या तो जनता की क्रय-शक्ति का ह्रास हो गया और इसलिए बाजार मे सन्नाटा छा गया। सल्तनत ने नए-नए खर्च करना शुरू करके जनता की क्रय-शक्ति बढा दी और जनता फिर बाजार मे खरीदने के लिए आ धमकी और इस तरह बाजार मे फिर जान आ गई। यह गिरावट या फुलावट का एक तरीका हैं दामो -को घटाने और बढाने का।

पर मान लीजिए कि आपके पास असख्य दौलत पडी है। उसको किसीने नही छीना। पर आप पर यह दफा लगा दी कि आप अमुक परिमाण से ज्यादा किसी भी हालत मे किसी भी वस्तु को खरीदने नही पावेगे, और न दूकानदार बिना सरकारी इजाजत के आपको कोई चीज बेचेगा। तो फिर इसका परिणाम भी वही होता जाता है जो चलण की कमी-बेशी से पैदा किया जाता है, क्योकि आपके पास शक्ति होते हुए भी आप खरीद के हकदार नही रहे। यदि सरकार इस तरह की सारी हलचलो का नियत्रण कर डाले कि अमुक चीज की इतनी पैदाइश होगी, हर मनुष्य अमुक मिकदार ही अमुक चीज की खरीद और खपत कर सकेगा, बेचनेवाले और लेनेवाले अमुक बधे हुए दाम पर ही खरीद और फरोख्त कर सकेंगे और जो कोई सरकारी हुक्मउदूली करेगा उसे

सजा भुगतनी पडेगी, तो फिर चाहे किसी के पास असख्य धन क्यो न पडा हो वह धन वेकार-सा वन जाता है और उसकी नियत्रित क्रिया के कारण दामो की घटा-वढी भी नियत्रित हो जाती है। अवश्य ही यह दूसरा तरीका, दामो की साम्यावस्था लाने का, ज्यादा सीधा है—आडा-टेढा नही है—पर इसके यह माने नही कि यह ज्यादा वाछनीय है।

नियंत्रण

इस तरीके मे योजना और सचालन के लिए अफसरो और कारिन्दो की एक वृहत् सेना को रोकना पडता है जो रात-दिन इसी ताक-झाक मे रहती है कि किसीने इस नियम का भग तो नही किया। इतने नागरिको को केवल योजना और सचालन के लिए रोक रखना, यह भी देश की समृद्धि के लिए एक हानिकर चीज है। आखिर जव तक हर आदमी कुछ पैदाइश करता रहता है तभी तक देश की समृद्धि वढती है। यदि सव लोग सचालन मे, वाद-विवाद मे, सैन्य और पुलिस मे और ऐसे अन्य वेउपजाऊ धधो मे ही लगे रहे, तो फिर समृद्धि कहा ? इस दृष्टि से वही तरीका अच्छा है जिसमे कम-से-कम आदमियो की शक्ति का ह्रास हो। पर युद्ध-काल मे इन सव नियमो की अवहेलना करनी पडती है। ऐसे विकट समय मे ध्येय की अपेक्षा साधन गौण वन जाता है। इसलिए ऐसे नियत्रणो का उपयोग विकट काल मे ही वाछनीय माना जाना चाहिए। यद्यपि रूस मे शाति-समय मे भी नियत्रण का उपयोग किया गया है पर रूस के सम्वन्ध मे तो यह भी कहा जा सकता है कि वहा शाति का समय आया ही नही—विकट समय का ही दौर-दौरा रहा, और इसलिए वहा नियत्रण-नीति अभीष्ट ही थी। जो हो, दामो की साम्यावस्था नियत्रण मे भी लाई जा सकती है, यह अव पाठक समझ सकेगे।

× × × ×

अब पाठको से विदा लेता हू।

(उत्तर भाग)

इतिहास

विषय-सूची

१

अनेक की जगह एक

मुद्रा का अर्थ चिह्न है। बहुत काल पहले जब सिक्को के लिए चादी या सोने के टुकडो का व्यवहार बढा तब यह आवश्यक हो गया कि वे टुकडे ठीक तौल के हो और प्रमाणस्वरूप उनपर कोई चिह्न बना दिया जाय। इस प्रकार सिक्के का नाम मुद्रा हो चला।

प्रश्न उठता है कि मुद्रासम्बन्धी कला इस देश की अपनी उपज थी या वह कही बाहर से आई ?

यहा के सिक्को की तौल और बनावट दोनो ही निराले ढग के है, और धीरे-धीरे इस मत की पुष्टि होती जा रही है कि भारत ने इस विषय मे न तो किसीकी नकल की, न किसीको अपना गुरु माना। "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" (वैशाख १९९७) मे प्रकाशित स्व० दुर्गाप्रसाद जी का लेख इस सम्बन्ध मे पढने लायक है। आप लिखते है—"मुझे जहा तक खोज करने का अवसर मिला है, इसका प्रमाण मिला है कि भारत मे गौतम बुद्ध से पहले सिक्को का चलन था। उस समय के सिक्के मुझे प्राप्त भी हुए है।" आपके लेख से पता चलता है कि गौतम बुद्ध के समय मे चादी के सिक्को की तौल ४० और २५ रत्ती होती थी। पण, कार्षापण—ये चादी के तत्कालीन सिक्को के नाम थे। सिक्को पर पहले किसी राजा की मूर्ति या उपाधि अकित करने की प्रथा नही थी, केवल कुछ चिह्न—जैसे हाथी, कुत्ता या वृक्ष—ठप्पो से अकित कर दिए जाते थे। ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दी से अक्षरो का प्रयोग होने लगा। कुछ समय तक प्राकृत का बोलवाला रहा। फिर देवनागरी या हिन्दी का प्रयोग होने लगा। चादी का रुपया चलानेवाला शेरशाह था। उसके सिक्को पर कूफी के साथ हिन्दी को भी स्थान प्राप्त था। उसके

बेटे इस्लामशाह के समय मे भी यही बात रही। श्रीयुत दुर्गाप्रसाद जी लिखते है — "इनके समय तक तो मुद्राओ पर हिन्दी को बराबर स्थान मिला, पर जब मुगल बादशाह बाबर, हुमायू और अकबर ने अपने अधिकार जमाए और सिक्के चलाए तो उन्होने पहले कूफी अक्षरो मे अपने नाम सिक्को पर लिखे। हुमायू ने पहलेपहल फारसी अक्षरो का प्रचार भारत मे किया। उसके पहले फारसी अक्षरो को, जिसमे उर्दू लिखी जाती है, यहा कोई नही जानता था। . . . . अकबर और उसके बाद जहागीर, शाहजहा, औरगजेब इत्यादि सभी बादशाहो ने फारसी का प्रचार किया। राजकार्य सब फारसी मे होते रहे। सिक्को पर भी फारसी अक्षरो को जगह दी गई और हिन्दी देवनागरी को हटा दिया गया।"

भारत मे सोने के सिक्को का प्रचार भी अत्यन्त प्राचीन काल से है। उन्हे निष्क, पाद आदि कहते थे। कुछ विद्वानो का मत है कि ससार में पहलेपहल सिक्के के लिए सोने का ही प्रयोग होता था, क्योकि सोना सुलभ था, और चादी दुर्लभ। सोना जहा मिलता था वहा सोने के ही रूप मे, उसे अलग करने के लिए कोई विशेष परिश्रम या प्रयास नही करना पडता था, पर चादी की बात और थी, वह दूसरे खनिज द्रव्यो के साथ इस प्रकार मिश्रित थी कि उसे निकालना या हासिल करना जरा टेढा काम था। कहते है कि उस युग मे सोने से चादी का मूल्य कही अधिक था। क्रमश चादी निकालने के ज्ञान या विज्ञान की उन्नति होती गई और चादी की दुर्लभता मिटती गई। कुछ काल बाद स्थिति बिलकुल बदल गई। चादी सुलभ हो चली, और सोना दुर्लभ। मालूम नही, इस देश मे इनका क्या क्रम रहा। पर इतना निश्चित-सा जान पडता है कि प्राचीन काल मे यहा सोना, चादी की तुलना मे, सस्ता था। फौलर कमेटी के सामने बयान देते हुए अगरेज अर्थशास्त्री मि० मैकलियड ने कहा था —

"अति प्राचीन काल मे भारतवर्ष सुसभ्य था, और पाश्चात्य देश असभ्य या बर्बर। उस समय भारतवर्ष को विदेशी वस्तुओ की कोई खास जरूरत नही थी और वह बिना सोना या चादी पाए, अपना माल बेचने को तैयार न था। पर भारतवर्ष मे सोना और देशो की अपेक्षा सस्ता

था—ईरान मे १३ भाग चादी एक भाग सोने के बराबर होती थी, और भारतवर्ष मे ८ भाग चादी एक भाग सोने के, लेहाजा भारत मे बाहर से चादी बहुत बडे परिमाण मे आया करती, जिसके बदले मे वहा से या तो सोना बाहर जाता या दूसरा माल ।"

सोने-चादी के इतिहास मे अमेरिका का पता चलना (१४९३) एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। यूरोपवालो को मानो कुबेर की निधि हाथ लग गई। जहा सोने या चादी का—पर विशेषत चादी का—एक साधारण सोता-सा बहता था वहा, समुद्र नही तो एक जबर्दस्त दरिया लहरे मारने लगा। थोडे ही समय मे यूरोप की भूमि इनसे परिप्लावित हो चली और वहा के आर्थिक क्षेत्र मे पूरा इनकिलाब नजर आने लगा। 'पानी फलक पर खेत मे दाना बदल गया।'

१४९३ और १८०० के बीच सोने और चादी के उत्पादन का तखमीना यह है—

	सोना (लाख औस)	चादी (लाख औंस)
१४९३–१६००	२३०	७,४७०
१६०१–१७००	२९०	१२,७२०
१७०१–१८००	६१०	१८,३३०
	१,१३०	३८,५२०

उत्पादन की दृष्टि से १६वी सदी मे सोने और चादी का पारस्परिक अनुपात १ ३२ था—अर्थात् जितना सोना निकला उससे ३२गुना अधिक चादी निकली। १७वी सदी मे यह अनुपात १ ४४ हो चला। पारस्परिक मूल्य का अनुपात पहले १ ' ११ था— अर्थात् एक भाग सोना प्राय ११ भाग चादी के बराबर होता था। पर यह अब प्राय १ १५ हो चला, और प्राय दो सौ साल तक— अर्थात् १९वी सदी के पिछले भाग तक— यही कायम रहा।

इस देश मे यूरोप से चादी का आयात अब और भी अधिक हो चला। विदेशी कम्पनियो—मुख्यत ईस्ट इडिया कम्पनी—का इस व्यापार पर

एकाधिपत्य-सा था। उधर बगाल-विहार मे—और अशत अन्यत्र भी—आर्थिक क्षेत्र के अधिपति थे मुर्शिदाबाद के जगत्सेठ। नवाब ने इन्हे टकसाल का इजारा दे रखा था। लेहाजा चादी के सबसे वडे खरीदार यही थे। ईस्ट इडिया कम्पनी और जगत्सेठ के घराने के बीच के लेन-देन के सबन्ध पर, और तत्कालीन व्यापारिक अवस्था पर, यह अवतरण अच्छा प्रकाश डालता है—

"(१७४६) अक्तूबर मे विलायत से कुछ चादी आई। कौसिल के आग्रह करने पर (जगत्सेठ) महताबराय ने उसे खरीद लिया। इससे कम्पनी को कई लाख रुपए तत्काल मिल गए और कुछ दिनो तक उसे कर्ज लेने की जरूरत नही पडी। पर नया साल शुरू होते ही अवस्था फिर बदली और ढाका के कर्मचारियो ने कौसिल से रुपया मागा। इसी समय कुछ चादी आ पहुची। कौसिल ने उसे कासिमबाजार भेज दिया। वहा वह महताबराय को बेंच दी गई और उसके पेटे कम्पनी को डेढ लाख रुपया मिल गया। पर यह रुपया कासिमबाजार की कोठी को न मिला, इसकी वहावालो ने शिकायत की और कौसिल को लिखा—'ऐसे समय मे, जब कि हमपर कर्ज का इतना भारी बोझ है और कम्पनी की साख इतनी कम रह गई है, आपने यह रुपया मगाकर अच्छा काम नही किया। महाजन पहले से ही अधीर हो रहे थे, मालूम नही, अब वे क्या कर बैठेगे।' कौसिल ने उन्हे लिखा कि हम और चादी शीघ्र ही भेजनेवाले है। चादी कासिमबाजार भेजी गई, पर महतावराय ने उसे उसी दम लेने से इनकार कर दिया।" ईस्ट इडिया कम्पनी के पुराने कागजात से जाहिर होता है कि रुपए की टान उस समय काफी थी और जगत्सेठ ने चादी का दाम घटा दिया था। वह १७४७ के उत्तरार्द्ध मे २४० सिक्के रुपए भर चादी के लिए २०१ रुपए से अधिक देने को तैयार न थे। कम्पनी अपनी चादी उनके हाथ बेचती जाती और बराबर दाम बढाने के लिए आग्रह करती जाती।

पलासी की लडाई मे विजय पाकर ईस्ट इडिया कम्पनी बगाल-विहार का, और धीरे-धीरे सारे भारतवर्ष का, भाग्यविधाता बन बैठी। जगत्सेठो ने इस राज्यक्राति को सफल बनाने मे प्रमुख भाग लिया था और

कम्पनी की तन-मन-धन से सहायता की थी, पर उन्हे अन्त मे लेने के देने पड गए, और कहना चाहिए कि पलासी के मैदान की रचना कराकर उन्होने अपने ही विनाश के बीज बोए। आर्थिक और राजनैतिक, दोनो ही क्षेत्रो मे सर्वेसर्वा ईस्ट इडिया कम्पनी बन बैठी और जगत्सेठ उपाधि उस घराने की विपुल सम्पदा और प्रभुता का स्मारक-मात्र रह गई।

पर चादी के सिक्को का प्रचार विशेषत उत्तर भारत मे ही था। दक्षिण मे प्रधानता सोने के सिक्को की थी।

सस्कृत मे चादी को रूप्य या रौप्य कहते है। अष्टाध्यायी मे एक विशेष प्रकार की मुद्रा के लिए "आहत रूप्य" शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसी रूप्य या रौप्य का अपभ्र श रुपया है। १८३५ से पहले इस देश मे तरह-तरह के रुपए प्रचलित थे। इनमे कुछ के नाम-धाम इस प्रकार थे—

१—पुराने सिक्के (१७९३–१८१७)
२—नए सिक्के (१८१८–१८३२)
३—पुराने और नए फर्रुखाबादी रुपए, जो फर्रुखाबाद, बनारस और सागर की टकसालो मे ढले थे।
४—फर्रुखाबादी रुपए, जो कलकत्ते की टकसाल* मे ढले थे।
५—मद्रासी रुपए।

सोने के सिक्को का भी यही हाल था। इस बहुतायत और विभिन्नता मे बडी अडचने पैदा होती थी—लेन-देन, व्यापार के मामले मे यह अनेकता प्रबल बाधक का काम करती थी। ईस्ट इडिया कम्पनी की ओर से जो कलक्टर नियुक्त होते थे उन्हे चादी के कम-से-कम ६० और सोने के कम-से-कम ७२ सिक्के माल या लगान के रूप मे, लोगो से लेने पडते थे। बगाल का यह हाल था कि एक जिले मे जो रुपया चलता वह दूसरे जिले मे नही! यह भी नही कि एक जिले के अन्दर एक ही प्रकार के सिक्के का बोलबाला हो। अलग-अलग चीजो के लिए अलग-अलग सिक्के

*कम्पनी की टकसालो में रुपए की ढलाई कल-द्वारा होती थी, इसलिए उसका नाम कलदार पडा।

थे। और घिसाई की मात्रा न्यूनाधिक होने के कारण सिक्को पर वट्टे का हिसाव भी अलग-अलग था। चादी और सोने का पारस्परिक सम्बन्ध सदा एक-सा नही रहता था—कभी सोना सस्ता हो जाता, कभी चादी। इनमे जो चीज सस्ती होती वह तो चलन मे रह जाती, और जो महगी होती वह निकल जाती। इन सारी अडचनो और कठिनाइयो को दूर करने के लिए मुद्रा-सम्बन्धी सुधार आवश्यक था, और वह सुधार था अनेकता की जगह एकता का स्थापन। भारतवर्ष का अधिकाश एक राजछत्र की छाया मे आ चुका था, इसलिए वह सुधार अव उतना कठिन भी नही रह गया था। कहना चाहिए कि शासन-सम्वन्धी एकता के वाद मुद्रा-सम्वन्धी एकता आने ही वाली थी।

कम्पनी के डाइरेक्टरो ने इस विषय मे अपना मत प्रकट करते हुए १८०६ मे मद्रास-सरकार को लिखा कि भारतवर्ष का प्रधान सिक्का चादी का होना चाहिए, जिसका वजन १८० ग्रेन (एक तोला) हो और जिसमे १६५ ग्रेन खालिस चादी हो। उनकी राय थी कि प्रधानता चादी के सिक्के की रहे, पर सोने का चलन भी वन्द न हो। साथ ही, वे इन दोनो के वीच कानूनन कोई सम्वन्ध स्थापित करना नही चाहते थे। उनका प्रस्ताव था कि सोने का मूल्य उसके परिमाण और उसकी माग पर अवलम्वित हो।

पर प्राय ३० साल तक मुद्रा-सम्वन्धी एकीकरण का प्रस्ताव प्रस्ताव ही रहा। उसको विधान का रूप मिला १८३५ मे, जिससे दो साल पहले वगाल के गवर्नर-जनरल सारे देश के गवर्नर-जनरल वनाए जा चुके थे और शासनसत्ता पूरी तरह केन्द्रीभूत हो चुकी थी। उस साल २७ मई को सरकार की ओर से यह घोषित किया गया कि भारतवर्ष का जितना भाग ब्रिटिश छत्रच्छाया मे आ चुका है उसमे अव एकही प्रकार के रुपए का चलन होगा और हर वात मे यह रुपया आजकल के फर्रुखावादी रुपए के समान होगा। इस घोषणा के अनुसार जो विधान वना उसे भारत के मुद्रा-सम्वन्धी इतिहास मे वडे ही गौरव का स्थान प्राप्त है। उसका साराश यह था—

(१) १ली सितम्बर १८३५ से कम्पनी की टकसालो मे एक ही प्रकार

के रुपए की ढलाई होगी। इस रुपए का वजन १८० ग्रेन होगा, जिसमे खालिस चादी १६५ ग्रेन होगी। अठन्नियो और चवन्नियो मे भी इसी हिसाब से चादी रहेगी।

(२) कुछ खास तरह के सोने के सिक्के भी ढाले जायगे, पर कोई भी आदमी कम्पनी के राज्य मे सोने का सिक्का देने या लेने को बाध्य न होगा।

इस विधान की बदौलत १६५ ग्रेन खालिस चादीवाला रुपया मुद्रा-सिहासन पर जा बैठा। देन-लेन के लिए सब लोग इसीका व्यवहार करने को बाध्य थे, इसलिए अपने क्षेत्र मे धीरे-धीरे इसका एकछत्र राज्य-सा स्थापित हो गया। भारतवर्ष मे हर प्रकार के मूल्य का मापदण्ड चादी बन गई।

पर साथ-साथ एक हद तक सोने का चलन भी बना रहा। कम्पनी की टकसाल मे सोने का जो प्रधान सिक्का ढलता उसका वजन भी १८० ग्रेन था, जिसमे खालिस सोना १६५ ग्रेन था। इसका मूल्य था १५), और १८४१ का सरकारी आदेश था कि जब तक दूसरा हुक्म जारी नही किया जाता तब तक उसकी ओर से ये सिक्के इसी दर से मजूर किए जाय। पर यह अवस्था चिरस्थायी न हो सकी। कुछ ही वर्ष बाद ऑस्ट्रेलिया और कैलीफोर्निया मे नई खानो के खुलने से सोने का उत्पादन बहुत बढ चला और चादी की तुलना मे वह सस्ता हो चला। नतीजा यह होने लगा कि लोग अपना लगान या कर रुपयो मे न चुका कर मोहरो मे चुकाने लगे। बाजार मे एक मोहर के १५) से कम मिलते, क्योकि सोना सस्ता हो रहा था— पर सरकारी खजाने मे वह अब भी उसी दर से ली जाती, इसलिए मोहरो की वहा भरमार होने लगी। और सरकार किसीको भी १५) मे मोहर लेने को बाध्य नही कर सकती थी। सरकार चाहती तो चादी की जगह उसी समय सोने को दे देती और सोने को ही मूल्य का मापदण्ड बना देती। पर ऐसा न करके सरकार ने १८४१ के आदेश को ही उठा लिया और १ली जनवरी १८५३ से मुद्रा के रूप मे सोने का चलन बिलकुल बन्द हो गया।

सन् सत्तावन के गदर के कारण भारत-सरकार की आर्थिक कठिनाइया

बेहद बढ गई और स्थिति सुधारने के लिए मि० जेम्स विल्सन नामक विशेषज्ञ इगलैण्ड से लाए गए। यह भारत-सरकार के प्रथम अर्थ-सदस्य थे और इन्हीके समय मे करेन्सी नोट जारी किए गए। यह १८६१ की बात है। उससे पहले नोट जारी करने का अधिकार कुछ खास बैको को प्राप्त था, पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के बाहर नोटो का प्रचार नही के बराबर था। उस समय कोई भी आदमी नोट देने या लेने को कानूनन बाध्य न था। विल्सन ने नोटो का प्रचार बढाने की दृष्टि से अपनी योजना भारत-सचिव के सामने रखी। उस समय भारत-सचिव सर चार्ल्स उड थे, और उनका इस विषय मे विल्सन से मतभेद था। विल्सन इस मत के अनुयायी थे कि नोटो की पुश्ती के लिए जो कोष या रिजर्व कायम किया जाय उसमे एक हद तक सोना-चादी रखकर बाकी हिस्सा सरकारी कागज के रूप मे रखा जाय। सर चार्ल्स का सिद्धान्त था कि कम-से-कम नोटो की पुश्ती ऐसे कागज से होनी चाहिए, और रिजर्व का बाकी सारा हिस्सा सोने या चादी का होना चाहिए।

अन्त मे हुआ वही जो भारत-सचिव को मजूर था। सन् १८६१ मे नोट-सबधी जो विधान बना उसने करेसी रिजर्व मे सरकारी कागज की हद चार करोड पर बाध दी—अर्थात् यहा तक तो नोटो की पुश्ती सरकारी कागज या सिक्यूरिटीज से की जा सकती थी, पर यहा पहुच जाने के बाद जो नोट निकाले जाते वे रिजर्व मे सोना-चादी रखकर ही। आरम्भ मे रिजर्व मे चादी ही चादी रहती थी, १८६५ मे कुछ सोना भी जमा हुआ, पर उसकी मात्रा कम होती गई, और १८७५ मे वह बिलकुल गायब हो गया। फिर १८९८ के बाद करेन्सी रिजर्व मे सोना इकट्ठा होने लगा। आरम्भ मे दस, बीस, सौ और एक हजार के नोट जारी किए गए थे। पाच रुपए का नोट १८७१ मे जारी किया गया, और दस हजार का नोट उसके भी बाद। १८६१ के विधान ने सारे देश को कुछ हलको मे बाट दिया, जो 'सर्कल' कहलाते थे—जैसे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और रगून। एक सर्कल का जारी किया हुआ नोट दूसरे सर्कल मे कोई लेने को बाध्य न था, पर सरकारी देना किसी भी सर्कल के नोटो मे अदा किया जा सकता था। नोटो की

लोकप्रियता बढाने के लिए और भी सुभीते कर दिए गए थे। पर नोटो का विशेष प्रचार वर्तमान शताब्दी मे ही हुआ है। समय-समय पर नोट-सम्बन्धी विधान मे सशोधन होते रहे है। इस शताब्दी के पहले ग्यारह साल के भीतर, पाच से लेकर सौ रुपए तक के नोट 'अखिल भारतीय' कर दिए गए—अर्थात वे चाहे किसी भी सर्कल के हो, लोग उन्हे सर्वत्र लेने को कानूनन बाध्य हो गए। इससे नोटो का प्रचार और भी स्वच्छन्दता से होने लगा। नोटो की कागजी पुश्ती की हद भी १८६१ और १९४३ के बीच कही-से-कही जा पहुची है।

जिस समय नोट-सम्बन्धी विधान पहलेपहल बना उस समय यहा रुपए की बडी टान थी। इसके कुछ खास कारण थे। अमेरिका मे उत्तर और दक्षिण के राज्यो के बीच जो भीषण सग्राम हुआ उसका एक नतीजा यह हुआ कि दक्षिण से रुई का निर्यात (एक्सपोर्ट) कुछ समय के लिए बन्द हो गया और यह व्यापार भारतवर्ष को मिल गया। यहा से निर्यात काफी होने लगा और देश का पावना चुकाने के लिए दूसरे देशो के लिए अधिकाधिक चादी भेजना आवश्यक हो गया। पर भारतवर्ष इस समय बाहर कर्ज भी काफी ले रहा था। १८५५-५६ और १८६९-७० के बीच उसने प्राय ९६ करोड रुपए कर्ज लिए। इन दोनो कारणो से चादी का आयात कही-से-कही बढ गया। १८५७-५८ और १८६२-६३ के बीच ससार भरमे जितनी चादी निकली उससे अधिक चादी अकेले भारतवर्ष ने ली। फिर भी यहा रुपए की टान बनी ही रही। ऐसी अवस्था मे लोगो का ध्यान सोने की ओर जाना स्वाभाविक था। १८६४ मे यहा के वाणिज्य-व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ सभाओ या चेम्बरो ने प्रस्ताव किया कि मूल्य का मान या स्टैण्डर्ड सोना कर दिया जाय, और सोने के सिक्के चलन मे लाए जाय। इस सम्बन्ध मे कुछ अवतरण उस आवेदनपत्र से दिए जाते है,जो बम्बई के चेम्बर की ओर से बडे लाट के पास भेजा गया था —

"भारतवर्ष का व्यापार तेजी से बढ रहा है, वह आर्थिक और औद्योगिक उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है, पर चादी इस समय उस व्यापार और उस उन्नति मे सहायक न होकर बाधक हो रही है।

"जिस समय चादी को अपनाया गया था उस समय उसका उत्पादन सोने से प्राय दूना था। इसलिए कहा जा सकता है कि उसे अपनाना बुद्धि-मत्ता का काम था। पर वह बात अब नही रही। इधर चादी के उत्पादन मे कोई वृद्धि नही हुई है। पर भारतवर्ष की माग बेहद बढ गई है, इसलिए चादी से काम चलाना असम्भव-सा हो गया है।

"ससार मे हर साल प्राय एक करोड पौड (स्टर्लिंग) की चादी निकलती है। पर पिछले छ साल म एक भारतवर्ष ने ही हर साल एक करोड पन्द्रह लाख पौड की चादी ली है। पिछले साल तो उसने १ करोड ४५ लाख पौड की ली।

"ऐसी अवस्था मे चादी के मूल्य मे बहुत बडी वृद्धि अनिवार्य है—जिसका अर्थ है भारतवर्ष जैसे देश मे द्रव्य की कमी और दामो का गिरना।

"उधर सोने का यह हाल है कि उसका उत्पादन बहुत बढ गया है और ससार मे जितनी चादी निकलती है उससे कम-से-कम १५० प्रतिशत अधिक सोना निकलता है।

"भारतवर्ष के लिए, और बाकी दुनिया के लिए, चादी काफी नही है, पर सब के लिए सोने की बहुतायत है, इसलिए हमे चाहिए कि हम चादी जैसी कीमती और भारी चीज को छोडकर सोना जैसी सस्ती और हलकी चीज को अपनावे।

"इससे कई लाभ होगे—चादी का मूल्य अपनी मुनासिब जगह पर बना रहेगा और इस देश के वाणिज्य-व्यवसाय का विस्तार अप्रतिहत गति से होता रहेगा।

"सोने का इस समय जो बहिष्कार है वह न तो सभ्योचित है, न युक्ति-सगत है, न स्वाभाविक है। सोना इस समय भी यहा काफी आता है, पर वह सिक्के के रूप मे नही चल सकता। सरकार को चाहिए कि वह शीघ्र-से-शीघ्र चादी की गद्दी सोने को दे दे, जिससे सोने के सिक्को का चलन हो जाय, और इससे जो अनेक लाभ हो सकते है उनसे यह देश वचित न रहे।"

इस विषय पर काफी लिखा-पढी हुई, पर कोई खास नतीजा न निकला।

भारत-सचिव अन्त मे यहा तक जाने को राजी हुए कि सॉवरेन या गिनी १०) की दर से सरकारी खजानो में ले ली जायगी। वाद यह दर १०।) कर दी गई। १८६६ मे इस विषय के अनुसन्धान के लिए एक कमीशन भी वैठा। भारत-सरकार के तत्कालीन अर्थ-सदस्य सोने के सिक्के के पक्ष मे थे। कमीशन ने भी अपनी राय उसके पक्ष मे दी। पर यह सब निष्फल रहा। १८७२ और १८७३ मे अर्थ-सदस्य ने फिर इस सम्बन्ध मे कुछ प्रस्ताव भारत-सरकार के सामने रखे। पर सरकार को प्रस्तावित सुधार स्वीकार न हुआ।१८७४ की ७ वी मई को उसने अपना निर्णय इन शब्दो मे प्रकाशित कर दिया कि--

"सोने के सिक्के को चलन मे लाने की वाञ्छनीयता पर विचार कर सरकार इस नतीजे पर पहुची है कि फिलहाल सोने को मूल्य का मान वनाने के लिए कोई भी कार्रवाई न की जाय।"

फलत यहा चादी के रुपए का ही वोलवाला वना रहा।

अव और देशो की सुनिए। फ्रास मे सोना और चादी दोनो के ही सिक्के चलते थे। पर १८५० से पहले वहा प्रधानता चादी की ही थी। कानूनन एक भाग सोना १५॥ भाग चादी के वरावर था, पर १८०३ और १८५० के वीच वाजार-दर के अनुसार चादी इससे प्राय सस्ती पडती थी, १५॥ के वजाय प्राय १६ भाग चादी एक भाग सोने के वरावर होती थी। जहा दो प्रकार के सिक्के चलते है वहा सस्ता या घटिया सिक्का तो चलन मे रहता है, और महगा या वढिया वाहर निकल जाता है। इसीको अर्थशास्त्र मे 'ग्रेशम नियम' कहते है, क्योकि सबसे पहले इसपर प्रकाश डालनेवाले सर टॉमस ग्रेशम नामक अगरेज अर्थ-सचिव थे। फ्रास की ही वात लीजिए। सोने के सिक्के मे कोई भुगतान करता तो वह सिर्फ १५॥ भाग चादी पाने का हकदार होता, पर उसी सिक्के को गलाकर वह वाजार मे वेच देता तो उसे १६ भाग चादी मिल जाती। ऐसी अवस्था मे यह स्वाभाविक था कि चलन से सोने के सिक्के निकल जायँ और उसमे चादी के सिक्को की भरमार हो जाय। पर१८५० के वाद गगा उलटी वहने लगी--अर्थात् चादी महगी और सोना सस्ता हो चला। जो अनुपात कानूनन

१ १५॥ था वह अब कुछ समय के लिए प्राय १ १५ ही चला। सिक्के के रूप मे १५॥ भाग चादी एक भाग सोने के बराबर होती, पर बाजार मे अपने असली रूप मे बिकने पर १५ भाग का ही एक भाग सोना हो जाता। इस परिवर्तित अवस्था मे चलन से चादी निकलने लगी, और उसकी जगह सोना भरने लगा। फ्रास मे अब यह प्रश्न उठा कि दोनो डाल पकडने की—दो नावो पर पैर रखने की क्या जरूरत ? कुछ लोग कहने लगे कि इगलैण्ड की तरह फ्रास सिर्फ सोने को अपना ले, कुछ इसका विरोध करते हुए उसकी जगह चादी की सिफारिश करने लगे। पर फ्रास के कर्त्ताधर्त्ता न सोने का परित्याग करना चाहते थे, न चादी का। वे कुछ सशोधन के साथ परम्परा को कायम रखना चाहते थे। चलन से चादी के सिक्के निकले जा रहे थे, इसको रोकने के लिए उन्होने कुछ सिक्को मे चादी की मात्रा कम कर दी। फिर १८६५ मे फ्रास, बेल्जियम, स्विटजरलैण्ड और इटली की एक सभा इस बात पर विचार करने के लिए हुई, कि इन देशो की मुद्रा-नीति क्या होनी चाहिए। इसके फलस्वरूप लैटिन-मुद्रा-सघ की स्थापना हुई और आपस मे यह तय पाया कि सघ पन्द्रह साल तक कायम रहे, और जो देश इसके सदस्य हो वे सब-के-सब अपनी मुद्रा-नीति एक रखे। नीति यह ठहरी कि सोना और चादी, दोनो मे ही मुद्रा का काम लिया जाय और गौण सिक्को मे चादी की मात्रा कम कर दी जाय ताकि किसीके लिए उन्हे गलाकर बेचना लाभदायक न हो। सोने और चादी के बीच का अनुपात वही १ १५॥ रखा गया और इस बात की व्यवस्था की गई कि सघ के भीतर एक देश के सिक्के दूसरे देशो मे भी चल सके।

सघ को कुछ हद तक सफलता जरूर मिली, पर यह नही कहा जा सकता कि उसकी स्थापना से मुद्रा-सम्बन्धी प्रश्न का कोई स्थायी हल हो सका। इसलिए जून १८६७ मे, फ्रास के आग्रह से उस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इसमे बीस देश सम्मिलित हुए थे, जिनमे केवल दो—इगलैण्ड और पोर्टुगाल—सोने के अद्वैतवादी उपासक थे। बाकी सब-के-सब या तो द्वैतवादी थे, जो सोना और चादी दोनो से ही मुद्रा का काम लेते थे, या जो केवल चादी के उपासक थे।

सम्मेलन मे हॉलैण्ड को छोडकर सभी देशो का झुकाव सोने की ओर था, और यह निश्चित हुआ कि धीरे-धीरे सब-के-सब चादी को छोड सोने को अपना ले और सर्वत्र एक ही प्रकार के सिक्को का चलन हो। यहा तक तो इगलैण्ड सबके साथ रहा, पर अब उसके प्रतिनिधि कहने लगे कि हमने जो कुछ कहा है उससे हमारी सरकार पाबन्द नही है और वह अपनी मुद्रा-प्रणाली मे तब तक कोई भी हेर-फेर न करेगी जब तक उसे विश्वास न हो जाय कि यह सब प्रकार से वाछनीय है। उनका यह नया सुर सुनकर लोगो का उत्साह ठडा पड गया और आगे जो कार्रवाई हुई उसमे उतनी एकता नजर नही आई। सम्मेलन की सिफारिशो का तत्काल कोई नतीजा नही निकला, पर इसमे सन्देह नही कि उसने सोने का जो गुण-गान किया उसका, निकट भविष्य मे, कितने ही देशो की मुद्रा-नीति पर खासा असर पडा। १८७० मे फ्रास और प्रशिया (जर्मनी) के बीच सग्राम छिडा। इसमे फ्रास की हार से उसका प्रभाव जाता रहा, और मुद्रा-सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय एकता के प्रश्न को आगे बढानेवाला अब कोई दूसरा राष्ट्र न रह गया। मूल्य के मान के रूप मे तो सोने को कई देशो ने ग्रहण कर लिया, पर अन्तर्राष्ट्रीय सिक्के की बात जहा थी वही रही।

२

चांदी का परित्याग

लन्दन मे चादी स्टैण्डर्ड औस के हिसाव से विकती है। वहा का स्टैण्डर्ड है १००० भाग मे ९२५ भाग खालिस चादी। जिस समय का वृत्तान्त यहा दिया जाता है उस समय इगलैण्ड की मुद्रा सोने की थी, इसलिए कुल दाम सोने मे ही समझे जाने चाहिए।

१८७३ से पहले कई साल तक लन्दन मे चादी का दाम ६० पेस के करीब था। इधर चादी म कुछ तेजी जरूर आ गई थी, मगर वह इतनी अधिक नही थी कि उसे विशेप महत्वपूर्ण कहा जा सके। लोगो को थोडे समय के लिए कुछ चिन्ता जरूर हुई, मगर वे शीघ्र ही निश्चिन्त हो गए और उनका यह विश्वास फिर दृढ हो चला कि चादी और सोने के वीच का सम्वन्ध स्थिर या स्थायी वना रहेगा।

वास्तव मे १८७३ चादी के इतिहास मे एक नए युग का प्रारम्भिक वर्ष था। यह युग मुद्रा-जगत् मे भूचाल-सा लानेवाला और कई गहन, समस्याओ को उपस्थित करनेवाला था। इस भूचाल से चादी और सोने का पुराना सम्वन्ध छिन्नभिन्न-सा हो गया, और इसका एक नतीजा यह हुआ कि कई देशो ने चादी से घवरा कर सोने का पल्ला पकड लिया।

चादी अब अधोमुख हो चली—उसका दाम क्रमश गिरने लगा। यो तो यह गिरना पहले ही शुरू हो गया था, पर १८७३ मे जब दाम ५७$\frac{७}{८}$ पेस हो गया तब ससार का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ और इस सम्वन्ध मे तरह-तरह के प्रश्न किए जाने लगे। चादी बराबर गिरती ही गई। हर पाच साल का औसत ले तो १८७६ और १८९० के बीच उसका दाम यह रहा—

१८७६—८०	५२ ३/४ पेस
१८८१—८५	५० ५/८ पेस
१८८५—९०	४४ ५/८ पेस

दाम गिरते-गिरते १८९३ मे ३७ ११/१६ पेस तक आ गया था।

चादी के यो अधोमुख होने का कारण क्या था ?

इस सम्बन्ध मे प्रधान कारण यह बताया जाता है कि फ्रास पर विजय पाने के बाद जर्मनी ने सोने को अपनाकर चादी को वहिष्कृत कर दिया। यह सारी चादी जब बाजार मे बिकने लगी तब दाम का गिरना अनिवार्य हो गया।

जर्मनी को फ्रास से जो हर्जाना मिला वह काफी वडी रकम थी। इसलिए चादी की जगह सोने का चलन करना उसके लिए आसान हो गया। उधर उसकी महत्वाकाक्षा वढी-चढी थी ही। शायद उसका यह भी खयाल था कि सोना बडप्पन का चिह्न है, और कोई भी राष्ट्र तब तक बडो की श्रेणी मे नही आ सकता जब तक वह इस विषय मे इगलैण्ड की बराबरी नही करता। १८७१ मे ही उसने इस ओर कदम बढाया और १८७३ मे उसकी ख्वाहिश पूरी हो गई। सोना सिहासन पर आरूढ हो गया और चादी जहा-तहा जाकर खरीदार ढूढने लगी। १८७३ और १८७९ के बीच जर्मनी की ओर से जो चादी ससार मे बेची गई वह ११ करोड औस से ऊपर थी।

पर कुछ विद्वानो का मत है कि अगर भारतवर्ष पर हुडी करके भारत-सचिव करोडो रुपए हर साल विलायत न खैचते रहते तो जर्मनी की चादी इस तरह बिकने पर भी बाजार इतना खराब न होता। इस मत के प्रतिपादको मे मि० मार्टिन उड थे, जो कभी बम्बई के 'टाइम्स आव् इडिया' के सम्पादक रह चुके थे। १८९३ मे हर्शल कमेटी को उन्होने इस विषय पर अपना लिखित वक्तव्य दिया था। उनका कहना था कि जब लन्दन की ओर से इस प्रकार की हुडी की जाती है तब लन्दन के लिए यह जरूरी नही रह जाता कि वह चादी भेज कर भुगतान करे—और उतने करोड रुपए की चादी बिकने और भारतवर्ष जाने से रह जाती है। अगर भारतवर्ष

पर इगलैण्ड का राजनैतिक प्रभुत्व न होता और इगलैण्ड इतने करोड रुपए इस देश से हर साल न लेता जाता तो चादी की यह हालत न होती।

चादी का दाम गिरता गया और, जैसा कि ऊपर कह चुके है, वह दाम सोने मे था। यहा यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि चादी सस्ती हो गई या सोना महगा हो गया ? वास्तव मे दोनो ही बाते हुई। सोने का उत्पादन इधर कम हो चला था, और चादी का उत्पादन बहुत बढ गया था। अमेरिका मे पहले चादी कम---बहुत कम---निकलती थी पर, १८५९ के बाद वहा इसकी पैदावार इतनी बढी कि ससार आश्चर्य-चकित हो गया और चादी की समस्या सयुक्त राज्यो की राजनीति का एक प्रधान अग बन गई। १८५६ से १८६० तक वहा कुल चादी ३०९,४०० औस निकली थी। दूसरे पाच वर्षो मे निकली २८,१८०,६०० औस। पर बाद की पैदावार को देखते हुए यह भी बहुत कम था। अकेले १८७४ मे वहा २८,८६८,२०० औस चादी निकली, और १८९२ मे ६३,५००,००० औस।

अमेरिका मे उस समय मुद्रा* सोने की थी, और सोना महगा होने के कारण दाम गिरते जा रहे थे। इसलिए वहा यह आन्दोलन उठा कि मुद्रा-सिहासन पर चादी को भी बैठने का अवसर दिया जाय। इस आन्दोलन के समर्थक चादी के उत्पादक और कृषक थे। यह आन्दोलन तो सफल न हो सका, पर इसके फलस्वरूप अमेरिका की सरकार बाजार मे चादी की बहुत बडी खरीदार बन गई। यहा दो विधानो का उल्लेख आवश्यक है--एक तो ब्लाण्ड-ऐलीसन ऐक्ट, और दूसरा शर्मन ऐक्ट। पहला १८७९ मे पास हुआ और उसके अनुसार सरकार हर साल कम-से-कम २०,६२५,००० औस और अधिक-से-अधिक ४१,२५०,००० औस चादी खरीदने को बाध्य हुई। बारह साल तक सरकार चादी खरीदती गई, पर दाम का

---

*प्राय. ऐसे प्रसग में मुद्रा का व्यवहार स्वयसिद्ध मुद्रा के अर्थ में किया गया है।

प्रतीक-मुद्रा चादी या ताबे के अलावा कागज की भी हो सकती थी और हर जगह थी भी।

गिरना रुका नही । १८७८ मे जो दाम ५२ ९/१६ पेस था वह १८९० मे ४३ ११/१६ पेस हो गया। इस साल विधान-द्वारा अमेरिका की सरकार प्रतिवर्ष कम-से-कम ५४,०००,००० औस खरीदने को वाध्य की गई। चादी के वाजार मे इससे थोडे समय के लिए तेजी आई और दाम ५४ ५/८ पेस हो गया, पर उसे फिर अधोमुख होते देर न लगी और, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, दाम गिरते-गिरते १८९३ मे ३७ ११/१६ पेस पर आ गया।

रुपए मे खालिस चादी थी १६५ ग्रेन, और जव चादी का दाम ६० पेस था तव एक रुपया प्राय दो शिलिग* के वरावर होता था। यह रुपए का विनिमय-मूल्य था। ज्यो-ज्यो चादी गिरती गई, वह विनिमय-मूल्य या एक्सचेज भी गिरता गया। उदाहरणार्थ —

	चादी का औसत दाम	औसत एक्सचेज
	पेस	पेस
१८७२—७३	५९ १/४	२२ ३५१
१८७४—७५	५८ ५/१६	२२ २२१
१८७५—७६	५६ ७/८	२१ ६४५
१८७६—७७	५२ ३/४	२० ४९१

एक्सचेज गिरने से समाज के एक अग की हानि थी, और दूसरे का लाभ था।

जव एक रुपए मे दो शिलिग अर्थात् २४ पेस होते थे तव दस रुपए की समता एक पौड से होती थी। उस समय किसीका एक पौड विलायत मे होता तो वह बैंक को देकर उसके वदले यहा १०) पा सकता था, या किसीको एक पौड वहा देना होता तो वह १०) यहा देकर वदले मे एक पौड वहा पा सकता था। जव एक्सचेज गिरते-गिरते यहा तक आ गया कि

---

*१२ पेंस = १ शिलिग, और २० शिलिग = १ पौंड स्टर्लिंग ।

रुपए का वजन था १८० ग्रेन (३/८ औस), जिसमें खालिस चादी थी १६५ ग्रेन। चादी के दाम से रुपए का विनिमय-मूल्य निकालना साधारण अकगणित का काम था ।

एक रुपया सोलह पेंस के बराबर होने लगा, तब १५) की समता एक पौड से होने लगी। अब अगर विलायत मे एक पौड जमा हो तो उसके बदले १५) यहा ले लीजिए, और अगर विलायत मे एक पौड चुकाना हो तो उसके लिए यहा १५) दाखिल कीजिए।

एक्सचेज गिरने से इस देश के उत्पादको का—विशेषकर कृषक-समाज का—लाभ था। उनका जो माल विदेश मे बिकता उसका दाम पौड–शिलिग–पेंस मे मिलता। फिर इनका रुपए से विनिमय करना पडता। अब अगर रुपए का विनिमय-मूल्य गिर गया, तो पौड के उतने ही अधिक रुपए हुए, जिससे यहा के उत्पादक या किसान विशेष लाभ मे रहे।

हा, जिन्हे रुपया विलायत भेजना था उनकी बात और थी। एक्सचेज ज्यो-ज्यो गिरता, उन्हे अधिकाधिक रुपए देकर पौड लेने पडते। इस श्रेणी मे थे ब्रिटिश कर्मचारी, जिन्हे अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए विलायत पैसे भेजने पडते थे, ऐसे व्यापारी या व्यवसायी जिनका कारोबार यहा था पर जो अपने मुनाफे या अपनी पूजी को यहा से उठाकर वहा ले जाना चाहते थे, और भारत-सरकार, जिसे भारत-सचिव की माग पूरी करने के लिए हर साल कई करोड रुपए जुटाने पडते थे। विलायत से माल मगानेवाले भी इसी श्रेणी मे थे। मान लीजिए, उन्होने एक पौंड का माल मगाया और हिसाब लगाया कि १३।-) मे उन्हे बैंक से एक पौड मिल जायगा, इसी बीच एक्सचेज गिर जाने से पौड के पन्द्रह रुपए लगने लगे। लेहाजा उन्हे उस पौंड के लिए १॥≡) अधिक देना पडा।

भारतवर्ष के अधिकाश निवासी किसान है, और ऐसे विषय मे देश के हानि-लाभ का निर्णय उन्हीके हित की दृष्टि से होना उचित है। पर किसान न तो शिक्षित है, और न सगठित। इसलिए, जहा उनकी गहरी हानि होती है वहा भी उनसे कुछ करते-धरते नही बनता, और ऐसी दशा मे उनके हित की उपेक्षा होना बिलकुल स्वाभाविक है। उधर सरकार या अगरेज कर्मचारी या व्यवसायी सुशिक्षित, सुसगठित और सदा सावधान रहनेवाले है। उनकी जहा थोडी भी हानि होती है, वे रोने-चिल्लाने लगते

है और ऐसा आन्दोलन खडा कर देते है कि उनके हित की उपेक्षा असम्भव-सी हो जाती है। रुपए के एक्सचेज के इतिहास मे बार-बार ऐसा ही हुआ है।

जब चादी की दर के साथ रुपए की विनिमय-दर गिरने लगी, तो विलायत पैसे भेजनेवालो को यह स्थिति बहुत अखरने लगी, और उन्होंने इसके खिलाफ हो-हल्ला मचाना शुरू कर दिया। किसान तो बेजबान थे, और उनकी ओर से बोलनेवाले दूसरे लोग भी आज की अपेक्षा बहुत कम थे।

१८७५ मे पार्लमेण्ट की ओर से एक कमेटी इस विषय के अनुसन्धान के लिए बैठी कि चादी के दाम गिरने के क्या कारण है, और भारत तथा इगलैण्ड के बीच के एक्सचेज पर इसका क्या असर पडा है। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट मे विषय-विवेचना तो की, पर भारतवर्ष की ओर से किसी कार्रवाई की सिफारिश नही की।

उसी साल अगरेज व्यापारियो की ओर से भारत-सरकार के पास आवेदन-पत्र भेजे गए कि कुछ काल के लिए चादी की टकसाल सर्वसाधारण के लिए बन्द कर दी जाय। पर सरकार को यह मजूर न हुआ।

तीन साल बाद स्वय सरकार ने यह प्रस्ताव किया कि भारतवर्ष चादी की जगह सोने को अपना ले और सर्वसाधारण को अपनी चादी टकसाल मे ले जाकर उसके सिक्के ढलवा लेने का जो अधिकार प्राप्त है वह उससे ले लिया जाय—अर्थात् मुद्रा सोने की हो और रुपया उसके प्रतीक का काम करे। "दोनो के बीच की दर समय-समय पर सरकार निश्चित करती रहे और जब उसमे यथेष्ट स्थिरता आ जाय तब वह दर बराबर के लिए दो शिलिग कर दी जाय।" उस समय बाजार मे एक्सचेज की दर १ शिलिग ७ पेंस थी। दो शिलिंगवाले दिन इस समुदाय को अभी तक भूले नही थे।

भारत-सरकार के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए लन्दन मे एक कमेटी बैठी, जिसके सदस्यो मे भारत-सचिव की कौसिल और ब्रिटिश सरकार, दोनो के ही प्रतिनिधि थे। इस कमेटी ने एकमत हो अपनी राय उस प्रस्ताव के विरुद्ध दी। ब्रिटिश सरकार के अर्थ-विभाग की ओर से

इस प्रस्ताव पर जो टिप्पणी की गई थी (नवम्वर २४ १८७९) उसका कुछ अश उद्धृत करने लायक है—

"भारत-सरकार का प्रस्ताव है कि चादी के रुपए को इस समय जो स्थान प्राप्त है वह उससे छीन लिया जाय और उसे प्रतीक-मुद्रा वनाकर उसके और सोने की मुद्रा के वीच एक स्थायी सम्वन्ध सरकारी आदेश से स्थापित कर दिया जाय।

"पर यह व्यवस्था स्वाभाविक न होकर कृत्रिम होगी और इसकी सफलता के लिए सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य होगा। इस प्रकार के हस्त-क्षेप से वहुत कुछ वुराई होने का डर है।

"हो सकता है कि इस प्रकार रुपए की दर वाध देने से भारत-सरकार, अगरेज कर्मचारी और अगरेज व्यवसायी अपनी-अपनी चिन्ता से मुक्त हो जाय और फायदे मे रहे, पर आखिर इसका दाम चुकाना पडेगा भारत के किसानो को, जिनके कर्ज का वोझ (गल्ले इत्यादि का दाम गिर जाने के कारण) और भी भारी हो जायगा और जिन्हे लगान या कर चुकाने के लिए (उपज के रूप मे) आज जितना देना पडता है उससे कही अधिक देना पडेगा।"

भारत-सचिव ने दिसम्वर १८७९ मे भारत-सरकार को लिखा कि इस परिवर्तन की मजूरी नही दी जा सकती।

लैटिन-मुद्रा-सघ के सदस्य-देशो को अपनी हितरक्षा के लिए अव दूसरे ही प्रकार की कार्रवाई करनी पडी। चलन से सोना निकला जा रहा था, और उसकी जगह सस्ती चादी भरती जा रही थी। चूकि उनके यहा चलन मे चादी के सिक्को का अनुपात वहुत वढा हुआ था, वे अपनी मुद्रा-प्रणाली से चादी का पूर्ण वहिष्कार करने मे असमर्थ थे। पर आगे के लिए उन्होने चादी की टकसाल का दरवाजा सर्वसाधारण के लिए वन्द कर दिया। १८८० तक यूरोप मे कोई भी देश ऐसा न रह गया था जहा सर्वसाधारण को यह अधिकार हो कि चादी टकसाल मे ले जाकर उसके सिक्के ढलवा सके। मूल्य के मान के सिहासन पर सिर्फ चीन और भारत-वर्ष मे चादी रह गई थी।

कमेटी-कान्फ्रेस-कमीशन, इनका सिलसिला वना ही रहा। दो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन फिर पेरिस मे हुए, और दोनो का उद्देश यही था कि चादी मे स्थिरता लाने के लिए सब देशो की ओर से कुछ किया जाय। पर सब एकमत न हो सके, इस कारण परिस्थिति मे कोई अन्तर न पडा।

१८७८–७९ से १८८४–८५ तक चादी ५१ पेस के आसपास वनी रही, और फलत एक्सचेज भी स्थिर रहा—

	चादी का औसत दाम पेस	औसत एक्सचेज पेस
१८७८—७९	५२ ९/१६	१९ ७६१
१८७९—८०	५१ १/४	१९ ९६१
१८८०—८१	५१ १/४	१९ ९५६
१८८१—८२	५१ १/२ १/१६	१९ ८९५
१८८२—८३	५१ ५/८	१९ ५२५
१८८३—८४	५० ९/१६	१९ ५३६
१८८४—८५	५० ५/८	१९ ३०८

पर १८८६ मे चादी फिर नीचे गिरी और भारत-सरकार ने फिर अपनी कठिनाइयो का उल्लेख करते हुए एक्सचेज वाधने के उद्देश से एक स्कीम ऊपरवालो के सामने रखी। पर इस बार भी उसका प्रयत्न निष्फल रहा, ऊपरवालो ने उसके प्रस्ताव को नामजूर कर दिया। उन्होने भारत-सरकार के प्रस्ताव की आलोचना करते हुए लिखा—

"इसमे सन्देह नही कि अगरेज कर्मचारी-जैसे लोगो को इससे कुछ लाभ पहुचेगा, पर साथ ही, इससे भारतीय किसान या करदाता की वडी हानि होगी। चादी का दाम गिरने से इधर भारतवर्ष के वाणिज्य-व्यवसाय की वडी उन्नति हुई है, और ऐसा जान पडता है कि जनता को हानि की अपेक्षा लाभ अधिक हुआ है। ऐसी हालत मे भारत-सरकार का हस्तक्षेप करके रुपए को कृत्रिम मूल्य देना बहुत आपत्तिजनक है। हम इस प्रश्न पर केवल सरकार या उसके अगरेज कर्मचारियो के हित या सुविधा की दृष्टि से विचार नही कर सकते, हमे सब से अधिक तो यह देखना

और विचारना होगा कि चादी के गिरने का भारतीय जनता पर—उसकी व्यापारिक और औद्योगिक अवस्था पर—क्या असर पडा है।"

१८८६ मे एक शाही कमीशन, जिसके अध्यक्ष लॉर्ड हर्शल थे, चादी और सोने के सम्बन्ध की आलोचना के लिए बैठा। इस कमीशन के १२ सदस्यो मे एक सर डेविड बार्बर थे, जो भारत-सरकार के प्रतिनिधि कहे जा सकते थे। पर यह कमीशन भी एकमत न हो सका। छ सदस्यो ने द्वैत मुद्रा-प्रणाली के पक्ष मे राय दी, पर बाकी छ की राय यह ठहरी कि अद्वैत (सोना या चादी) की जगह द्वैत (सोना और चादी दोनो) को ग्रहण करना अन्धकार मे कूदने के समान खतरनाक होगा। इस मत-भेद के कारण कुछ भी न हो सका। भारत-सरकार ने आशा की थी कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौते से द्वैत प्रणाली की स्थापना और चादी के प्रश्न का हल हो जायगा, पर वह आशा निराशा मे परिणत हो गई।

उधर चादी नीचे गिरती ही गई और उसके साथ-साथ हमारी हुण्डी की दर भी —

	चादी का औसत दाम	औसत एक्सचेंज
	पेस	पेस
१८८५—८६	४८ ५/८	१९.२५४
१८८६—८७	४५ ३/८	१७.४४१
१८८७—८८	४४ ३/८	१६.८९८
१८८८—८९	४२ ७/८	१६.३७९
१८८९—९०	४२ ११/१६	१६.५६६
१८९०—९१	४७ ११/१६	१८.०८९
१८९१—९२	४५ १/१६	१६.७३३
१८९२—९३	३९ १३/१६	१४.९८५
१८९३—९४	३५ ५/१६	१४.५४७

१८९१ मे सुनने मे आया कि अमेरिका चादी की समस्या पर विचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन कर रहा है। भारत-वर्ष मे किसीको इस सम्मेलन से विशेष आशा नही थी। यहा सरकार और

अगरेज व्यवसायी यह सोचने-विचारने लगे कि अगर यह सम्मेलन भी पहले सम्मेलनो की तरह असफल रहा तो हमारा कर्तव्य क्या होगा। भारत-सरकार ने इस सम्बन्ध मे भारत-सचिव को लिखा (जून २१, १८९२) कि —

"अगर यह स्पष्ट हो गया कि इस सम्मेलन से कोई सन्तोषजनक व्यवस्था होनेवाली नही है, और यह भी स्पष्ट हो गया कि भारतवर्ष और अमेरिका के बीच कोई समझौता नही हो सकता, तो हमारा प्रस्ताव है कि सर्वसाधारण के लिए चादी की टकसाल का दरवाजा वन्द कर दिया जाय और चादी की जगह सोने को गद्दीनशी करने की तैयारी की जाय ।"

सोने और चादी के बीच का सम्बन्ध क्या हो, इस विषय में अपनी राय जाहिर करते हुए भारत-सरकार ने लिखा कि एक्सचेज को हम उसी रेट या दर के आस-पास रखना चाहते है जो नई व्यवस्था करते समय वाजार मे हो ।

२१ जून को लिखते हुए भारत-सरकार ने भारत-सचिव को विश्वास दिलाया कि लोकमत चादी के परित्याग और सोने के अगीकार के सर्वथा अनुकूल है और व्यापारीवर्ग से हमे इस काम मे हर प्रकार की उचित सहायता मिल सकती है ।

वास्तव मे यह अत्युक्ति और असत्य था। भारतवासियो के जो सच्चे प्रतिनिधि हो सकते थे वे चादी के परित्याग के घोर विरोधी थे, क्योकि वे जानते थे कि सोने की आड मे उसके पक्षपाती एक्सचेज को ऊचा करना चाहते थे। ब्रिटिश व्यवसायी भी दो दलो मे विभक्त थे। एक दल सरकार के साथ था, और उसके नेता थे मैकीनन मैकजी कम्पनी के मि० जेम्स मैके, जो बाद मे लॉर्ड इचकेप के नाम से मशहूर हुए। इसकी ओर से 'इण्डियन करेन्सी एसोसियेशन' नाम से एक सस्था खडी की गई, और पार्लमेण्ट के पास भेजने के लिए एक आवेदनपत्र पर येनकेनप्रकारेण लोगो के दस्तखत कराए जाने लगे। दूसरा दल चादी के परित्याग के प्रस्ताव का विरोधी था, और इसमे राली ब्रदर्स, ग्राहम, जॉर्ज हेंडर्सन, ऐण्ड्रू यूल, शा वैलेस-जैसे प्रतिष्ठित फर्म सम्मिलित थे। इन लोगो की

ओर से ९ फरवरी १८९३ को गवर्नर-जनरल के पास एक आवेदनपत्र भेजा गया। उसमे कहा गया था——

"हम लोग कलकत्ते के व्यवसाय के बहुत बडे अश के प्रतिनिधि है और प्रान्त भर के उत्पादक और दूसरे व्यवसायी इस विषय मे हमारे साथ है।

"हम लोगो का मत है कि करेन्सी एसोसियेशन रुपए का विनिमय-मूल्य ऊचा कराने और ठहराने के लिए जो प्रस्ताव कर रहा है वह हानि-कारक है, जिससे सरकार की अपनी साख और इस देश के वाणिज्य-व्यवसाय को खतरा है।

"हम लोग इस बात के पक्षपाती नही कि रुपए का मूल्य डावा-डोल बना रहे या वह बराबर नीचे गिरता जाय, पर हमारे विचार मे इससे भी कही अधिक आपत्तिजनक है उसको पौड-शिलिग-पेस मे कृत्रिम मूल्य प्रदान करना। हम यह कहे बिना नही रह सकते कि करेन्सी एसो-सियेशन का बताया हुआ इलाज किया गया तो बीमारी और भी बढ जायगी और तरह-तरह के उपद्रव होने लगेगे।

"हम लोग अनुभवी व्यापारी होने का दावा कर सकते है, और इस हैसियत से हम करेन्सी एसोसियेशन के अध्यक्ष के इस कथन का खडन करना चाहते है, कि चादी के गिरने से इस देश के व्यापार को बडा धक्का लगा है और यहा ऐसी मन्दी आ गई है जैसी पहले कभी न थी। वास्तव मे जो मन्दी है उसके कारण और ही है।

"हम जानते है कि सरकार की आर्थिक स्थिति चादी या एक्सचेज के गिरने से चिन्ताजनक हो गई है——और उसके जिन कर्मचारियो को इससे नुकसान पहुचा है उनसे हमारी पूरी सहानुभूति भी है। पर स्थिति को सुधारने के लिए न तो यह आवश्यक है, न वाछनीय, कि हम अपनी मुद्रा-प्रणाली को ही——जो हमारे वाणिज्य-व्यवसाय का आधार है और जिससे इस देश की धन-सम्पदा इतनी बढी है—— बिलकुल बदल दे।"

ऊपर जिन फर्मो के नाम लिखे गए है उनके अलावा इस आवेदनपत्र पर किल्बर्न कम्पनी, हागकाग शघाई बैंकिग कार्पोरेशन, ल्याल मार्शल,

ऑक्टेवियस स्टील, वामर लॉरी, जेम्स डफस, डेविड मैमून ऐंड कम्पनी आदि के भी हस्ताक्षर थे।

भारतीय सस्थाओ की ओर से भी टकसाल वन्द करने के प्रस्ताव का विरोध किया गया। काग्रेस के मत का उल्लेख हम पीछे करेगे, यहा इतना ही कहना पर्याप्त समझते है कि कलकत्ते की इण्डियन एसोसियेशन और पश्चिम भारत की प्रमुख सस्था इण्डस्ट्रियल एसोसियेशन ने भी उस प्रस्ताव का घोर विरोध किया। इण्डियन एसोसियेशन ने अपने वक्तव्य मे ठीक ही कहा—

"भारत-सरकार की जो आर्थिक स्थिति हो रही है उसे सुधारने का सही तरीका है फौजी खर्च मे कमी करना, जो रकम इगलैण्ड मे खर्च की जाती है उसको घटाना, अगरेज कर्मचारियो की सख्या कम करके उनकी जगह भारतवासियो को भरती करना, और—आवश्यक हो तो—ऐसी विदेशी वस्तुओ पर हलका-सा कर लगा देना, जो यहा न तो जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए आती है, न इस देश के उद्योग-धन्धो की तरक्की के लिए।"

वास्तव मे सरकारी कर्मचारी करेन्सी एसोसियेशन से शिखण्डी का काम ले रहे थे। पर वे उतने मे ही सन्तुष्ट न हुए। उनकी ओर से, और भी जितने उपायो से आन्दोलन किया जा सकता था, किया गया। ३१ जनवरी १८९३ को एक डेपुटेशन वडे लाट (लॉर्ड लैन्सडाउन) से भी मिला। उनके साथ सरकार की हमदर्दी जाहिर करते हुए वडे लाट ने यह सूचित किया कि यद्यपि सारा विषय उस समय विचाराधीन था तथापि भारत सचिव के आज्ञानुसार यह निश्चित हो चुका था कि फिलहाल जो कर्मचारी छुट्टी लेकर विलायत जायगे उनको वेतन और भत्ता १६३/४ पेस की रेट से मिलेगा। वाजार-दर उस समय १४७/३२ पेस थी।

सरकार की हमदर्दी और भी आगे गई। टकसाल वन्द हो जाने के वाद उसने गोरे और अधगोरे कर्मचारियो को एक खास तरह का भत्ता देना मजूर किया, जो एक्सचेज गिरने के कारण होनेवाली क्षति की पूर्ति के लिए था। यह भत्ता कई साल तक मिलता रहा। वाजार मे वास्त-

विक एक्सचेज रेट और १८ पेंस के बीच जो फर्क होता वह उन्हे सरकार की ओर से मिल जाता, जिससे वे साल मे १००० पौड तक विलायत भेज सके। जिन्हे इतना न भेजना पडता वे भी भत्ता पाने के हकदार होते। हर साल इसमे सरकार का एक करोड रुपए से अधिक खर्च होता रहा। काग्रेस बराबर इस भत्ते का विरोध करती रही।

१ सितम्बर १८९२ को भारत-सरकार के प्रस्तावो पर विचार करने के लिए एक करेन्सी-कमेटी की नियुक्ति हुई। इसके अध्यक्ष थे लॉर्ड हर्शेल, (जो उस समय लॉर्ड चान्सलर थे) और इसके बाकी सदस्यो मे मि० कर्टनी , सर आर्थर गाडले, जनरल स्ट्राची आदि थे।

इसी बीच वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी बेल्जियम की राजधानी मे बैठा। पर जिस राह और सम्मेलन जा चुके थे उसी राह यह सम्मेलन भी गया। इसकी असफलता का एक नतीजा यह हुआ कि चादी की टकसाल बन्द करानेवालो के आन्दोलन मे और भी बल आ गया।

इधर हर्शेल कमेटी की बैठके लन्दन मे होती रही और गवाहिया गुजरती रही। उन गवाहो मे एकमात्र भारतवासी प्रात स्मरणीय दादाभाई नौरोजी थे, और उन्होने भारत-सरकार के प्रस्ताव का विरोध ही किया। पर उनका साथ देनेवाले कई अगरेज गवाह भी थे, जिनमे राली ब्रदर्स के मि० राली, मि० रॉबर्ट ग्रिफिन (जो वर्षो बोर्ड आव ट्रेड मे बडे कर्मचारी रह चुके थे), यूनियन बैक आव स्कॉटलैण्ड के जनरल मैनेजर मि० चार्ल्स गेर्डनर, मि० विलियम फौलर, सर फ्राक फार्ब्स ऐडम आदि मुख्य थे।

कमेटी की रिपोर्ट मई १८९३ के अन्त मे तैयार हुई। उसका निचोड यही था कि भारतवर्ष चादी का परित्याग कर दे—सर्वसाधारण के लिए टकसाल का दरवाजा बन्द कर दिया जाय और हुण्डी की दर फिलहाल १६ पेंस कर दी जाय।

गरज यह कि भारत-सरकार का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। कमेटी ने उसमे हेरफेर किया तो इतना ही, कि हुडी की दर १८ पेंस न करके (यह हद सरकार की ओर से सुझाई गई थी) उसने फिलहाल १६ पेंस कर देने की सिफारिश की। भारत-सरकार ने कहा था, और कमेटी

ने भी इसको दोहराया कि चादी का परित्याग, सोने के ग्रहण के उद्देश से ही किया जा रहा था।

२० जून को भारत-सचिव ने तार-द्वारा भारत-सरकार को टकसाल बन्द करने और नई व्यवस्था जारी करने के लिए मुनासिव कार्रवाई करने की इजाजत दी।

२६ जून को वडे लाट की विधान-सभा मे इस विषय से सम्बन्ध रखने वाला कानून पास हुआ और उसी दम चादी सिहासनच्युत कर दी गई। सर्वसाधारण के लिए अव टकसाल का दरवाजा खुला न रहा—वहा चादी के सिक्के ढलवाने का अधिकार अब केवल सरकार को रह गया। साथ ही साथ इस बात की भी व्यवस्था की गई कि टकसाल मे जो कोई १६ पेंस अर्थात् ७ ५३३४४ ग्रेन खालिस सोना दाखिल करे उसे बदले मे एक रुपया मिल जाय।

हर्शल कमेटी ने जिस व्यवस्था की सिफारिश की थी, और जो अब कानूनन जारी की गई, वह थोडे समय के लिए थी। विचार यह था कि इसका अनुभव हो जाने पर स्थायी व्यवस्था की जाय। एक्सचेज अर्थात् हुण्डी की दर के सम्बन्ध मे यह बात खास तौर से नोट कर लेनी चाहिए। हर्शल कमेटी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा था कि अगर परिस्थिति अनुकूल हो तो यह दर बढाई जा सकती है। सरकार की ओर से विधान-सभा मे कहा गया कि चादी के रुपए और सोने के बीच जो सम्बन्ध स्थापित किया जा रहा है उसको अन्तिम निर्णय नही समझना चाहिए।

कांग्रेस ने प्रस्ताव-द्वारा इस बात पर जोर दिया था कि हर्शल कमेटी की जो सिफारिशे हो वे सर्वसाधारण के सामने रखी जाय और किसी भी प्रकार की कार्रवाई से पहले उसपर पूरी तरह से विचार हो ले। पर हमारी सरकार उतने समय के लिए भी ठहरनेवाली न थी।

अब पक्ष और विपक्ष की दलीले सुनिए—

बार-बार सरकार की ओर से यह रोना रोया जाता था कि चादी गिरने से हुण्डी की दर गिरती है और इसका नतीजा यह होता है कि जो रकम हमे विलायत भेजनी होती है उसके लिए यहा अधिकाधिक रुपए

जुटाने पडते है, हमारा आर्थिक सकट बराबर बना ही रहता है और हम कभी यह निश्चयपूर्वक नही जान सकते कि हमारी परिस्थिति कब क्या रहेगी ।

इसका जवाब यह था—

वास्तव मे हमे इगलैण्ड को जो कुछ देना पडता था उससे हमारा रक्तशोषण-सा होता था, और अगर हम पराधीन न होते तो देने-लेने की यह नौबत ही न आती। उस जमाने मे यह सालाना रकम डेढ करोड पौण्ड से ज्यादा थी और अगर एक्सचेज की दर १६ पेस पकडी जाय, तो उसके २२॥ करोड रुपए से अधिक होते थे। इसमे कितनी ही ऐसी रकमे शामिल थी, जो हमपर सिर्फ इसलिए लाद दी गई थी कि हम बेबस थे, और इगलैण्ड मनमानी जोर-जबर्दस्ती कर सकता था। अफगानिस्तान की तो बात ही क्या, अबीसीनिया की लडाई का खर्च भी हमसे वसूल किया गया। स्थालीपुलाकन्याय इससे ही समझ लीजिए कि क्या अवस्था थी। सबसे पहले देखने की बात तो यह थी, कि भारतवर्ष को जो कुछ देना पडता था उसमे न्यायत कहा तक कमी की जा सकती थी। फौजी खर्च का एक बडा हिस्सा इगलैण्ड को देना चाहिए था, क्योकि जो फौज यहा थी वह केवल भारतवर्ष की रक्षा के लिए नही, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य-मात्र की रक्षा और भलाई के लिए। मि० ग्रिफिन के मतानुसार, भारत-सरकार का आर्थिक सकट टालने या दूर करने के लिए मुद्रा-प्रणाली मे ऐसे परिवर्तन की कोई आवश्यकता नही थी—आवश्यकता थी तो खर्च घटाने की, भारतवर्ष का बोझ हलका करने की। "न्याय का तकाजा यह था कि भारत के खर्च मे करीब छ करोड की कमी कर दी जाय और उसके बोझ का यह हिस्सा इगलैण्ड अपने ऊपर ले ले।"

एक्सचेज गिरने से सरकार की कठिनाई जरूर बढ जाती, मगर उस हद तक नही, जो सरकारी बयानो मे दी जाती। इस विषय मे यह भी याद रखने की बात है कि चादी सस्ती होने और एक्सचेज गिरने से हमारे एक्सपोर्ट (निर्यात) व्यापार और उद्योग-धन्धो की बडी उन्नति हुई और इससे सरकार की आमदनी भी बढी। १८७३–७४ मे भारत-सरकार की

आय चालीस करोड रुपए के लगभग थी। पर १८९१–९२ मे यह ५० करोड से ऊपर पहुच गई थी। जो रकम विलायत भेजनी पडती उसमे थोडी-सी वृद्धि हो गई तो उसके लिए चादी काफी बदनाम की गई। पर उसी चादी ने दूसरी ओर करोडो की आमदनी कर दी तो उसे इसका कुछ भी यश नही मिला! श्री रमेशचन्द्र दत्त ने अपने प्रसिद्ध ग्रथ Economic History of India (भारतवर्ष का आर्थिक इतिहास) मे लिखा है कि चादी और एक्सचेज गिरने से जब चावल और गेहू मे तेजी आती तब सेटलमेण्ट (बन्दोबस्त) अफसर जमीन का लगान या माल बढा देते, और जब वाणिज्य-व्यापार बढने से व्यवसायियो की आय मे वृद्धि होती तब इन्कम टैक्स-अफसर टेक्स बढाकर अपने कर्तव्य का पालन करते—चादी के गिरने से सरकार को न कोई खास कठिनाई थी, न नुकसान। १८९१–९२ मे समाप्त होनेवाले दस वर्षो मे व्यय मे आय प्राय ५ करोड अधिक रही। यह इस बात का प्रमाण है कि भारत-सरकार का आर्थिक सकट जितना काल्पनिक था, उतना वास्तविक नही।

हिसाब-किताब मे जो हानि दिखाई जाती वह इस आधार पर, कि अगर इतना रुपया दो शिलिग या २४ पेस की दर से विलायत भेजा जा सकता तो सरकार को यहा इतना कम जुटाना पडता। उदाहरण के लिए १८९२–९३ मे एक्सचेज के कारण होनेवाली हानि, प्राय दस करोड दिखाई गई थी—अर्थात् अगर दो शिलिग की दर कायम होती तो उस साल इतने कम रुपए से ही भारत-सचिव की हुण्डियो का भुगतान हो जाता! पर इस सिलसिले मे क्या यह याद रखने की बात नही थी कि दो शिलिगवाले जमाने मे भारत-सचिव की माग आज से कही कम थी और सरकार के दूसरे खर्च भी इस बडे पैमाने पर न थे? भारत-सरकार की आर्थिक कठिनाइयो या सकट मे कोई वास्तविकता थी भी तो उसके लिए चादी या एक्सचेज नही, बल्कि और ही बाते जिम्मेवार थी।

सरकार को हर हालत मे अपने व्यय को आय के भीतर रखना चाहिए था। 'तेते पाव पसारिए जेती लाबी सौर'। पर इस कर्तव्य का उससे पालन न हुआ, और वह लापरवाही के साथ हर तरफ पैर पसारती ही गई।

सरहदी लडाइयो मे पैसा पानी की तरह वहाया गया, फौजी ताकत वढाने मे अन्धाधुन्ध खर्च किया गया। पर जब आर्थिक कठिनाई उपस्थित हुई तब इसके लिए दोपी ठहराई गई गरीब चादी और रुपए का गिरा हुआ विनिमय-मूल्य।

घडी भर के लिए यह मान भी लिया जाय कि बिना कर-वृद्धि किए सरकार की आवश्यकता की पूर्ति नही हो सकती थी, तो भी कहना पडेगा कि सरकार को जो करना चाहिए था उसे करने को वह तैयार न थी। विदेशी वस्तुओ पर उस समय जो कर या ड्यूटी थी वह नही के बरावर थी। १८७५ मे यह ड्यूटी ५ प्रतिशत कर दी गई थी। कपडे के लिए खास रिआयत थी। १८८२ मे नमक और शराब को छोड, बाकी चीजो पर से ड्यूटी उठा ली गई और इसके बाद कई साल तक विदेशी वस्तुए यहा बिना किसी प्रकार का कर दिए आती रही। इनमे प्रधानता कपडे की थी। हर्शल कमेटी ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा था कि "आय वढाने के लिए अगर विदेशी वस्तुओ पर फिर से ड्यूटी लगा दी जाय तो इसका बहुत कम विरोध होगा—कहा तो यह जाता है कि यह काम लोकप्रिय होगा। पर कठिनाई यह है कि अभी हाल मे ही कपडे पर से ड्यूटी उठा ली गई है, और अगर वह फिर से लगा दी गई तो इगलैण्ड मे इसका घोर विरोध होगा।" इगलैण्ड का विरोध स्वार्थमूलक था। उसका उद्देश था मैचेस्टर की मिलो को अधिक-से-अधिक सम्पन्न रखना। वार-बार उनकी भलाई की वेदी पर भारत के हित का वलिदान किया गया। अगर भारत स्वतन्त्र होता, और चादी के गिरने से सचमुच उसे कोई कठिनाई होती, तो वह इम्पोर्ट ड्यूटी बढा कर बडी ही आसानी से उस समस्या को हल कर सकता था।

यह हुई सरकार के सकट की वात। अब अगरेज कर्मचारियो की कठिनाइयो को लीजिए।

कहने की आवश्यकता नही कि इन्हे ससार मे ऊचे-से-ऊचे वेतन और ऊचे-से-ऊचे भत्ते मिलते थे। 'कैपिटल' नामक पत्र ने अपने १२ जुलाई, १८९२ के अक मे बहुत ठीक लिखा था कि "अगर एक शाही कर्मी-

शन यहा आकर जाच करे, तो यह बात-की-बात मे स्पष्ट हो जायगा कि जो अफसर या कर्मचारी सबसे ज्यादा शोर जरूर मचा रहे है वे इमदाद पाने के सबसे कम हकदार है। यहा तो जरूरत इस बात की है कि वेतन और भत्ते नए सिरे से मुकर्रर किए जाय, क्योकि कुछ तो बहुत ही कम पाते है, और कुछ बहुत ही ज्यादा। ससार मे और कोई देश नही, जहा वेतन इतने ऊचे हो, और चीजे इतनी सस्ती।" यह ध्यान मे रखने की बात है कि यूरोप मे १८७३ और १८९३ के बीच, सोना महगा होने के कारण, दाम काफी नीचे गिर गए थे। स्वेज की नहर के खुलने से यूरोप का रास्ता पहले से छोटा हो गया था और आने-जाने मे खर्च कम पडता था। इधर भारतवर्ष मे रेलो का जाल फैलता जा रहा था और व्यापारिक प्रतियोगिता बढती जा रही थी। ये सारे कारण विदेशी वस्तुओ के दामो को यहा नीचे गिरानेवाले थे। एक्सचेंज गिरने का असर उलटा जरूर पडता था, पर फिर भी बाहर से आनेवाली चीजे १८९३ मे १८७३ की अपेक्षा सस्ती थी। लन्दन के 'स्टेटिस्ट' नामक पत्र ने इन कर्मचारियो की माग पर टीका करते हुए लिखा था—

"इनका कहना है कि वेतन का जो हिस्सा हमे यूरोप से आनेवाली चीजो पर खर्च करना पडता है उसमे सैकडे ३८ की वृद्धि हुई है। शायद इनका खयाल है कि यूरोप मे रहनेवाले भारत की बातो से बिलकुल अनभिज्ञ है। यह खयाल न होता तो ये ऐसी बात कहने की धृष्टता न करते। असलियत तो यह है कि यह वृद्धि नही के बराबर हुई है। . . फिर इनका कहना है कि वेतन का जो हिस्सा हमे विलायत भेजना पडता है उसमे भी नुकसान उठाना पडता है। पर अगर नुकसान हो भी तो भारत-सरकार का इसमे क्या दोष ? वह तो कहेगी और बहुत ठीक कहेगी, कि हमने तुम लोगो को जो कुछ देने का वादा किया था वह दे दिया। उसके जितने कर्मचारी है उनके वेतन वह रुपयो मे चुका देती है। चादी के गिरने से रुपए की एक्सचेज-दर [गिरती है तो वह क्या करे ? उसके लिए न वह जिम्मेवार है, न वह उसके रोके रुक सकती है।"

चादी के विरुद्ध आन्दोलन करनेवालो का कहना था कि मौजूदा हालत मे एक्सचेज अस्थिर, डावाडोल रहता है और यह व्यापार के मार्ग मे वाधक का काम करता है। पर हर्शल कमेटी के सामने कई ऐसे उदाहरण पेश किए गए जो और ही बात सावित करनेवाले थे। दक्षिण अमेरिका, रूस, ऑस्ट्रिया आदि देशो के साथ—एक्सचेज मे अस्थिरता होते हुए भी—इगलैण्ड वडे पैमाने पर व्यापार कर चुका था, और जिन्होने यह उदाहरण पेश किए उनका पूछना था कि जव एक्सचेज की घटाबढी वहा वाधक नही हुई तव क्या कारण है कि सिर्फ भारतवर्ष मे होगी ? राली व्रदर्स नामक जगद्विख्यात कम्पनी के मालिक मि० स्टेफेन राली से कमेटी ने पूछा कि इधर रुपए की दर मे जो घटाबढी हुई है, उससे आपको अपने व्यापार मे कोई दिक्कत उठानी पडी है या नही ? मि० राली ने जवाव दिया कि नही, कोई भी नही। उन्होने वह तरीका भी बताया जो, व्यापारी लोग जोखिम से बचने के लिए काम मे लाते थे और आज भी लाते है। मान लीजिए, हमे दो महीने वाद कुछ डॉलरो की जरूरत पडेगी। एक्सचेज अस्थिर होने के कारण कोई नही कह सकता कि उस समय उन डॉलरो के लिए हमे कितने रुपए देने पडेगे। पर हम इस विषय मे निश्चिन्त हो जाना चाहते है। ऐसी अवस्था मे हम 'फारवर्ड' अर्थात आगे मिलनेवाले डॉलर आज ही बैंक से खरीद लेगें और समय आने पर उन्हे देकर भुगतान कर देगे। अगर बैंक से आगे के डॉलर मिलने मे दिक्कत हुई, तो हम सम्भवत यहा कुछ माल खरीद कर अमेरिका मे बेच देगे, जिससे हमे वहा समय पर डॉलर मिल जाय।

सच पूछा जाय तो मुद्रा या विनिमय का प्रश्न सरकार या उसके कर्मचारियो या व्यापारियो का प्रश्न न होकर इस देश की जनता का—यहा के करोडो किसानो का—प्रश्न था। इसे कसने की कसौटी यही थी कि चादी या एक्सचेज के गिरने से उस जनता का—उन करोडो किसानो का—लाभ हुआ है या हानि ? अगर किसान-जैसे उत्पादक उससे लाभान्वित हुए थे, तो इससे यह सिद्ध था कि चादी हमारे देश के लिए हितकर थी, और इसके सामने यह बात कोई महत्व पाने लायक नही थी कि अगरेज

कर्मचारी या व्यापारी उससे थोडी-बहुत हानि उठा चुके थे और उससे असन्तुष्ट थे ।

ऊपर कहा जा चुका है कि यूरोप मे दाम गिरते आ रहे थे । सोना महगा हो रहा था, इसलिए जो दाम सोने मे दिए जाते थे वे कम हो रहे थे । भारतवर्ष मे चादी न होती और चादी का बाजार इस तरह न गिरता तो यहा भी दामो की यही गति होती । इससे किसान या दूसरे उत्पादक बडे घाटे मे रहते । किसान को लगान या कर या सूद के रूप मे जो कुछ देना पडता है वह एक निश्चित रकम होती है । यह रकम वह देता है अपने गाढे पसीने की कमाई से—अपने खेत का अन्न या गल्ला बेचकर । इसका दाम जितना ही अधिक मिले, उसके हक मे उतना ही अच्छा । मान लीजिए कि जिस समय यूरोप मे दाम गिर रहे थे उस समय हमारे रुपए के विनिमय-मूल्य मे स्थिरता थी, तो उस हालत मे हमारे यहा भी दाम उसी हिसाब से गिरते और हमारे किसान बडे सकट मे पड जाते । पर हुआ यह कि चादी सस्ती हो चली—रुपए का विनिमय-मूल्य भी गिरता गया—और द्रव्य सस्ता होने का अर्थ है दामो का उठना, इसलिए दाम (सोने मे गिरने पर भी) यहा ऊपर उठे रहे । सोना महगा होकर हमारे किसानो पर आघात करने जा रहा था, पर चादी ने सस्ती होकर, और बीच मे पडकर, उनको बचा लिया । इगलैण्ड मे जिन्सो का दाम जहा १८६३ मे १०० था वहा गिरते-गिरते १८९३ मे ६१ रह गया था । भारत मे गल्ले का दाम जहा १८६३ मे १०० था वहा १८९३ मे १२९ था । अगर यहा चादी का रुपया न होता और इसका मूल्य न गिरता, तो यहा भी दाम ऊपर जाने के बजाय इगलैण्ड की तरह नीचे गिरते ।

विदेशी व्यापार के आकडे भी यही सिद्ध करते है कि चादी से हमारा लाभ ही हुआ ।

१८७३—७४

निर्यात (एक्सपोर्ट)	५४,९६,०७,८६० रु०
आयात (इम्पोर्ट)	३१,६२,८४,९७० रु०
आयात से निर्यात अधिक	२३,३३,२२,८९० रु०

१८९२—९३

निर्यात (एक्सपोर्ट)	१०६,५१,५१,९३० रु०
आयात (इम्पोर्ट)	६२,६१,८३,८३० रु०
आयात से निर्यात अधिक	४३,८९,६८,१०० रु०

भारतवर्ष मे इम्पोर्ट (आयात) एक्सपोर्ट (निर्यात) पर निर्भर करता है। जब किसान अपना गल्ला बेचकर ज्यादा रुपए पाते है तब वे विदेशी वस्तुओ पर भी ज्यादा खर्च करते है। एक्सचेज गिरते रहने से इम्पोर्ट बहुत कम हो जाना चाहिए था, पर असलियत मे यह प्राय. दूना हो गया। फिर भी करेसी ऐसोसियेशनवाले सन्तुष्ट नही थे, और यही कहते जाते थे कि व्यापार चौपट हो गया।

नीचा एक्सचेज भारतवर्ष के लिए लाभदायक है या नही ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कलकत्ते की मशहूर कम्पनी ऐण्ड्र यूल के मालिक मि० जॉर्ज यूल ने (जो इण्डियन नैशनल काग्रेस के चौथे अधिवेशन के प्रेसिडेट हुए थे) कहा था कि——

"हा यह अवश्य लाभदायक है। मै यह उत्तर गहरी समीक्षा-परीक्षा के बाद दे रहा हू।"

मि० यूल का कहना था कि ब्रिटिश पूजीपति यहा के उद्योग-धन्धो का गला घोट देना चाहते थे और इसी उद्देश से, भारत-सरकार के अगरेज कर्मचारियो को आगे खडा करके, सारा आन्दोलन चला रहे थे। इसमे खास हाथ लैकाशायरवालो का था, जो यहा की काटन-मिलो को नष्ट कर डालना चाहते थे। चादी के गिरने से इन मिलो को फायदा पहुचा था और इनकी तरक्की हुई थी। १८७६–७७ मे जहा ४७ काटन-मिले थी वहा १८९१–९२ मे १२७ हो चली थी। इस बीच मे स्पिण्डल (तकुए) १,१००,११२ से ३,२७२,९८८ और लूम (करघे) ९,१३९ से २४,६७० हो चले थे। यहा की काटन-मिले चीन के बाजार मे भी मैचेस्टर से प्रतियोगिता करने लगी थी और इसके व्यापार का काफी बडा हिस्सा उनके हाथ मे आ गया था। नीचे के आकडो को देखिए.—

इगलैण्ड से सूता चीन गया—

	कीमत पौड मे
१८९०	१,७९७,०००
१८९१	१,५०७,०००

भारतवर्ष से सूता चीन गया—

	कीमत पौड मे
१८९०	१७,५०७,०००
१८९१	१९,३९७,०००

१८७६-७७ मे भारतवर्ष से जहा ७,९२७,००० पौड सूता और १५,५४४,००० गज कपडा चीन गए थे वहा १८९१–९२ मे क्रमश १६१,२५३,००० पौड और ७३,३८४,००० गज गए।

जापान भी उस समय यहा की मिलो के सूते का बडा खरीदार था। यह सब मैचेस्टर के लिए असह्य था, इसलिए उसकी ओर से इस बात की भरपूर कोशिश हुई कि भारतवर्ष से चादी की मुद्रा उठा ली जाय और रुपए की एक्सचेज-दर उस समय जो ऊची-से-ऊची हो सकती थी, कर दी जाय। इस प्रकार एक्सचेज को ऊचा करने से चीन मे भारतवर्ष की क्या क्षति होनेवाली थी, यह बताते हुए शघाई की चीन-एसोसियेशन नामक सस्था ने हर्शेल कमेटी को लिखा था —

"इस समय भारतवर्ष की मिल जब २३,००० रुपए का सूता यहा बेचती है तब उसके १०,००० डॉलर होते है। चीनवाले १०,००० डॉलर इसलिए देते है कि वे इससे कम मे वैसा सूता स्वय तैयार नही कर सकते, पर अगर एक्सचेज की दर १८ पेस कर दी गई तो भारतवर्ष की मिल को तो पहले की ही तरह २३,००० रुपए मिलेगे, पर चीन के खरीदार को इसके लिए यहा १२,००० डॉलर देना पडेगा। बहुत सम्भव है कि सूता इतना महगा हो जाने पर चीनवाले अपनी ही मिले खोल ले और भारतवर्ष के लिए स्थिति यह हो जाय कि या तो वह अपना दाम नीचा करे, या इस व्यापार से हाथ धो बैठे।"

शघाई के अलावा और स्थानो ने भी---जैसे हागकाग और सीलोन ने---इस प्रस्ताव का विरोध किया कि भारतवर्ष से चादी की मुद्रा उठा ली जाय। उन देशो मे भी यहा का रुपया चलता था, और इसका मूल्य कृत्रिम हो जाने से वहा के उत्पादको की भी हानि थी। पर उनका आवेदन-निवेदन भी अरण्यरोदन ही रहा ।

३

सोने का ग्रहण

मूल्य मापने के लिए पहले चादी का रुपया काम मे लाया जाता था। स्वयसिद्ध मुद्रा होने के कारण, १६५ ग्रेन चादी की सोने मे जो कीमत होती, वही रुपए की कीमत थी। पर अब रुपए का वह स्वरूप न रहा। रुपया अब प्रतीक-मुद्रा कर दिया गया। वह सोने का प्रतिनिधित्व करने लगा। १६५ ग्रेन चादी की कीमत सोने मे चाहे जितनी कम हो, पर वह १६ पेस अर्थात् ७ ५३३४४ ग्रेन सोने का द्योतक हो गई।

"हर्ज क्या रुपया जो कागज का चला ? गम न खा—रोटी तो गेहू की रही।" पर सच पूछिए तो चादी का रुपया भी अब एक प्रकार का नोट ही था। साधारण नोट से उसमे फर्क था तो इतना ही कि यह नोट कागज का न होकर चादी का था। मूल्य अब दोनो का ही कृत्रिम था।

चादी की टकसाल बन्द हो जाने पर स्थिति यह थी —

(१) चादी अब स्वयसिद्ध मुद्रा या मूल्य-मापक नही रही।

(२) सरकार अपने को बचनवद्ध कर चुकी थी कि यह स्थान सोने को प्रदान किया जायगा।

(३) इस देश मे चलन सिर्फ प्रतीक-मुद्राओ का रह गया, जिनमे कागजी नोटो के साथ चादी के भी नोट थे।

(४) साधारणत चादी की ऐसी प्रतीक-मुद्रा कानूनन एक हद तक ही लेन-देन के काम मे लाई जा सकती है। उदाहरणार्थ, इगलैड मे शिलिग का सिक्का प्रतीक-मुद्रा का काम करता था, पर शिलिग मे एक पौड से ज्यादा देने-लेने को कोई भी कानूनन वाध्य नही था। पर यहा भारतवर्ष मे रुपए पर ऐसी कोई कैद नही लगाई गई—चाहे जितना देना-पावना हो, रुपए मे दिया-लिया जा सकता था।

(५) अभी तक चलन मे प्रत्यक्ष रूप से सोना नही आया था। टकसाल मे या सरकारी खजाने मे सॉवरेन १६ पेस की दर से लिए जा सकते थे। पर उन्हे देने-लेने को जनता कानूनन वाध्य नही थी।

(६) सरकार इस दर से (अर्थात् ७ ५३३४४ ग्रेन सोना = १ रुपया) सोने के बदले रुपए देने को तैयार थी, पर रुपए के बदले सोना देने को नही। रुपए का विनिमय-मूल्य १६ पेस बाध दिया गया था, इसलिए वह उससे ऊपर नही जा सकता था। जब ७ ५३३४४ ग्रेन सोना सरकार को देकर इससे एक रुपया लिया जा सकता था, तव कोई दूसरे को एक रुपए के लिए उससे अधिक सोना क्योकर देता ? पर चूकि सरकार ने रुपए के बदले सोना देने की कोई जिम्मेवारी नही ली थी, उसका विनिमय-मूल्य १६ पेस से नीचे गिर सकता था।

(७) विनिमय-मूल्य या एक्सचेज १६ पेस कर दिया गया था, पर स्थायी रूप से नही। हमारे शासक देखना यह चाहते थे कि ऊट किस करवट बैठता है। परिस्थिति अनुकूल हुई तो उनका इरादा उसको और भी ऊचा कर देने का था। मूल्य के मान के लिए अगरेजी मे 'स्टैण्डर्ड' शब्द व्यवहृत होता है। सोना स्टैण्डर्ड कर देने का अर्थ है इस वात की व्यवस्था करना कि लेन-देन के भुगतान के लिए लोगो को सोना मिल सके। पर इस समय यहा ऐसी कोई व्यवस्था नही थी। उधर चादी भी स्टैण्डर्ड की जगह नही रह गई थी। फिर यहा का स्टैण्डर्ड क्या था ? वास्तव मे इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नही था। सर जॉन लबक नामक एक प्रसिद्ध बैंकर थे, जो १८८६ वाले सोना-चादी कमीशन के मेम्बर रह चुके थे। उन्होने इस विषय मे अपनी राय जाहिर करते हुए कहा था कि यहा का तत्कालीन स्टैण्डर्ड 'एक्सचेज स्टैण्डर्ड' था। इसकी व्याख्या उन्होने इन शब्दो मे की थी —

"जब कभी कोई सरकार ऐसे नोट (वे चाहे कागज के हो, चाहे रुपए की तरह चादी के) जारी करती है जो कानूनन सोने से बदले नही जा सकते, और उसकी कीमत ठहराने की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेती है, तब, मेरी

समझ से, इस स्टैण्डर्ड को इससे अच्छा और कोई नाम न मिल सकने के कारण—'एक्सचेज स्टैण्डर्ड' कहना चाहिए।"

सर जॉन लवक इस प्रकार के स्टैण्डर्ड के विरोधी थे। उनकी खास आपत्ति यह थी कि इस प्रकार की व्यवस्था मे करेंसी का घटना या बढना प्राकृतिक रूप मे न होकर सरकार की मर्जी के मुताबिक हुआ करेगा, जो बड़ी भयकर वस्तु होगी।

चादी के पक्षपाती बराबर यह कहते आ रहे थे कि जो लोग सोना-सोना चिल्ला रहे है वे कपटी है और उनका उद्देश भारतवर्ष को सोना देना नही, बल्कि हुडी की दर को ऊचा करके रुपए को ही बराबर चलन मे रखना है। मिस्टर राली ने अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए कहा था कि "मेरा विश्वास है कि सोने के स्टैण्डर्ड के प्रश्न की आड या तह मे एक्स-चेज का प्रश्न है। अगर भारतवर्ष मे सोने का स्टैण्डर्ड हो चले तथा सोने और रुपए के बीच की एक्सचेज-दर काफी नीची हो, तो मै हर्गिज उस स्टैण्डर्ड का विरोध न करूगा।" अब धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि सचमुच हमारे साथ एक तरह की चाल चली गई थी—हमको सोने का स्टैण्डर्ड देने का वादा सचाई के साथ नही किया गया था। जो हर्शल कमेटी के मेम्बर रह चुके थे उनका भी सोने के सम्बन्ध मे अपना-अपना विचार था। १८९८ मे बयान देते हुए लॉर्ड फारर ने तो यह कहा कि "अगर मेरा विश्वास यह न होता कि हर्शल कमेटी की रिपोर्ट भारतवर्ष को सोने का स्टैण्डर्ड दिलायेगी तो मै उस पर कभी दस्तखत न करता।" उनका कहना था कि यहा अभी तक सोने का स्टैण्डर्ड स्थापित नही हुआ है। उधर मि० कर्टनी ने जो लॉर्ड फारर की तरह हर्शल कमेटी के मेम्बर रह चुके थे, फर्माया कि—नही, जब सरकार सर्वसाधारण से लगान या कर के भुगतान मे सोना लेने को तैयार है और रुपए की एक्सचेज-दर १६ पेंस हो चुकी है तब सम-झना चाहिए कि सोने का स्टैण्डर्ड स्थापित हो चुका। शुरू से ही यहा की मुद्रा-प्रणाली को ऐसा रूप दिया गया कि वास्तविकता आसानी से किसीकी समझ मे न आ सके और उसकी जटिलता की आड मे हमारे कर्ताधर्ता जो दस्तन्दाजी चाहे, कर सके। जिस रोज हर्शल कमेटी की रिपोर्ट तैयार

हुई थी उस रोज एक्सचेज की दर १४ ६२५ पेस थी। रिपोर्ट निकल जाने पर २७ जून को यह दर एक दिन के लिए १६ पेस हो गई पर वहा ठहर न सकी। १८९३-९४ मे औसत दर १४ ५४४ पेस रही। यह दर वाजार की हालत पर निर्भर करती है। ऐसा न होता तो सरकार विधान-मात्र से दर को और भी ऊचा कर सकती थी। सरकार ने कानून पास कर दिया कि वह दो शिलिग देनेवाले को एक रुपया देगी, पर वाजार की हालत ऐसी नही कि किसीको रुपए के लिए सरकार के पास जाना पडे, और दो शिलिग से कम मे ही रुपया मिल जाता है तो सरकार का कानून कानून ही रहेगा, वह दर चल न सकेगी। यह जरूर है कि सरकार अपनी नीति-रीति मे परिवर्तन कर वाजार की हालत वदल सकती है और वाजार को अपने पास आने के लिए मजवूर कर सकती है। पर यह अवस्था भी एक हद तक ही पैदा की जा सकती है।

दिसम्वर १८९३ मे काग्रेस का अधिवेशन लाहौर मे हुआ और उसमे यह प्रस्ताव पास हुआ कि—"भारत-सरकार ने आनन-फानन कानून पास करके सर्वसाधारण के लिए चादी की टकसाल का दरवाजा वन्द कर दिया। इसपर यह काग्रेस अत्यन्त खेद प्रकट करती है, कारण कि रुपए का मूल्य कृत्रिम और ऊचा करके जनता पर परोक्ष रूप से एक नया कर लगा दिया गया है और इस कार्रवाई से हमारे व्यापार और उद्योग-धन्धो को—खासकर कपडे की मिलो को—वडी हानि पहुची है।"

टकसाल वन्द हो जाने के वाद चादी के दाम और एक्सचेज की दर यह रही—

	चादी का औसत दाम	औसत एक्सचेज
	पेस	पेस
१८९४–९५	२८ १५/१६	१३ १०१
१८९५–९६	२९ ७/८	१३ ६३८
१८९६–९७	३० ३/४	१४ ४५१
१८९७–९८	२७ ६/१६	१५ ३५४
१८९८–९९	२६ १५/१६	१५ ९७८

जरूर वन्द थी, पर लोग सरकार को सोना देकर तो रुपया ले ही सकते थे, फिर वे ऐसा क्यो नही करते थे ? उत्तर यह है कि सोना लोग सरकार के पास तभी ले जाते जब और जगह बेचने मे अधिक लाभ न होता। जब तक एक्सचेज १६ पेस न हुआ , सोना वाजार मे सरकारी दर से महगा विकता रहा। सरकार तो ७५३३४४ ग्रेन सोने के वदले एक रुपया देती, पर इतने सोने का मूल्य वाजार मे एक रुपए से अधिक था। ऊपर कहा जा चुका है कि इगलैण्ड मे स्टैण्डर्ड सोने का था और पौड-शिलिग-पेस उस समय सोने के द्योतक थे। फिर, जव बाजार मे एक्सचेज १४ पेस होता तो उसका अर्थ यही था कि उतने सोने का मूल्य एक रुपया हुआ। अवश्य ही जव किसीको १४ पेस (सोना) वेच देने से ही एक रुपया मिल जाता है तब वह १६ पेस (सोना) देकर एक रुपया लेने को तैयार न होगा। यही कारण है कि इतने साल तक कोई अपना सोना ले जाकर सरकार से रुपए मागने न गया। इसी वात को दूसरी तरह यो कह सकते है कि इतने समय तक एक्सचेज-नीति सफल न हो सकी।

चादी की कहानी पूरी करने के लिए यहा अमेरिका की भी कुछ घटनाओ का उल्लेख आवश्यक है।

जब १८९३ मे भारत-सरकार ने अपनी टकसाल वन्द करके चादी की मुद्रा यहा से उठा ली तब अमेरिका ने शर्मन-विधान को मन्सूख करके वाजार मे चादी खरीदना वन्द कर दिया। इससे चादी और भी नीचे गिरी। दामो का यह हाल रहा—

	पेस—
१८९३	३५ ५/८
१८९४	२८ १३/१६
१८९५	२९ ७/८
१८९६	३० ३/४
१८९७	२७ ५/१६
१८९८	२६ १३/१६
१८९९	२७ ७/१६

१८९६ मे चादी अमेरिका मे एक वार फिर राजनैतिक आन्दोलन का मुख्य विपय बन बैठी। वहा के रिपब्लिकन चाहते थे कि इस विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की फिर चेष्टा की जाय। पर डिमॉक्रैट इसके विरोधी थे। उनकी माग थी कि अमेरिकन सरकार बिना औरो से किसी प्रकार का समझौता किए द्वैत मुद्रा-प्रणाली ग्रहण कर ले और सोने तथा चादी के बीच १ १६ का सम्बन्ध स्थापित कर दे। प्रेसिडेट के चुनाव मे जीत रिपब्लिकन पार्टी की रही और नए राष्ट्रपति ने दोनो धातुओ के बीच सम्बन्ध निश्चित करने के उद्देश से इगलैण्ड और फ्रास के साथ पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया। फ्रास की राय थी कि यह सम्बन्ध या अनुपात १ १५½ हो, पर यहा भारत-सरकार को यह मजूर न था। बाजार मे उस समय (१८९७) यह अनुपात १ ३४ २० था—अर्थात प्राय ३४ भाग चादी एक भाग सोने की बराबरी करती थी। फ्रास की बात स्वीकार करने का अर्थ होता चादी का मूल्य इतना अधिक कर देना कि १५॥ भाग चादी ही एक भाग सोने की बराबरी कर सके। साथ ही, इसका अर्थ होता रुपए के एक्सचेज को अत्यधिक ऊचा कर देना—जो भारत-सरकार की भी दृष्टि मे सर्वथा अनुचित था। अमेरिकन राष्ट्रपति के पत्रव्यवहार का कोई नतीजा नही निकला। इधर सोने के उत्पादन मे बडी वृद्धि होने लगी थी और सोना सस्ता होने लगा था। लोग थोडे ही समय मे चादी को भूल-से गए।

१८९८ मे भारत-सरकार ने एक प्रस्ताव भारत-सचिव के सामने रखा, जिसका उद्देश था कर्ज लेकर इगलैण्ड मे सोने का एक रिजर्व कायम करना और रुपए गला-गला कर चादी के रूप मे बेच देना। सरकार का कहना था कि चलन मे रुपया आवश्यकता से अधिक है और एक्सचेज को १६ पेस तक उठाने और वहा टिकाने के लिए इस आधिक्य या बाहुल्य को मिटा देना जरूरी है।

२९ अप्रैल को भारत-सचिव ने एक नई करेसी कमेटी नियुक्त करके उसे आदेश दिया कि वह सरकार के प्रस्ताव पर विचार करे। इस कमेटी के अध्यक्ष सर हेनरी फौलर थे, जो स्वय भारत-सचिव रह चुके थे। उसके दूसरे सदस्यो मे सर जॉन म्यूर, सर डेविड बार्बर, लॉर्ड बैलफर, मि०

कैम्पवेल आदि थे। अनुसन्धान के लिए जो क्षेत्र कमेटी को दिया गया था वह भारत-सरकार के प्रस्ताव तक ही परिमित नही था। भारत-सचिव के आदेशानुसार यह भारतीय मुद्रा-प्रणाली से सम्वन्ध रखनेवाली हर वात का अनुसन्धान कर सकती थी और उसपर अपनी राय दे सकती थी।

कमेटी के सामने मुख्य प्रश्न दो थे—

(१) यहा का मान या स्टैण्डर्ड सोना हो या चादी ?

(२) चादी और सोने के वीच सम्वन्ध क्या हो ?

वहुतेरे गवाहो ने इस वात पर जोर दिया कि १८९३ मे जो भूल हुई उसके सुधार के लिए यह आवश्यक है कि चादी अपनी पुरानी जगह पर फिर से स्थापित कर दी जाय। कुछ गवाह ऐसे भी थे, जो चादी को उसी हालत मे फिर से उसकी पुरानी जगह पर लाने के पक्षपाती थे, जव कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौता होकर दोनो धातुओ का सम्वन्ध सदा के लिए निश्चित हो जाय।

यह हुई चादी के पक्षपातियो की वात। सोने के पक्षपाती भी दो दलो मे विभक्त थे। एक दल चाहता था कि सोने का मान तो हो ही, साथ-साथ सोने के सिक्के भी चलन मे हो। दूसरा दल कहता था कि मान तो सोने का रहे पर यहा उसके सिक्के न चलाए जाय।

गवाहो मे इस वार दो भारतवासी थे—श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त, (काग्रेस के भावी प्रेसिडेण्ट) और वम्वई के पारसी व्यापारी मि० मेरवानजी रुस्तमजी। दोनो ने ही सरकार की नीति की कडी आलोचना की।

चादी के पक्षपातियो की दलील यह थी कि "उससे भारतवर्ष को काफी लाभ हुआ था, और ऐसी वस्तु का परित्याग हर्गिज न करना चाहिए था। १८९३ मे परिस्थिति और भी उपायो से काबू मे लाई जा सकती थी। इसके लिए मुद्रा-प्रणाली मे ऐसे उलट-फेर की कोई आवश्यकता नही थी। इस बीच मे यह अनुभव भी हो गया था कि इस क्षेत्र मे सरकार की दस्तन्दाजी से क्या-क्या अनर्थ हो सकते है। व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि समाज की आवश्यकताओ के अनुसार करेंसी (मुद्रा) की मात्रा स्वतः

घटती-बढती रहे। पर यह प्रबन्ध जब सरकार अपने हाथ मे ले लेती है तब यह घटना-बढना उसके इच्छानुकूल होने लगता है। फिर तो यह हो सकता है—जैसा कि यहा हो चुका था—कि रुपए की सख्त जरूरत है, और सरकार उसे देने से इनकार कर देती है, देश मे रुपए-पैसे का दुर्भिक्ष है, और सरकार कहती है कि नही, रुपए का बाहुल्य है, हम सिक्को को चलन से निकाल कर गलाने जा रहे है। पर करेंसी का स्वत घटना-बढना तभी हो सकता है जब टकसाल का दरवाजा सबके लिए खुला रहे, जिसको मुद्रा की आवश्यकता हुई, अपना सोना या चादी टकसाल मे ले गया और उसके सिक्के करा लिए। यहा भारतवर्ष मे सोने की ढलाई की आशा कम थी, इसलिए यह और भी आवश्यक था कि चादी की टकसाल फिर से खोल दी जाय। इससे सारी कृत्रिमता और तज्जनित दोष दूर हो जायगे।"

उस समय चादी का दाम २७ और २८ पेस के बीच था, पर चादी के पक्षपातियो का कहना था कि अगर टकसाल खोल दी गई और यहा चादी के सिक्के पूर्ववत् ढलने लगे तो बाजार शीघ्र ही ३० पेस हो चलेगा। इसका अर्थ होगा १२ पेस का रुपया। पर विपक्षी यह कहते कि इस बात की गारण्टी ही क्या है कि चादी या एक्सचेज इससे भी नीचे न गिरेगा? मि० राली ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था कि "ससार मे सभी कुछ सम्भव है, पर हम व्यापारी अनुभव से जानते है कि क्या सम्भव है, और क्या असम्भव। जहा व्यावहारिक बातो की चर्चा हो वहा ऐसे प्रश्न उठाने से क्या लाभ?" मि० डकन नामक दूसरे गवाह से भी यही प्रश्न किया गया और उनका उत्तर इस प्रकार था—"हमारे स्कॉटलैण्ड मे जब कभी कोई ऐसा सवाल करता है तब इसका जवाब एक लोकोक्ति के रूप मे दिया जाता है। वह लोकोक्ति यह है कि अगर आसमान गिर पडे तो गानेवाले पक्षियो के दम घुट जायगे। पर बावजूद इसके, वे पक्षी गाते ही जाते है।"

लॉर्ड ऐल्डनहम इगलैण्ड के प्रसिद्ध बैकर थे, और बैक आव् इगलैण्ड के गवर्नर रह चुके थे। इन्होने अपने बयान मे भारत-सरकार की कार्रवाई

की तीव्र आलोचना की और उसे 'जुर्म' तक बताया। लॉर्ड ऐल्डनहम द्वैत मुद्रा-प्रणाली के पक्षपाती थे और सोने-चादी का सम्बन्ध निश्चित करने के लिए चाहते थे कि फिर से अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के लिए प्रयत्न किया जाय।

मि० रॉबर्ट बार्कले नामक व्यवसायी भी ऐसा समझौता चाहते थे। उन्होने अपने इजहार मे कहा—

"मेरा विश्वास है कि भारत मे चादी की टकसाल का दरवाजा फिर से खोल देने का निश्चय होते ही कुछ ऐसी शक्तिया काम करने लगेंगी जो चादी के मूल्य को बढाये बिना न रहेगी। भारतीय टकसाल बन्द होने से पहले, चादी का दाम ३८ पेंस से कभी नीचे नही गिरा था, और ऐसे निश्चयमात्र से ही उस दाम में तेजी आ जायगी। चीन और अफ्रीका मे भी चादी के उपयोग के लिए बहुत बडा क्षेत्र है।"

सोने के पक्षपाती वही कहते जाते थे जो टकसाल बन्द होने से पहले बार-बार कह चुके थे—"चादी काफी चचल, डावाडोल, अस्थिर, अव्यवस्थित साबित हो चुकी है। एक्सचेंज को अपने साथ नीचे गिरा कर इसने उन सबको नुकसान पहुचाया है—और उनमें भारत-सरकार का नाम सबसे पहले लेने लायक है—जिन्हे रुपया विलायत भेजना पडता है।" पर इससे आगे सोने के सब पक्षपाती साथ जाने को तैयार न थे। कोई हमें सोना किसी रूप मे देना चाहता था, कोई किसी रूप मे। कुछ तो सोना नाममात्र को ही देनेवाले थे।

इन सबके सामने पहला सवाल यह था कि जो रुपए चलन मे थे और जो प्रतीक-मुद्रा बना दिए गए थे उनके बदले, जनता की माग होने पर, सरकार सोना देने को तैयार रहेगी या नही ? सर जॉन लबक का कहना था कि जब तक सरकार बदले मे सोना देने को तैयार नही होती तब तक सोने का मान या स्टैण्डर्ड सार्थक हो ही नही सकता। पर सोने के पक्षपातियो ने एक स्वर से यही कहा कि अगर सोने के स्टैण्डर्ड की प्रतिष्ठा के लिए यह आवश्यक हो तब तो 'न होगा बास न बजेगी बांसुरी'। रुपयो के बदले सरकार सोना देने को बाध्य न हो—इसी आधार पर सबने

अपनी-अपनी स्कीम पेश की। हा, अगर किसी साल भारत की देनदारी ज्यादा हुई और उसके लिए भुगतान मे सोना बाहर भेजना आवश्यक हो गया तो इन स्कीमो मे इस बात की प्राय व्यवस्था थी कि सरकार रुपए लेकर उस काम के लिए सोना दे।

आपस का मतभेद विशेषत इस बात पर था कि देश के भीतर चलन मे सोने के सिक्के रहे या नही। मि० मैकलियड, लॉर्ड नॉर्थब्रुक, सर सैम्युअल माण्टेग्यू, सर एडगर विन्स्टन—जैसे लोग इस बात के पक्ष मे थे। उनका कहना था कि जब तक सोने के सिक्के चलन मे न होगे, यहा की मुद्रा-प्रणाली पूर्णत स्वस्थ न हो सकेगी। सर एडगर विन्स्टेन मिस्र-सरकार के सलाहकार रह चुके थे। उनका कहना था कि "सिद्धान्तत यह सम्भव है कि सोने का मान या स्टैण्डर्ड बिना सोने के सिक्को के चलन के हो, पर यह अपवादस्वरूप है, और जिस मुद्रा-प्रणाली मे ऐसी व्यवस्था हो वह कभी उत्तम नही कही जा सकती। सोने के मान या स्टैण्डर्ड का आधार ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमे आवश्यकतानुसार सोना देश से बाहर बेरोक-टोक जा-आ सके और देश के भीतर भुगतान के लिए सोने के सिक्को का स्वच्छन्द व्यवहार हो सके। इस प्रकार की व्यवस्था उस व्यवस्था से अधिक प्रचलित और हितकर है, जिसमे लेन-देन के लिए केवल प्रतीक-मुद्रा काम मे लाई जाती हो। यह भी कहा जा सकता है कि जहा सोने का मान या स्टैण्डर्ड है, पर चलन मे सोना नही है, वहा सरकारद्वारा दस्तन्दाजी विशेष रूप से होगी। पर इस प्रकार की दस्तन्दाजी बहुत ही बुरी चीज है। जो भी मुद्रा-प्रणाली हो, वह स्वत काम करनेवाली होनी चाहिए और सरकारद्वारा हस्तक्षेप कुछ खास परिस्थितियो मे ही—और वहा भी कम-से-कम —होना चाहिए।" सोने के सिक्के के विरोधी यह कहा करते कि चलन मे सोना अधिक काल तक नही ठहर सकता—लोग उसे दबाकर बैठ जायगे। इसके उत्तर मे मि० मैकलियड का कहना था कि सोना इस देश के लिए कोई नई चीज नही थी। सोने के सिक्के यहा सदियो तक चल चुके थे। १८५३ से पहले जो सोने के सिक्के यहा चलन मे थे उनका तखमीना था बारह करोड़ पौंड। "नही, भारतवर्ष को सोने के

सिक्को का ऐसा लोभ या मोह नही है कि वह उन्हे चलन मे रहने ही न दे।"

सोने के सिक्के के विरोधियो मे बगाल-बैंक के कर्मचारी मि० लिण्डसे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह इस विषय पर वर्षो से लिखते आ रहे थे और जब फौलर कमेटी बैठी तब उसके सामने इन्होने एक स्कीम रखी, जो इनके नाम से मशहूर है। इनकी स्कीम सक्षेप मे यह थी —

"सोना मान या स्टैण्डर्ड कर दिया जाय, पर चलन मे सोने के सिक्के न हो। देश के भीतर रुपए और नोट करेन्सी का काम करे। लन्दन मे एक करोड पौड कर्ज लेकर एक रिजर्व (कोष) कायम किया जाय, जिसका नाम 'गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व' हो। रुपए की एक्स्चेज-दर, ऊपर और नीचे, दोनो ओर बाध दी जाय। जब किसीको रुपयो की जरूरत हो तब वह लन्दन मे सरकार को स्टर्लिंग दे और १६ १/१६ पेस की दर से यहा उससे रुपए ले ले। इसके विपरीत, जब किसीको विलायत मे स्टर्लिंग की जरूरत हो तब वह यहा रुपए देकर १५ ३/४ पेस की दर से वहा सरकार से स्टर्लिंग ले ले। १५,००० से कम किसीको रुपए न मिले और १,००० से कम किसीको स्टर्लिंग न मिले। अगर किसी समय स्टर्लिंग की माग इतनी अधिक हो कि रिजर्व खाली हो जाने का डर हो, तो उस हालत मे सरकार भारतवर्ष मे मिलनेवाले रुपयो को कुछ हद तक गला डाले और चादी को लन्दन भेज कर बेच दे और उसका स्टर्लिंग कर ले।"

इस स्कीम का खास उद्देश था भारतवर्ष मे करेन्सी के लिए सोने का व्यवहार न होने देना, और इसमे इस बात पर बहुत जोर दिया गया था कि सोने का जो रिजर्व हो वह लन्दन मे ही रहे। मि० लिण्डसे का कहना था कि लन्दन मे सोना रहने से ब्रिटिश साम्राज्य के आर्थिक केन्द्र की मजबूती बनी रहेगी, और वह रिजर्व को भारतवर्ष मे रखने के कट्टर विरोधी थे।

पर उस समय भारत-सरकार का मत और ही था। उसके अर्थ-सदस्य सर जेम्स वेस्टलैण्ड ने इस स्कीम की आलोचना करते हुए कहा कि "भारतवर्ष मे नई मुद्रा-प्रणाली की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि

सर्वसाधारण को उसपर पूरा विश्वास हो। और उस विश्वास-सम्पादन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सोने का रिजर्व इसी देश मे रखा जाय। अगर रिजर्व लन्दन में रखा गया, और लोगो का यह खयाल हो चला कि भारत-सचिव या व्यापारियो की माग पूरी करने मे यह कभी भी गायब हो सकता है तो विश्वास हर्गिज न जम सकेगा।" सर जेम्स वेस्टलैण्ड की एक टिप्पणी यह थी कि रिजर्व ६,००० मील दूर न रखकर भारतवर्ष मे रखा जाय तो उसकी मिकदार चाहे जो हो, वह हर हालत मे ज्यादा मुफीद साबित हो सकता है।

और लोगो ने भी इस स्कीम को आपत्तिजनक बताया और इसकी कडी आलोचना की। इसका सबसे बडा दोष यह बताया गया कि इसमे सरलता और स्वाभाविकता को तिलाजलि दे दी गई थी और सारी व्यवस्था जटिल-से-जटिल और कृत्रिम-से-कृत्रिम बना दी गई थी। प्राय सब कुछ सरकार के हाथ मे या उसकी मर्जी पर छोड दिया गया था, और विशेष ध्यान इस बात का रखा गया था कि सोना यथासम्भव लन्दन में ही केन्द्रीभूत रहे।

यद्यपि फौलर कमेटी ने यह स्कीम स्वीकार नही की तथापि हमारे शासको की कारसाजी से देश मे जो मुद्रा-प्रणाली प्रचलित हुई वह बहुत कुछ इसी स्कीम के अनुसार थी। इसीलिए इस विषय के इतिहास मे लिण्डसे-स्कीम को विशेष महत्व प्राप्त है।

कमेटी ने अपना निर्णय देते हुए पहले तो भारत-सरकार के प्रस्ताव को यह कह कर अस्वीकार्य बताया, कि इस बीच मे परिस्थिति बहुत कुछ बदल चुकी थी—एक्स्चेज १६ पेस तक पहुच गया था और स्थिर हो रहा था—अब वह समस्या नही रह गई थी—अगर रुपए चलन से निकाल लिए गए तो यहा मुद्रा-सम्बन्धी स्थिति भयकर हो जायगी और अगर उन रुपयो को गला कर बेच दिया गया तो चादी और भी नीचे गिर जायगी, जिससे चीन-जैसे चादी की मुद्रावाले देश और भारतवर्ष के बीच के एक्सचेज मे हलचल-सी उपस्थित हो जायगी।

चादी और सोने के बीच के प्रश्न पर कमेटी ने अपना फैसला चादी के

खिलाफ दिया और भारतवर्ष के लिए सोने को ही श्रेयस्कर बताया। "भारतवर्ष मे मूल्य का मान या मापक सोना ही होना चाहिए—चाहे वह सोने के सिक्को के साथ हो, चाहे सोने के रिजर्व या कोष के।"

पर कमेटी ने उन सब स्कीमो को त्याज्य ठहराया जिनमे बिना सोने के सिक्को के सोने का मान या स्टैण्डर्ड चलाने की बात थी। ऐसे सिक्के इस देश मे बहुत समय तक चल चुके थे, और इतिहास से इस आशका की पुष्टि नही होती थी कि जैसे छलनी से पानी बाहर निकल जाता है वैसे ही इस देश मे चलन से सोने के सिक्के निकल जायगे। कमेटी की सिफारिश यह थी —

"हम लोग इस बात के पक्ष मे है कि ब्रिटिश सॉवरेन या गिनी का भारतवर्ष मे भी चलन होने लगे और लोग उसे देने-लेने को बाध्य कर दिए जाय। साथ ही, ब्रिटिश टकसाल की ऑस्ट्रेलिया मे जो तीन शाखाए है उन्हे जिन शर्तो पर सोने के सिक्के (सॉवरेन) ढालने का अधिकार प्राप्त है उन्ही शर्तो पर भारतवर्ष की टकसालो को भी ऐसे सिक्के अबाधित रूप से ढालने दिया जाय। इसका फल यह होगा कि सब सॉवरेन समान होगे और उनका चलन ग्रेट-ब्रिटेन मे तथा भारतवर्ष मे, दोनो जगह, होने लगेगा।"

रुपयो के बारे मे कमेटी ने लिखा कि "स्वयसिद्ध मुद्रा सॉवरेन होगा, और रुपए प्रतीक-मुद्रा का काम करेगे। पर लेन-देन मे रुपयो का व्यवहार परिमित या नियन्त्रित करना सभव नही—इसलिए इस विषय मे प्रतीक-मुद्रा स्वयसिद्ध मुद्रा के ही समान होगी।" कमेटी ने अमेरिका के सयुक्त राज्य और फ्रास, इन दो देशो के उदाहरण देकर यह दिखाया कि वहा सोने का मान या स्टैण्डर्ड था, फिर भी चाहे जिस हद तक हो, लोग चादी के सिक्के लेने-देने को बाध्य थे। कमेटी की राय मे आवश्यकता केवल इस बात की थी कि रुपयो की तादाद जरूरत से ज्यादा न बढाई जाय, और उसकी सिफारिश थी कि जब तक चलन मे सोने का परिमाण अत्यधिक नही हो जाता तब तक और रुपए न ढाले जाय।

रुपयो के बदले भारत-सरकार सोना देने को बाध्य हो—ऐसी कोई सिफारिश कमेटी ने नही की।

एक्स्चेज की स्थायी दर के सम्बन्ध मे कमेटी ने अपना निर्णय १६ पेस के ही पक्ष मे दिया। उसकी खास दलील यह थी कि मौजूदा दर यही है और यह प्राय डेढ साल से कायम है। इसको बेदखल करके किसी भी दूसरी दर को इसकी जगह बिठाना—बने को बिगाडना, बसे को उजाडना और अनगिनत आदमियो के साथ अन्याय करना होगा।

टकसाल बन्द करके जो परिस्थिति पैदा कर दी गई थी उसमे सरकार १६ पेस ही क्यो, जो दर चाहती, कायम कर सकती और टिका सकती थी। सिक्को की ढलाई अब उसके हाथ की बात थी—उनकी तादाद या सख्या कम करके वह उनका मूल्य चाहे जितना ऊँचा कर सकती थी। सवाल सिर्फ यही था कि लोगो को अपनी यन्त्रणा के रूप मे इसका क्या दाम चुकाना पडेगा और इसमे कितना समय लगेगा ? कृत्रिम उपाय से किसी दर को कायम कर देना और फिर उसी दर की दुहाई देना—यह नीति-रीति हमारी सरकार और उसके तरफदारो को ही शोभा दे सकती थी। फौलर-कमेटी की नियुक्ति अप्रैल १८९८ मे हुई थी। उसने अपना काम इतनी ढिलाई से किया कि उसकी रिपोर्ट निकली जुलाई १८९९ मे। तब तक १६ पेस दर कायम हुए प्राय १८ महीने हो चुके थे। क्या इसमे भी सन्देह हो सकता है कि जानबूझ कर यह निर्णय इतने समय बाद किया गया, ताकि उस दर के पक्ष मे और कुछ नही तो इतना तो कहा जा सके, कि यह पौधा डेढ साल का हो चुका है, अब इसको उखाड कर इसकी जगह दूसरा पौधा लगाना जोखिम और खतरे का काम है ?

ऊपर कहा जा चुका है कि नए सिक्को की ढलाई बन्द करके और रुपए की कहतसाली पैदा करके ही सरकार ने उसकी कीमत १६ पेस तक पहुँचाई। कमेटी को इस सम्बन्ध मे जो साक्ष्य मिला वह उस भयकर स्थिति का सूचक था, जिसे सरकार की नीति ने यहा कुछ काल पहले पैदा कर दिया था।

बैंक-रेट १३ प्रतिशत तक पहुँच गई थी, पर व्यापारियो को २४ प्रतिशत पर भी रुपया उधार मिलना मुश्किल था। रुपए की ऐसी तगी लोगोके लिए बिलकुल नई बात थी। कलकत्ते की किलबर्न कम्पनी

के प्रतिनिधि ने अपने बयान मे कहा था—"इस समय किसी भी उद्योग-धधे के लिए रुपया उठाना असम्भव हो रहा है। सरकारी कागज पर कर्ज लेना चाहे तो मिलने का नही, क्योकि सराफ उस पर रुपया देने को तैयार नही है। अच्छी-से अच्छी कम्पनी के शेयर बेचना चाहे, तो शेयर बिकने के नही। जो कम्पनिया डिविडेण्ड देती आ रही है उनके भी शेयर बाजार मे बिक नही सकते। हम लोगो की एक स्टीम-बोट कम्पनी है, जो कई साल से आठ प्रतिशत मुनाफा देती आ रही है। पर अगर हम उसके ५०० शेयर भी बेचना चाहे तो नही बेच सकते। बाजार मे महीनो से रुपए की ऐसी तगी है कि कोई ऐसे शेयर या डिबेन्चर का भी खरीदार नही निकलता।"

रुपया इतना महगा हो जाने से चीजो के दाम गिरे थे और व्यापार मन्दा हो रहा था। श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त ने इस सम्बन्ध मे कमेटी का ध्यान अपने एक नोट की ओर आकर्षित करते हुए कहा था —"टकसाल बन्द हो जाने के बाद भारतवर्ष के प्राय प्रत्येक प्रान्त मे—पजाब, सयुक्त प्रान्त, बगाल, बम्बई, मद्रास, आसाम, और मध्य प्रान्त मे—गल्ले का दाम नीचे गिरना शुरु हुआ। . . मैने १८९३–९४ और १८९४–९५ को एक साथ लिया है, और मै देखता हूँ कि प्राय' सर्वत्र दाम गिर गए थे। मै इसका कारण यही बता सकता हूँ कि टकसाल बन्द हो जाने के बाद रुपया महगा हो चला। १८९२, १८९४ और १८९५ मे मै स्वय बगाल मे था (१८९३ मे मै बाहर था) और मै निजी अनुभव से कह सकता हूँ कि १८९४–९५ मे दाम गिरने का और कोई कारण नही हो सकता था। उस समय सयुक्त प्रान्त मे अकाल था, इसलिए गल्ले का दाम ऊँचा रहना चाहिए था। पर आप देखेगे कि प्राय हर जगह दाम नीचे ही रहे।"

इसी तरह नील और चाय के दाम नीचे गिर गए थे और इनकी काश्त की तरक्की रुक गई थी। बम्बई की कॉटन-मिलो की अवस्था शोचनीय हो रही थी। ६ अगस्त १८९८ के अक मे 'टाइम्स आफ इण्डिया' ने लिखा था—"परिस्थिति सुधरने के बजाय बिगडती जा रही है। ऐसा

बुरा समय तो न कभी देखा गया, न सुना गया। अधिकाश मिले घाटे से चल रही हैं—कुछ किसी तरह अपनी आय से अपना व्ययमात्र पूरा कर लेती हैं, बहुत कम मिले ऐसी हैं जो कुछ मुनाफे के साथ चल रही हो। मालूम नहीं, ऐसे दुष्काल का अन्त कब होनेवाला है।" वाणिज्य-व्यापार मे दारुण मन्दी छाई हुई थी और बडे-बडे व्यवसायियो को टाट उलट देना पडा था।

विदेशी व्यापार का हाल यह था कि जितना निर्यात (एक्सपोर्ट) होना चाहिए था, नही हो रहा था, और जो आयात (इम्पोर्ट) न होना चाहिए था, होने लगा था। एक्स्पोर्ट मे से इम्पोर्ट घटा देने पर जो बाकी बचता है वह एक्स्पोर्ट-सरप्लस (निर्यात का आधिक्य) कहाता है। एक्सचेज की दर का इस सरप्लस पर क्या असर पडता है वह नीचे के अको से स्पष्ट हो जायगा —

निर्यात का आधिक्य

साल	करोड रुपए	एक्स्चेज की रेट (पेंस)
१८९३–९४	१५	१४ ५४
१८९४–९५	३४	१३ १०
१८९५–९६	३२	१३ ६४
१८९६–९७	२०	१४.४५
१८९७–९८	११	१५ ४०

दर जितनी ही ऊँची, सरप्लस उतना ही नीचा—अर्थात् एक्स्पोर्ट उतना ही कम। अवश्य ही एक्सपोर्ट कम होने के कुछ और भी कारण थे—अकाल, भूकम्प, महामारी, सरहदी लडाई इत्यादि—पर सबमे प्रधान कारण एक्स्चेज ही था। जब यहा दाम ऊँचे होते हैं तब एक्स्पोर्टर को विदेश मे एक हद तक दाम घटा कर माल बेचने की गुजाइश रहती है। पर जब यहा दाम नीचे होते है तब यह गुजाइश नही के बराबर रह जाती है। चीन के व्यापार से भारतवर्ष को क्रमश हाथ धोना पडा। जब यहा का सूत वहा महँगा पडने लगा तब चीन मे ही कॉटन-मिले स्थापित होने लगी, और अन्त मे वह बाजार हमारे हाथ से निकल गया। उधर इम्पोर्ट को

एक्स्चेंज बढने से प्रोत्साहन मिला और यहा के उत्पादको की कठिनाई इससे और भी बढ गई। जर्मनी और ऑस्ट्रिया-हगरी से उन दिनो चुकन्दर की चीनी की बाजार मे बाढ-सी आ गई और देशी चीनी या गुड बनानेवालो को उससे काफी नुकसान पहुँचा। जो दूरदर्शी थे वे जानते थे कि इम्पोर्ट स्थायी रूप से तभी बढ सकता है, जब एक्स्पोर्ट की यथेष्ट उन्नति होती रहे। यही कारण है कि राली ब्रदर्स और ग्राहम कम्पनी–जैसे इम्पोर्टर भी नीचे एक्स्चेंज के पक्ष मे थे। मि० राली ने कहा था—"ग्राहम और हमारी फर्म बडे-से-बडे इम्पोर्टर हैं—बल्कि ग्राहम तो केवल इम्पोर्टर है—फिर भी वे चादी की टकसाल को खोल देने और एक्स्चेंज को नीचा रखने के पक्ष मे हैं।" मि० ग्राहम ने इसका समर्थन करते हुए कहा था—"चादी के और एक्स्चेंज के गिरने से स्वय मुझे नुकसान पहुँचा है। पर मेरा विश्वास है कि यह नुकसान थोडे समय के लिए है। लोग मुझसे पूछते हैं कि 'आप कपडे के इम्पोर्टर होते हुए चादी की टकसाल खोल देने के पक्ष मे कैसे हैं?' मै उत्तर देता हूँ कि यह प्रश्न एक्स्पोर्ट या इम्पोर्ट का नही, यह तो देश की भलाई का प्रश्न है। देश की उत्पादन-शक्ति बढ जाय तो एक्स्पोर्टर और इम्पोर्टर दोनो ही फायदे मे रहेगे। फर्क इतना ही है कि एक्स्पोर्टर फौरन फायदा उठा लेगा और इम्पोर्टर को—अर्थात् मुझे कुछ देर ठहरना पडेगा।"

१८९८ वाले काग्रेस के अधिवेशन मे एक प्रस्ताव पास हुआ, जिसमे कहा गया कि "एक्स्चेंज के गिरने से होनेवाली हानि का मूल कारण है इगलैण्ड मे भारत-सरकार के खर्च की उत्तरोत्तर वृद्धि।' और यह कि "अगर उस नुकसान को पूरा करने के लिए एक्स्चेंज को कृत्रिम ढग से ऊचा किया जाता है या चलन मे करेन्सी की कमी कर दी जाती है तो इससे भारतवर्ष की आर्थिक कठिनाई बढे बिना और उसकी व्यापारिक क्षति हुए बिना नही रह सकती।"

एक्सचेंज के प्रश्न पर कमेटी सर्वसम्मति से १६ पेस के पक्ष मे निर्णय न दे सकी। उसके दो मेम्बर सर जॉन म्यूर और मि० कैम्पबेल ने १५ पेस की सिफारिश की, और मि० हॉलैंड की राय यह ठहरी कि इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय अभी न किया जाय।

सर जॉन म्यूर और मि० कैम्बेल ने १६ पेस का विरोध करते हुए यह दिखाया कि यह दर कृत्रिम ढग से कायम की गई थी और इस देश के लिए हानिकर थी, इससे किसानो का वडा नुकसान था।

"यह सच है कि दर जितनी ऊची होगी, भारत-सरकार के लिए स्टर्लिंग उतना ही सस्ता होगा। पर पूछा जा सकता है कि सरकार को जो फायदा हुआ वह आखिर आया कहा से ? इस प्रश्न का उत्तर देना आसान काम है। सरकार को जो लाभ होता है वह वास्तव मे उस किसान की हानि है जिसे अब कम दाम मे ही अपना माल बेच देना पडता है।"

रुपए की असली कीमत तो १५ पेस से भी बहुत कम थी, इसलिए यह आक्षेप करना जा नहीं था कि उसकी सिफारिश करनेवाले रुपए की कीमत घटाकर उसे 'घटिया' कर देना चाहते थे। प्रत्युत १६ पेस कीमत बहुत ज्यादा थी, और उसके विरुद्ध बहुत कुछ कहा जा सकता था। कृत्रिम और ऊची दर की भयकरता को कम करने के उद्देश से इन दोनो मेम्बरो ने यह सिफारिश करना मुनासिब समझा कि वह १६ के बजाय १५ पेस कर दी जाय।

इधर चादी के पक्ष-विपक्ष की बाते हो रही थी, उधर सोने का उत्पादन वेग से वढ रहा था और सोने मे चीजो के दाम भी ऊँचे होने लगे थे। १८९८–९९ मे दाम ऊचे होने के कारण इस देश के माल की माग अच्छी रही और एक्सपोर्ट की उन्नति हुई। सोने के उत्पादन मे इस वृद्धि के कारण ससार के मुद्रासम्बन्धी इतिहास मे एक नए अध्याय का आरम्भ हो चुका था या होनेवाला था। भारतवर्ष मे भी अब दाम बढने लगे और कुछ समय बाद लोग १६ पेस के दोषो को भूल से गए और उसीको स्वाभाविक समझने लगे।

यहा भारत-सरकार के आय-व्यय के विषय मे कुछ कह देना आवश्यक है। लॉर्ड रिपन के जाने के बाद इस देश मे कई नए टैक्स लगाए गए, जिससे करदाता का बोझ बेहद भारी हो गया। १८८२–८५ मे सरकार प्रतिवर्ष कर के रूप मे जो कुछ ले चुकी थी उसको आधार मानकर स्वर्गीय गोखले ने अपनी एक स्पीच मे दिखाया था कि १८८५–९८ इन

१४ सालो मे सरकार ने जनता से १२० करोड अधिक लिया था। इसमे से ८० करोड तो फौजी खर्च मे चला गया था, और बाकी दूसरी मदो मे। शिक्षा के लिए इसमे से कुल एक करोड ही प्राप्त हुआ था ।

पहले सरकार की ओर से कहा जाता कि एक्सचेज गिरने से जो हानि होती है वह उसे टैक्स घटाने के प्रश्न पर विचार भी करने नही देती। जब एक्सचेज १६ पेस कर दिया गया और सरकार की वह गहन समस्या हल हो गई, तब लोगो को आशा होने लगी कि हमारा बोझ अब हलका कर दिया जायगा। पर उनका बोझ ज्यो-का-त्यो बना रहा और उनकी आशा निराशा मे परिणत हो गई। रुपए की कीमत जब १२ और १३ पेस के बीच थी तब सरकार को जितना खर्च पडता था उसमे—रुपए की कीमत १६ पेस होजाने पर—चार और पाच करोड के बीच की बचत होने लगी, पर इस बचत का कई साल तक जनता को कोई लाभ न पहुचा। अब सरकार की नीति यह हो चली कि आय से व्यय पूरा होना ही पर्याप्त नही कहा जा सकता—आय इतनी होनी चाहिए कि प्रतिवर्ष व्यय पूरा कर देने के बाद खासी बचत रहे । १९०१–०२ मे समाप्त होनेवाले पाच वर्षों मे यह बचत १२ २६ करोड रुपए रही। श्रीयुत गोखले का कहना था कि अगर युद्ध और अकाल के कारण व्यय मे वृद्धि न होती तो सरकार की आय उसकी आवश्यकता से प्रतिवर्ष प्राय ६॥। करोड रुपए अधिक होती।

इस विषय पर दूसरे अध्याय मे और भी प्रकाश डाला गया है ।

४

आड़ से शिकार

फौलर-कमेटी ने बहुमत से जो सिफारिशे की थी उन सबको भारत-सचिव ने मजूर कर लिया । उन्होने अपने वक्तव्य मे कहा कि—"इस रिपोर्ट के महत्व के अनुसार इस पर ब्रिटिश सरकार ने ध्यानपूर्वक विचार किया है । और इसमे जो तथ्य और जो युक्तिया पेश की गई है उन्हे सार-गर्भित मानती हुई वह इस नतीजे पर पहुची है कि इसके उसूल मान लिए जाय और वे अमल मे लाए जाय ।" पर इतना कह कर भारत-सचिव और उनके सलाहकारो ने रिपोर्ट को ताक पर रख दिया और उन उसूलो के ही खिलाफ काम करना शुरू कर दिया ।

उन्होने नई मुद्रा-प्रणाली के सगठन या रचना मे कानून से कम—बहुत कम—काम लिया और अपनी निरकुशता प्राय अक्षुण्ण रखी । जो कुछ करते रहे, हुक्मनामो या फरमानो के जरिए, जो उनके सुविधानुसार बदले जा सकते थे ।

इस समय मे कब कौन-सी घटना घटी, इसका एक सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

१८९९—एक ऐक्ट पास हुआ, जिससे लोग सॉवरेन या गिनी लेने-देने को बाध्य हो गए । दर रही १६ पेंस = एक रुपया ।

१८९९–१९०३—भारतीय टकसालो मे सॉवरेन ढालने के सम्बन्ध मे समझौते का जो प्रयत्न हो रहा था वह छोड दिया गया ।

१९००—रुपयो की ढलाई से जो मुनाफा होता उससे लन्दन मे गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व—सुवर्णनिधि या सुवर्ण-कोष—की रचना की गई ।

१९०४—भारत-सचिव की ओर से ऐलान किया गया कि १६$\frac{1}{8}$ पेंस की दर से वह चाहे जितने की हुडी भारत-सरकार पर बेचने को तैयार रहेगे ।

१९०५—नोटो की पुश्ती के लिए जो करेन्सी रिजर्व था उसकी ओर से कुछ सोना बैंक आव् इगलैण्ड मे रखा गया, और यह विधान भी बना कि उस रिजर्व का एक हिस्सा लन्दन मे कर्ज या उधार दिया जा सकेगा ।

१९०६—पहले यह व्यवस्था थी कि भारतवर्ष मे सोना देनेवाले को सरकार रुपए दे देती। अब यह व्यवस्था कर दी गई कि सिर्फ सोने के ब्रिटिश सिक्के देनेवाले रुपए पा सकेगे ।

१९०७—गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व की एक शाखा इस देश मे खोली गई, जिसमे रुपए रखे जा सकते थे ।

१९०८—कलकत्ते मे लन्दन पर १५$\frac{29}{32}$ पेंस की दर से हुडिया बेची गई और लन्दन मे गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व से उनका भुगतान किया गया।

१९१०—दस और पचास रुपए के नोट अखिल भारतीय कर दिए गए और यह विधान बना कि सोने के ब्रिटिश सिक्को के बदले नोट मिल सकेगे ।

१९११—सौ रुपए के नोट भी अखिल भारतीय कर दिए गए।

१९१३—भारतीय मुद्रा-प्रणाली की जाच के लिए एक शाही कमीशन नियुक्त हुआ।

अब फौलर-कमेटी की सिफारिशो को लेकर हम यह दिखाना चाहते है कि सरकारद्वारा स्वीकृत हो जाने पर भी वे कहा तक अमल मे लाई गई । सबसे पहले सोने के सिक्के की बात लीजिए ।

कमेटी ने सिफारिश की थी कि ब्रिटिश सॉवरेन लेने-देने को लोग बाध्य कर दिए जाय। १८९९ मे एक ऐक्ट के द्वारा यह विधान कर दिया गया। कमेटी की दूसरी सिफारिश यह थी कि जिन शर्तो पर ब्रिटिश शाही टकसाल ऑस्ट्रेलिया मे सॉवरेन की ढलाई होने देती है उन्ही शर्तो पर यहा भी होने दे। ब्रिटिश सरकार की ओर से या उसके अर्थ-विभाग की ओरसे इसका ऐसा विरोध हुआ कि यह सिफारिश सिफारिश ही रह गई। वास्तव मे वह विरोध जाहिरा तौर पर नही किया गया। पर तरह-तरह की जो आपत्तिया पेश की गई उनसे उनके असली भाव के सम्बन्ध मे कोई सन्देह नही रह सकता था।

पहले तो शाही टकसाल ने यहा ढलाई की व्यवस्थादि के विषय मे अडचने डाली, पर जब इनसे भी काम बनते न देखा तब अन्त मे ब्रिटिश अर्थ-विभाग ने यह कहना शुरू किया कि आखिर भारतवर्ष मे सॉवरेन ढालने की ऐसी जरूरत ही कौन सी है ? १८९९ से १९०३ तक पत्र-व्यवहार ही चलता रहा और अन्त मे भारत-सरकार ने हार मानकर यह प्रयत्न ही छोड दिया। हा, उसकी ओर से यह बराबर कहा जाता रहा कि हमारा लक्ष्य ज्यो-का-त्यो बना हुआ है और हम आशा करते है कि हम किसी-न-किसी दिन सोने का सिक्का यहा ढाल सकेगे। यहा यह कह देना आवश्यक है कि ब्रिटिश सरकार या ब्रिटिश शाही टकसाल को हमारे मार्ग मे रोडे अटकाने का अवसर इसलिए मिल गया कि हम ब्रिटिश सॉवरेन की ढलाई की इजाजत मागते थे। अगर हम अपना ही कोई सिक्का—जैसे मोहर या अशरफी—ढालने की बात करते, तो हमारे मार्ग मे वह कठिनाई उपस्थित न होती।

१९१२ मे सर विटठलदास ठाकरसी ने बडी व्यवस्थापिका सभा में इस आशय का एक प्रस्ताव पेश किया कि भारतीय टकसालो मे सोने के भारतीय सिक्के ढालने की व्यवस्था की जाय। उन्होने अपने भाषण मे कहा—

"इस विषय मे कभी कोई सन्देह नही रहा है कि हमारी मुद्रा नीति का लक्ष्य है सोने के सिक्के के साथ सोने का मान या स्टैण्डर्ड। ...... पर आज तक सोने के सिक्के की व्यवस्था न हो सकी। विलम्ब से इस देश को बडी हानि हो रही है और इस विषय की कठिनाई भी बढती जा रही है। कहा जाता है कि इस देश के लोग इतने गरीब है कि यहा सोने के सिक्के चलाना बुद्धिमता का काम नही। पर यह दलील लचर है। सोने के स्टैण्डर्ड के लिए जब यहा के लोग गरीब नही तब, सोने के सिक्के के लिए क्योकर हो सकते है ? इस समय तो यह अवस्था है कि हमारी सोने से जो भलाई हो सकती है, नही हो रही, पर जो बुराई हो सकती है वह हो रही है।"

श्रीयुत गोखले ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि मुद्रा-

प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिसका सचालन प्राकृतिक रीति से होता रहे—जिसमे सरकार का हस्तक्षेप या दखल नही के बराबर हो, और वह प्रणाली तभी हो सकती है जब फौलर-कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार उसका आधार सोना कर दिया जाय।

सरकार की ओर से कहा गया कि अवश्य ही सारे प्रश्न पर फिर से विचार करने की जरूरत है और हम इसे भारत-सचिव के सामने रखने जा रहे है। इसपर सर विट्ठल दास नें अपना प्रस्ताव वापस ले लिया।

भारत-सरकार ने भारत-सचिव को लिखा, और भारत-सचिव को फिर ब्रिटिश सरकार के अर्थ-विभाग का दरवाजा खटखटाना पडा। पर इसकी मनोवृत्ति या भाव मे कोई अन्तर नही पडा था। फिर वही किस्सा शुरू हुआ। कहा गया कि भारत-सरकार इस झमेले मे क्यो पडना चाहती है ? सॉवरेन ढालने के लिए हमारी देखरेख जरूरी है। अगर भारत-सरकार की टकसालो का प्रबन्ध हमने हाथ मे ले लिया तो यह असुविधाजनक होगा, और अगर सॉवरेन ढालने के लिए हमने अपनी शाखा वहा खोल दी तो इसमे खर्च बहुत ज्यादा पडेगा। भारत-सचिव की अपनी राय सोने के सिक्के के पक्ष मे नही थी पर भारत-सरकार का आग्रह देखकर उन्होंने लिखा कि ब्रिटिश अर्थ-विभाग की शर्तें आपको मजूर न हो तो मै यह इजाजत देने को तैयार हू कि आप दस रुपए की अपनी मोहर ढालना शुरू कर दे। भारत-सरकार इस पर राजी हो गई। पर भारत-सचिव ने लिखा कि कुछ भी करने से पहले सर्वसाधारण की राय दर्याफ्त कर लेना जरूरी है। भारत-सरकार को यह बुरा-सा लगा और उसनें जवाब दिया कि व्यवस्थापिका सभा मे, और उसके बाहर, इस विषय की कितनी ही बार आलोचना हो चुकी है और यह स्पष्ट हो चुका है कि यहा का लोकमत जोरो से इस प्रस्ताव का समर्थन करता है, बल्कि यहा तो यह पूछा जाता है कि जो इजाजत कनाडा और ऑस्ट्रेलिया को मिल चुकी है वह भारत को क्यो नही मिल रही है ? १४ फरवरी १९१३ को भारत-सचिव ने सूचित किया कि जो शाही कमीशन नियुक्त होने जा रहा है वह इस विषय का भी अनुसन्धान करेगा। भारत-सरकार अब और कर ही क्या सकती थी ? फौलर-कमेटी की जो सिफारिश

भारत-सचिव द्वारा स्वीकृत हो चुकी थी उसपर १४ साल बाद अब दूसरा कमीशन अपनी राय देने जा रहा था कि उसे अमल मे लाना कहा तक ठीक होगा ।

रुपए का वजन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, १८० ग्रेन (⅜ औस) होता है, जिसमे खालिस चादी इस समय १६५ ग्रेन थी। रुपए की नकली कीमत १६ पेस थी, और असली कीमत इससे बहुत कम। जब चादी का दाम लन्दन के बाजार मे २४ पेस होता तब सरकार को एक रुपया ढालने मे प्राय ९ १८१ पेस खर्च पडता। जब चादी का दाम ३२ पेस होता तब यह खर्च १२ २४१ पेस बैठता। असली और नकली कीमतो के बीच जो फर्क था उसे सरकार अपना मुनाफा समझती थी।

फौलर-कमेटी की सिफारिश थी—

"रुपयो की ढलाई से जो मुनाफा हो वह सरकार की साधारण आय मे शामिल न किया जाय। सोने मे उसका एक खास रिजर्व रखा जाय और यह रिजर्व पेपर करेन्सी रिजर्व या सरकारी रोकड से बिलकुल अलग हो।"

कमेटी की मन्शा यह थी कि यह रिजर्व सोने के रूप मे रखा जाय, और भारतवर्ष मे ही रखा जाय। पर भारत-सचिव के सलाहकारो ने सोने मे ऐसे कागज को भी शरीक बताया जिसका तबादला सोने से हो सकता था। भारत-सरकार के तत्कालीन अर्थ-सदस्य सर एडवर्ड लॉ भी इसी मत के थे। हा, लॉर्ड कर्जन स्वय अर्थ की ऐसी खैचातानी के विरुद्ध थे, और उन्होने भारत-सचिव को लिखा भी कि हमे कोई ऐसी कार्रवाई नही करनी चाहिए जिससे किसी प्रकार की गलतफहमी फैले या लोगो का विश्वास उठ जाय। पर भारत-सचिव ने उनकी एक न सुनी, और सरकार को आदेश दिया कि रुपयो की ढलाई से जो मुनाफा हो वह आप नियमित रूप से हमारे पास भेज दिया करे। इस प्रकार गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व की स्थापना लन्दन मे हुई। और उसमे सोने के अलावा स्टर्लिंग कागज भी रहने लगे।

१९१३ वाले शाही कमीशन ने कई गवाहो से इस विषय पर प्रश्न किए, और यह जानना चाहा कि सोने से फौलर-कमेटी का सचमुच अभिप्राय

गया था। ऐसे गवाहो मे मि० मार्चेण्ट, मि० कोल और मि० रास के नाम उल्लेखनीय है। मि० मार्चेण्ट स्वय फौलर-कमेटी के सदस्य रह चुके थे। उन्होने कहा कि "अब इस विषय मे लोगो के विचार बदल गए है और मै स्वय सोने की जगह स्टर्लिंग के व्यवहार का समर्थन करूगा। पर जिस समय की यह बात है उस समय तो सोने से अभिप्राय वास्तविक सोने से ही था।" मि० कोल बैंक आव् इगलैण्ड के गवर्नर रह चुके थे। उन्होने भी कहा कि प्रारम्भ मे यही विचार था कि सारा-का-सारा रिजर्व सोने मे रखा जाय। मि० रास बगाल चेम्बर के प्रतिनिधि-स्वरूप गवाही देने गए थे। उनका वक्तव्य यह था—

"फॉलर-कमेटी की रिपोर्ट की भाषा बहुत स्पष्ट है। उसकी सिफारिश थी कि यह रिजर्व पेपर करेन्सी रिजर्व या सरकारी रोकड से बिलकुल अलग रखा जाय। इसका अर्थ यही हो सकता है कि रिजर्व इसी देश मे रहनेवाला था। इगलैण्ड मे रखने की मन्शा होती तो यह क्यो लिखा जाता कि 'पेपर करेन्सी रिजर्व और सरकारी रोकड से बिलकुल अलग?' वहा तो योही यह रिजर्व अलग रहता। रिजर्व मे खाली सोना रहे या नही, इस सम्बन्ध मे मैं कमेटी की इस सिफारिश को निर्णयात्मक समझता हू— 'एक्सचेज का रुख गिरने की ओर हो तो सरकार अपने पास के सोने का कुछ हिस्सा विलायत भेज दे।' मै तो इसका अर्थ यही लगा सकता हू कि जब सरकार के पास इस देश मे सोना हो तब वह उसे विलायत जाने दे। फिर कमेटी की दूसरी सिफारिश यह थी कि जब सरकार के पास रिजर्व मे काफी सोना हो जाय और उसके खजाने मे भी सोना हो, तब वह भारतवर्ष मे अपनी देनदारी सोने मे चुका सकती है।"

अर्थ का अनर्थ कर—सत्य और न्याय की हत्या कर—भारत-सचिव ने इस देश का सोना विलायत मगाना और उसका मनमाना उपयोग करना शुरू कर दिया। इस धीगाधीगी ने भारत-सरकार को भी हैरान कर दिया।

१९०७ मे लॉर्ड इचकेप की अध्यक्षता मे एक कमेटी इस देश मे रेलो की उन्नति के लिए रुपए जुटाने के प्रश्न पर विचार करने के लिए बैठी।

इसकी सिफारिश हुई कि उस साल रुपयो की ढलाई के मुनाफे* का डेढ करोड रुपया रेलो के सुधार मे लगा दिया जाय। पर भारत-सचिव इससे भी दो कदम आगे गए और उन्होने निश्चय किया कि जब तक गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व ३० करोड रुपए का नही हो जाता तब तक हर साल मुनाफे की आधी रकम रेलो मे लगती रहे। उनका विचार शायद यह था कि रिजर्व ३० करोड हो जाने पर सारी रकम उस काम मे लगा दी जाय। भारतवर्ष मे उनके इस निर्णय से बडा असन्तोष फैला और इसका काफी विरोध किया गया।

भारत-सरकार ने भी २४ जून १९०७ को तार-द्वारा निवेदन किया कि रिजर्व का सोना अभी ऐसे काम मे न लगाया जाय, पर भारत-सचिव ने उसपर कुछ भी ध्यान नही दिया और डेढ करोड से ऊपर रुपया रेलो मे लगा ही दिया। साथ ही यह कहा कि जो निर्णय हो चुका है उसीके अनुसार आगे भी उपयोग होता रहेगा।

भारत-सरकार ने एक्स्चेंज के गिरने की आशका प्रकट करते हुए कहा था कि रिजर्व को ऐसी परिस्थिति के लिए अक्षुण्ण रखा जाय। इसके उत्तर मे भारत-सचिव ने लिखा था कि "डरने की कोई बात नही, व्यापार की वर्तमान अवस्था और अपने पास के साधनो को देखते हुए मै इस आशका को निर्मूल समझता हूँ।"

पर जो आसमान इतना साफ नजर आता था उसीमे घनघोर घटा को उमडते देर न लगी। १९०७ मे यहा अनावृष्टि रही। कुछ महीने बाद अमेरिका मे एक भीषण आर्थिक सकट उपस्थित हो गया। यहा से एक्स्पोर्ट बहुत कम हुआ। माग इस समय रुपए की नही, स्टर्लिग की थी, क्योकि

---

* दर असल यह कोई मुनाफा नही था। जैसे कागज के नोटो की पुश्ती के लिए करेन्सी रिजर्व था, वैसे ही चादी के नोटो की पुश्ती के लिए गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व। रुपया अपनी नकली कीमत का कुछ हिस्सा अपने साथ लिए चलता था, पर बाकी कीमत की पुश्ती के लिए रिजर्व में सोना रखना जरूरी था।

कई कारणो से लोग यहा से रुपया विलायत भेज रहे थे। एक्सचेज गिरने लगा, फिर भी रुपए के बदले सरकार न सोना देने को तैयार थी, न स्टर्लिंग। बहुत कुछ आन्दोलन के बाद वह स्टर्लिंग देने को तैयार हुई और भारत-सचिव पर उलटी हुण्डी बेचने लगी। एक्सचेज तब तक गिर कर १५$\frac{१}{१६}$ पेंस हो चुका था। अब वह ऊपर उठने लगा। सरकार फिर एक्सचेज के लिए सोना देने को भी तैयार हो गई। सितम्बर १९०८ तक परिस्थिति सुधर चुकी थी, इसलिए अब सरकार ने स्टर्लिंग बेचना बन्द कर दिया। इस सकट के कारण विलायत मे गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व से ८,०५८,००० पौड [१ पौड = १५ रुपया] उठाना पडा। जिस मुद्रा-प्रणाली की फौलर-कमेटी ने सिफारिश की थी, अगर वह होती तो ज्योही एक्सचेज एक हद से नीचे गिरता, लोगो को रिजर्व से सोना मिलने लगता और वे उसे विलायत भेज-कर अपना देना चुकाने लगते। लेहाजा एक्स्चेज एक हद से नीचे न गिरता। पर जो मुद्रा-प्रणाली यहा प्रचलित थी उसमे ऐसा कोई विधान नही था। सोना या स्टर्लिंग देना-न-देना सरकार की मर्जी की बात थी। यह भी ध्यान मे रखने की बात है कि गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व के पैसे से विलायत मे स्टर्लिंग कागज खरीद कर रिजर्व मे रख दिए गए थे। जब स्टर्लिंग की माग होने लगी तब भारत-सचिव ने कुछ समय तक उसको पूरा नही किया। बाजार की हालत खराब थी। भारत-सचिव को डर लगा कि बडे परिमाण मे कागज बेचने निकले तो मालूम नही दाम कहा तक गिर पडेगे।

१ अप्रैल १९०९ को भारत-सरकार ने फिर भारत-सचिव को लिखा कि रुपयो की ढलाई का मुनाफा पूरा-का-पूरा रिजर्व मे रखा जाय और इसका काफी बडा हिस्सा सोने मे रहे। उनके उस पत्र से कुछ अवतरण यहा देने लायक है —

"रेल की उन्नति हम भी देखना चाहते है, पर हमारा विश्वास है कि देश की भलाई की दृष्टि से उसकी मुद्रा-प्रणाली की मजबूती इस उन्नति से कही ज्यादा जरूरी है।

"जिस समय रिजर्व की सृष्टि हुई, लॉर्ड कर्जन की सरकार की इच्छा थी कि यह सोने के रूप मे यही रखा जाय। आपके पूर्ववर्ती भारत-सचिव

उस समय गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व-सम्बन्धी नीति यह थी कि जब यह २५,०००,००० पौंड हो जाय तब इस विषय पर फिर से विचार हो कि रुपयो की ढलाई का मुनाफा और सूद से होनेवाली आमदनी सब-की-सब इस रिजर्व मे जमा की जाय या नही।

३१ मार्च १९१३ को पेपर करेन्सी रिजर्व का यह हाल था कि चलन मे कुल नोट ६८ ९७ करोड रुपए के थे। इनकी पुश्ती के लिए रिजर्व मे ये चीजे थी —

भारतवर्ष मे रुपए	१६ ४५	करोड रुपए
" सोना	२९ ३७	" "
लन्दन मे सोना	९ १५	" "
लन्दन मे सिक्यूरिटीज	४ ००	" "
भारतवर्ष मे "	१०.००	" "
	६८ ९७	करोड रुपए

१८६२ मे चलन मे कुल नोट ३ ६९ करोड थे। १८९० मे यह तादाद १५ ७७ करोड हो चली थी। नोटो के प्रचार मे विशेष वृद्धि चादी की टकसाल बन्द हो जाने के बाद हुई। इधर उनकी लोकप्रियता बढाने के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले विधान मे कई सशोधन हुए।

१८७५ से पहले रिजर्व मे कुछ सोना रहता था, पर चादी के मुकाबले जब सोना महगा हो चला तब उसका रिजर्व मे आना बन्द हो गया। १८९३ मे सोने और रुपए के बीच की दर बाधी गई और सरकार सोने के बदले रुपए देने को तैयार हुई। पर चूकि सोने की कीमत बाजार मे ज्यादा थी, कोई रुपए लेने के लिए सरकार के पास अपना सोना न ले जाता था। १८९८ मे जब एक्सचेज १६ पेस हो गया तब लोग सरकार को सोना देकर उससे रुपए लेने लगे। करेन्सी रिजर्व मे इस प्रकार सोना इकट्ठा होने लगा। १९०० के आरम्भ मे प्राय ७॥ करोड रुपए का सोना वहा इकट्ठा हो चुका था।

भारत-सचिव के निर्णय के आगे भारत-सरकार ने सिर झुकाया, पर इतना कहे बिना उससे न रहा गया कि "आपका यह निर्णय हम खेद के साथ स्वीकार करते है।" भारत-सचिव ने केवल १,०००,००० पौड सोने के रूप मे रखना मजूर किया था।

१९०६ मे गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व की एक शाखा इस देश मे खोली गई जिसम छ करोड रुपए रखने की व्यवस्था की गई। यह कुछ ऊटपटाग-सी बात थी कि जिसका नाम 'स्वर्णनिधि' हो उसमे रुपए रखे जाय। पर भारत-सचिव यहा भी एक चाल चल रहे थे। करेन्सी रिजर्व मे यह कानूनी व्यवस्था थी कि लन्दन मे एक हद से ज्यादा रकम सोने मे ही रखी जा सकती थी। मान लीजिए कि रुपयो की माग हुई और लन्दन मे भारत-सचिव को सोना मिला। अगर ये रुपए करेन्सी रिजर्व से दिए गए तो वह सोना उसी रिजर्व की सम्पत्ति हुई, और भारत-सचिव को उस सोने के साथ मनमानी करने का अधिकार नही था। पर गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व मे कानून का कोई ऐसा नियन्त्रण नही था, भारत-सचिव जो चाहते, कर सकते थे। इसलिए इस रिजर्व की यह शाखा उनके सुभीते के लिए खोली गई। छ करोड रुपए तक इस शाखा से यहा दिए जा सकते थे, और इनके बदले विलायत मे जो सोना मिलता उसका भारत-सचिव जिस प्रकार चाहते, उपयोग कर सकते थे।

३१ मार्च १९१३ को गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व इस रूप मे था —

	पौड
सिक्यूरिटीज या कागज (बाजार दर से)	१५,९४५,६६९
रकम, जो थोडे समय के लिए उधार दी गई थी	१,००५,६६४
	१६,९५१,३३३
बैंक ऑव् इगलैण्ड मे रखा हुआ सोना	१,६२०,०००
	१८,५७१,३३३
भारतीय शाखा मे छ करोड रुपए, १६ पेंस की दर से	४,०००,०००
	२२,५७१,३३३ पौंड

उस समय गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व-सम्बन्धी नीति यह थी कि जब यह २५,०००,००० पौंड हो जाय तब इस विषय पर फिर से विचार हो कि रुपयो की ढलाई का मुनाफा और सूद से होनेवाली आमदनी सब-की-सब इस रिजर्व मे जमा की जाय या नही।

३१ मार्च १९१३ को पेपर करेन्सी रिजर्व का यह हाल था कि चलन मे कुल नोट ६८ ९७ करोड रुपए के थे। इनकी पुश्ती के लिए रिजर्व मे ये चीजे थी —

भारतवर्ष मे रुपए	१६ ४५	करोड	रुपए
" सोना	२९ ३७	"	"
लन्दन मे सोना	९ १५	"	"
लन्दन मे सिक्यूरिटीज	४ ००	"	"
भारतवर्ष मे "	१०.००	"	"
	६८ ९७	करोड	रुपए

१८६२ में चलन मे कुल नोट ३ ६९ करोड थे। १८९० मे यह तादाद १५ ७७ करोड हो चली थी। नोटो के प्रचार मे विशेष वृद्धि चादी की टकसाल बन्द हो जाने के बाद हुई। इधर उनकी लोकप्रियता बढाने के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले विधान मे कई सशोधन हुए।

१८७५ से पहले रिजर्व मे कुछ सोना रहता था, पर चादी के मुकाबले जब सोना महगा हो चला तब उसका रिजर्व मे आना बन्द हो गया। १८९३ मे सोने और रुपए के बीच की दर बाधी गई और सरकार सोने के बदले रुपए देने को तैयार हुई। पर चूकि सोने की कीमत बाजार मे ज्यादा थी, कोई रुपए लेने के लिए सरकार के पास अपना सोना न ले जाता था। १८९८ मे जब एक्सचेज १६ पेंस हो गया तब लोग सरकार को सोना देकर उससे रुपए लेने लगे। करेन्सी रिजर्व मे इस प्रकार सोना इकट्ठा होने लगा। १९०० के आरम्भ मे प्राय ७॥ करोड रुपए का सोना वहा इकट्ठा हो चुका था।

सोने को चलन मे लाने के लिए कुछ प्रयत्न किया गया, पर वह विशेष सफल न हो सका। उस समय भारतवर्ष के कुछ हिस्सो मे अकाल पडा हुआ था और आर्थिक अवस्था सोने के चलन के अनुकूल नही थी। पर जब सोना चलन से लौट कर सरकारी खजाने मे आने लगा तब भारतवर्ष मे उसके चलन के विरोधी इसका यह अर्थ लगाने लगे कि यहा के लोग गरीब होने के कारण सोने का व्यवहार नही कर सकते, उनके लिए रुपया ही विशेष उपयुक्त है, इत्यादि। वास्तव मे उस साल यहा की अवस्था सोने के चलन के प्रतिकूल थी। इसके बाद फिर कभी सरकार की ओर से सोने को चलन मे लाने के लिए कोई खास उद्योग नही किया गया।

आरम्भ मे करेन्सी रिजर्व का सारा सोना इसी देश मे रहता था। १८९८ मे अस्थायी रूप से कुछ सोना लन्दन मे रखा गया। पर यह व्यवस्था कुछ ही समय बाद स्थायी कर दी गई। कारण यह बताया गया कि वहा चादी खरीदने के लिए सोना रखना जरूरी था। बाद मे यह विधान बना कि करेन्सी रिजर्व का सोना सरकार, लन्दन मे या इस देश मे, जहा चाहे, रख सकती थी। भारत-सचिव इस रिजर्व का भी काफी सोना लन्दन मे रखने लगे।

१९०५ के विधानद्वारा सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह करेन्सी रिजर्व का एक निश्चित भाग स्टर्लिंग सिक्यूरिटीज मे रख सकती है। पहले इसकी हद दो करोड रुपए थी। १९११ मे वह चार करोड कर दी गई। सारा हिस्सा, जो सिक्यूरिटीज मे यहा और लन्दन मे रखा जा सकता था, १४ करोड था।

गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व और करेन्सी रिजर्व के अलावा भी सरकार के हाथ मे कुछ रुपए रहते थे, जिसे सरकारी रोकड कहते थे। यह रोकड भारतवर्ष और लन्दन, दोनो जगह रखी जाती थी।

व्यवस्था यह थी कि लन्दन मे कम-से-कम ४,०००,००० पौड रहे और भारतवर्ष मे कम-से-कम ८,०००,००० पौड। नए साल के आरम्भ मे भारतवर्ष मे प्राय १२,०००,००० पौड रखना पडता था, अर्थात् सब

मिला कर १६,०००,००० पौण्ड। वास्तव मे कब कहा कितनी रोकड थी, यह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा —

३१ मार्च	लन्दन मे पौड	भारतवर्ष मे पौड	कुल जोड पौड
१९०८	४,६०७,२६६	१२,८५१,४१३	१७,४५८,६७९
१९०९	७,९८३,८९८	१०,२३५,४८३	१८,२१९,३८१
१९१०	१२,७९९,०९४	१२,२९५,४२८	२५,०७४,५२२
१९११	१६,६९६,९९०	१३,५६६,९२२	३०,२६३,९१२
१९१२	१८,३९०,०१३	१२,२७९,६८९	३०,६६९,७०२

स्पष्ट है कि रोकड बाकी जितनी होनी चाहिए थी उससे कही ज्यादा थी, और इसका कारण यह था कि लन्दन का हिस्सा बढते-बढते प्राय तिगुना होने लगा था। जहा ४,०००,००० पौड पर्याप्त था वहा १८,०००,००० पौड से भी अधिक जमा रहता था।

आखिर इतना रुपया आता कहा से था? इसका उत्तर है—बजट की बचत से। हर साल व्यय से आय अधिक होती, और जो बचत होती वह लन्दन मगा ली जाती।

१८९८-९९ से बचत होना शुरू हुआ था, और प्रथम महासमर के आरम्भ तक होता ही गया। पहले दस वर्षो मे जो बचत हुई वह ३७½ करोड रुपए थी। १९१० और १९१४ के बीच २० करोड की और बचत रही। यह भारत-सरकार के बजट की बात है। प्रातीय सरकारो की बचत इसमे शामिल नही है।

श्रीयुत गोखले के बजट-सम्बन्धी भाषणो मे सरकार की इसलिए काफी निन्दा मिलती है कि वह हर साल टैक्स के रूप मे जरूरत से ज्यादा लोगो से वसूल करती, और अन्धाधुन्ध खर्च करने के बाद जो कुछ बच रहता उसे शिक्षा और स्वास्थ्य-सम्बन्धी कामो मे न लगा कर और कामो मे लगा देती। बजट बनाते समय आय का तखमीना जानबूझ कर कम किया जाता। खर्च पर किसी प्रकार का नियत्रण था ही नही। यूरोपियन कर्मचारियो की सख्या बढती ही जाती थी, पर यह सब होने पर भी जब बचत होती और सरकार से उसका कुछ हिस्सा शिक्षा-प्रचार या स्वास्थ्य-सुधार जैसे

कामो के लिए मागा जाता, तब उत्तर मिलता कि इसमे से कुछ भी मिलना असम्भव है !

श्रीयुत गोखले ने अपने एक भाषण मे दिखाया था कि १८९८-९९ और १९०८-०९ के बीच भारत-सरकार का खर्च—समान की तुलना समान से करने पर—बीस करोड रुपए बढ गया था। इस बीच मे कुछ टैक्स माफ कर दिए गए थे सही, पर उसका असली कारण यह था कि एक्सचेज ऊचा होने के कारण विलायत जानेवाली रकम मे काफी बचत होने लगी थी। ५ मार्च १९१० को श्रीयुत गोखले का बडी व्यवस्थापिका सभा मे एक भाषण हुआ, जिसमे उन्होने कहा —

"प्राय छ साल से मै लगातार कोशिश करता आ रहा हू कि सरकार को जो बचत होती है वह प्रातीय सरकारो को सफाई-जैसे काम पर खर्च करने के लिए दे दी जाय। दो साल की बात है कि तत्कालीन अर्थ-सदस्य सर एडवर्ड बेकर ने म्यूनिसिपैलिटियो द्वारा सफाई पर खर्च होने के लिए करीब पचास लाख रुपए दिए थे। मेरी सारी अपीलो का कोई नतीजा निकला तो वही ! उसको छोड दे तो कहना होगा कि मेरा प्रयत्न निष्फल रहा।"

सरकार का कहना था कि भारतवर्ष-जैसे देश मे आय-व्यय का तखमीना बहुत कठिन काम है—हमे बडी सावधानी से काम लेना पडता है, इस सावधानी के कारण अगर बचत रह जाती है तो हम इसके लिए अपराधी नही ठहराए जा सकते, पर उस बचत का उपयोग सबसे पहले कर्ज घटाने के लिए होना मुनासिब है। कर्ज लेने-देने का काम विलायत मे पडता, इसलिए यह रकम भी वही भेज दी जाती। अगर कुछ समय के लिए इसकी आवश्यकता नही भी हुई, तो कहा जाता कि इसे व्यापारियो को उधार देकर कुछ ब्याज उपजाया जा सकेगा।

लन्दन मे भारत-सचिव का रुपया बैक आव् इगलैड मे जमा रहता था। वह इस बैक मे कम-से-कम पाच लाख पौंड बराबर रखने को बाध्य थे। असलियत मे वह रखते इससे ज्यादा थे। इस रुपए पर वह कुछ भी ब्याज पाने के हकदार नही थे। पर यह बैक, इडिया ऑफिस (भारत-सचिव
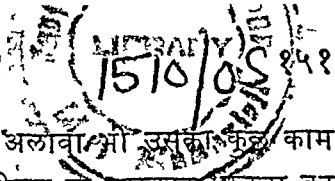
का विभाग) का रुपया-पैसा जमा रखने के अलावा और उसका कुछ काम कर दिया करती—इसके लिए इसे जो कमीशन या पुरस्कार मिलता वह साल मे ६६,००० पौड होता था। सब मिला कर इस बैंक को इडिया ऑफिस से साल मे प्राय ८६,००० पौड अर्थात १२,९०,००० रुपए का लाभ था। चेम्बरलेन-कमीशन के सामने इडिया ऑफिस की ओर से आने वाले गवाहो ने भी स्वीकार किया कि यह रकम बहुत बडी थी और भारतवर्ष को यह सौदा बेहद महगा पड रहा था। पर उनका कहना था कि इडिया ऑफिस लाचार है। कानूनन वह दूसरी बैंक से अपना काम करा नही सकता, और जब बैंक आव इगलैण्ड से अननय-विनय करता है कि कमीशन घटाइए तब बैंक साफ इनकार कर देती है। वास्तव मे बैंक आव् इगलैण्ड इडिया ऑफिस की बेबसी का नाजायज फायदा उठा रही थी।

इडिया ऑफिस लन्दन मे रुपया उधार देने का काम करता था। कहा जाता है कि इस विषय मे वह ईस्ट इडिया कम्पनी की बताई हुई राह पर चल रहा था।

इडिया ऑफिस की ओर से एक खास दलाल लेन-देन के इस काम को देखता था। ऐसे लोगो की एक लिस्ट रखी जाती, जिन्हे रुपया उधार देने मे कोई जोखिम नही थी। अगर कोई व्यक्ति या फर्म अपना नाम इस लिस्ट पर चढाना चाहता तो उसे दरख्वास्त करनी पडती। यह दरख्वास्त इडिया ऑफिस की फाइनेस-कमेटी की सिफारिश हो जाने पर मजरी के लिए भारत-सचिव के पास जाती। जिनकी साख ऊची होती वे ही इस लिस्ट पर आ सकते थे।

जिस फाइनेस-कमेटी का यहा जिक्र किया गया है उसके चेयरमैन या अध्यक्ष इधर कुछ वर्षो से लन्दन के लॉर्ड इचकेप या सर फेलिक्स शुस्टर जैसे बडे व्यापारी होते आ रहे थे। लेन-देन के काम मे इस चेयरमैन का बहुत बडा हाथ रहता, और भारत-सचिव प्राय इन्ही के कहने के अनुसार चलते थे।

कर्ज सिक्यूरिटीज पर दिया जाता था, पर कुछ खास बैंको को बिना जमानत के ही दे दिया जाता। बैंक आव् इगलैण्ड की ओर से गवाही देने

वाले मि० कोल ने चेम्बरलेन-कमीशन से कहा था कि उनके यहा यह प्रथा नही थी, और वडी-से-वडी वैक को भी सिक्यूरिटीज देने पर ही रुपया उधार मिल सकता था। कर्ज लेनेवालो मे दो वडी वैके ऐसी थी, जिनसे लॉर्ड इचकेप और सर फेलिक्स शुस्टर स्वय सम्बद्ध थे। उस समय ऐसे समालोचको की कमी नही थी, जिन्होने इन दोनो पर पक्षपात का दोषारोपण करते हुए यह कहा कि इनका एक हाथ कर्ज देता था, और दूसरा लेता था। पर लॉर्ड इचकेप ने अपनी और सर फेलिक्स शुस्टर की सफाई मे कहा कि उन्होने उन बैको के साथ जरा भी रिआयत नही की थी।

इण्डिया ऑफिस के दलाल मि० होरेस स्कॉट थे। उनसे पहले उनके पिता इस पद पर रह चुके थे। व्याज से जो आमदनी होती उसपर पाच प्रतिशत के हिसाब से मि० स्कॉट को दलाली मिलती थी। १९१०–११ मे उनकी दलाली १६,००० पौड अर्थात् २,४०,००० रुपए हुई थी। इस पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री केन्स ने लिखा था—"जव पहले-पहल यह मालूम हुआ कि वडे लाट को छोड,भारत-सरकार की ओर से सबसे अधिक वेतन या पुरस्कार पानेवाला इण्डिया ऑफिस का यह दलाल हैं तव लोग आश्चर्य-चकित हो गए। मजा यह कि इस दलाल को अपना पूरा समय इण्डिया ऑफिस के काम के लिए नही लगाना पडता, उसका अपना भी व्यवसाय है, और वह उसे भी देखता-भालता है।"

आन्दोलन उठने पर मि० स्कॉट की दलाली घटा दी गई। फिर भी इससे उनकी आय आठ हजार पौड अर्थात् १,२०,००० रुपए के लगभग थी। भारत-सरकार की ओर से स्टॉक (कागज) की खरीद-विक्री करने के लिए उन्हे १,५०० पौड अलग मिलता था। समालोचको का कहना था—और वहुत ठीक कहना था कि घटा देने पर भी इण्डिया ऑफिस के दलाल की दलाली वहुत ज्यादा थी। लेन-देन करोडो का होता था, और व्याज की दर वाजार की हालत पर निर्भर करती थी। दलाल की कार्यकुशलता से आमदनी मे इतना ज्यादा फर्क नही पड सकता था कि उसे इस पैमाने पर पुरस्कार दिया जाय। पर इण्डिया ऑफिस ऐसी सलाह पर कव ध्यान देनेवाला था ?

भारतवर्ष का जो रुपया लन्दन के व्यापारियो को इस प्रकार उधार दिया जाता वह कभी-कभी २७ करोड के करीब पहुँच जाता था । व्याज की दर कभी-कभी इतनी नीची होती कि बैंक आव् इगलैण्ड भी हैरान हो जाती । इस बात को सब स्वीकार करते थे कि लन्दन का सराफा और लन्दन का व्यापार, दोनो को इण्डिया ऑफिस की इस महाजनी से बहुत लाभ था ।

पर भारतवर्ष का रुपया भारतवर्ष के काम न आ सकता था । यहा सरकार की नीति इतनी सकीर्ण थी कि बडी-से-बडी बैंक के लिए भी उधार लेना लाभप्रद नही था । १८९९ और १९०६ के बीच कुल छ बार बैंको ने सरकार से कर्ज लिए—प्रत्येक बार २० से ४० लाख रुपए के बीच। १९०६ और १९१३ के बीच लेन-देन का काम हुआ ही नही । व्यापारियो को यहा प्राय ऊँचे ब्याज पर रुपया मिलता । ८ प्रतिशत यहा के लिए साधारण दर थी । जब कभी लोग सरकार से कहते कि रुपया सस्ता करके वाणिज्य-व्यापार और उद्योग-धधो की उन्नति मे सहायता पहुँचाइए तब उन्हे उत्तर मिलता कि "यह सहायता पहुँचाना हमारा काम नही। बाजार को अपने पैरो पर खडा होना चाहिए, और भारतीय पूजी ऐसे कामो मे लग सके, इसका प्रबन्ध करना चाहिए।" भारतवर्ष का धन लन्दन के लिए था, भारतवर्ष के लिए नही ।

भारत-सचिव भारत-सरकार पर जो हुण्डी किया करते वह 'कौंसिल बिल' कहलाती थी । भारतवर्ष मे आयात (इम्पोर्ट) की अपेक्षा यहा से निर्यात (एक्स्पोर्ट) अधिक होने के कारण स्टर्लिंग की अपेक्षा रुपए की माग प्राय अधिक रहती थी । रुपए चाहनेवाले लोग विलायत मे भारत-सचिव को सोना या स्टर्लिंग देकर उससे भारत-सरकार के नाम हुण्डी ले सकते थे और हुण्डी भुना कर उसके रुपए कर सकते थे । इसके लिए कायदा यह था कि रुपए चाहनेवालो को टेण्डर देना पडता—अर्थात् यह बताना पडता कि वे किस दर से उसे खरीदने को तैयार है । फिर भारत-सरकार की ओर से यह सूचित किया जाता कि किसकी दर मजूर हुई है और किसको कितने की हुण्डी मिलेगी । तार-द्वारा जो हुण्डी की जाती उसके लिए

भारत-सचिव १५$\frac{१५}{१६}$ पेंस से नीची रेट को किसी भी हालत मे मजूर करने को तैयार नही थे।

उस समय रुपए प्राप्त करने के दो तरीके थे, एक तो यह कि भारत-सरकार को यहा सोना दिया जाय और एक्सचेंज-दर से बदले में रुपए लिए जाय, दूसरा यह कि भारत-सचिव से हुण्डी खरीदकर उसके रुपए कर लिए जाय।

विलायत से या दूसरे देश से सोना लाने मे कुछ खर्च जरूरी था। विलायत से यह खर्च (जहाज का भाडा, ब्याज की हानि और बीमा) १६ पेंस (सोना) पीछे $\frac{१}{२}$ पेनी पडता था—अर्थात सोना लानेवाले को एक रुपए की कीमत १६$\frac{१}{२}$ पेंस पडती थी। ऐसी हालत मे उसे अगर हुण्डी-द्वारा एक रुपया १६$\frac{१}{१६}$ पेंस मे ही मिल जाता तो वह कब सोना खरीदने और यहा भेजने वाला था ? भारत-सचिव की नीति बराबर यह रहती थी कि कम-से-कम सोना भारतवर्ष जाय। इसलिए वह इस हुण्डी की दर प्राय इतनी नीची रखते थे कि लोग-रुपए के लिए सोने के बजाय इसी हुण्डी का उपयोग करे। उन्हे विलायत मे अपने काम के लिए रुपए-पैसे की जरूरत हो या न हो, वह हुण्डी बेचते ही रहते थे, बल्कि उन्होने यह ऐलान कर रखा था कि १६$\frac{१}{२}$ पेंस की दर से तो कोई जितने की चाहे, हुण्डी ले सकता है। भारत-सचिव सोने का लन्दन से यहा आना रोक कर ही सन्तुष्ट नही थे। और देशो से भी जब सोना यहा आने लगता तब वह लेनेवाले को ऐसी दर से हुण्डी बेच देते कि उसके लिए सोना लन्दन भेज देना और हुण्डी भुनाकर यहा रुपए कर लेना अधिक लाभदायक हो जाता।

भारत-सचिव की ओर से कहा जाता कि "आखिर सोने को एक-न-एक दिन लन्दन आना ही है—रुपयो की खातिर चादी खरीदने के लिए या एक्सचेंज को गिरने से बचाने के लिए—फिर क्यो उसके जाने-आने मे पैसे का अपव्यय होने दिया जाय ? बेहतर यह है कि सोना लन्दन में ही बना रहे और उसे उधार देकर भारत-सचिव कुछ ब्याज भी उपजाते रहे।" इसका जवाब यह था —

(१) रुपयो के लिए चादी खरीदने की जरूरत इसलिए पडती थी कि हमारे शासक हमे वह सच्चा गोल्ड स्टैण्डर्ड (सोने का मान) देने को तैयार नही थे, जिसकी सिफारिश फौलर-कमेटी ने की थी और जिसे देना स्वय भारत-सचिव ने स्वीकार कर लिया था। अगर चलन मे सोने के सिक्के होते, तो चादी के इन सिक्को की न ऐसी आवश्यकता होती, न ऐसी बहुतायत।

(२) एक्सचेज का गिरना बहुत दूर की बात या सम्भावना थी। भारतवर्ष मे इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट ज्यादा होने के कारण स्टर्लिंग से रुपए की माग ज्यादा रहती है। कभी किसी साल ऐसा सयोग हो जाता है कि एक्सपोर्ट से इम्पोर्ट बढ जाता है और स्टर्लिंग की माग बढ जाने के कारण एक्सचेज की गगा उलटी बहने लगती है। पर ऐसे अवसर बहुत कम हुए है। अधिकारियो को एक्सचेज के गिरने की फिक्र तो इतनी थी कि उसको रोकने के लिए साल-ब-साल लन्दन मे सोना इकटठा करते जाते थे। पर महासमर-जैसी परिस्थिति की उन्हे कोई भी चिन्ता नही थी, जिसमे न सोना मिल सकता था, न सिक्यूरिटीज या कागज ही बेचे जा सकते थे।

(३) व्याज तो भारतवर्ष मे भी उपजाया जा सकता था, बल्कि यहा इसकी गुजाइश विलायत से ज्यादा थी। पर जहा मुद्रा-प्रणाली की वास्तविक भिति या आधार का प्रश्न हो वहा तो सब से पहले यह देखना चाहिए कि वह सुरक्षित किस प्रकार रह सकेगी। उसके सुरक्षित रहने से ही हम सुरक्षित बने रहेगे। थोडे से व्याज के लिए इतनी बडी जोखिम उठाना कहा की बुद्धिमता थी? पर लन्दन मे सोना इगलैण्ड की भलाई के खयाल से रखा जा रहा था—भारतवर्ष को व्याज के रूप मे कुछ लाभ कराने के उद्देश से नही।

लन्दन मे चादी खरीदने का कारण लन्दन का पक्षपात था। वहा का बाजार बहुत ही छोटा है। चार दलालो के गुट या टोली को लन्दन मे चादी का बाजार समझना चाहिए। भारतवर्ष मे लोगो की माग थी कि चादी के लिए टेण्डर कराए जाय और उनपर विचार होने के बाद चादी बम्बई मे खरीदी जाय। सर शापुर्जी भरोचा के कथनानुसार यह नगर सभ-

वत. ससार मे 'चादी का सब से वडा बाजार' था। पर इडिया ऑफिस को लन्दन से वाहर चादी खरीदना मजूर न था। सर शापुर्जी चेम्बरलेन कमीशन के मेम्वर थे। उन्होने एक गवाह की जिरह करते हुए कहा था कि "१९०४-०५ मे कण्ट्रोलर-जनरल से मुझे चादी का एक वडा आर्डर मिला, पर भारत-सचिव ने आगे के लिए ऐसी खरीदगी की मनाही कर दी। पार साल लन्दन मे जिस भाव चादी खरीदी गई उससे बम्वई मे दो पेंस सस्ती खरीदी जा सकती थी।" तमाशा यह था कि लन्दन मे जो चादी खरीदी गई थी वह भारतीय व्यापारियो की थी। पर भारतवासी भारत-सरकार को भारतवर्ष मे अपनी चादी न बेच पाते थे।

एक वार प्राय. ९ करोड रुपए की चादी लन्दन मे सैमुयल मौण्टेग्यू कम्पनी (दलाल) की मार्फत खरीदी गई। मि० मॉण्टेगू—जो वाद मे भारत सचिव हुए थे, उस समय इण्डिया ऑफिस मे अण्डर-सेक्रेटरी थे, और उसी कुल-परिवार के थे जो उस कम्पनी का मालिक था। उनके विपक्षियो ने इस सौदे को लेकर हाउस ऑव् कॉमन्स मे काफी हो-हल्ला मचाया और कितनी ही ऐसी बातो पर प्रकाश डाला, जिनसे पक्षपात का सन्देह हुए विना न रह सकता था।

सोने का उत्पादन इधर काफी वढ चला था और यह वृद्धि इस प्रकार हुई थी —

	टन
१८९०	१७७
१८९५	२९०
१९००	३७७
१९०५	५७७
१९१०	६७४

सोने मे दाम भी वढ चले थे, और वढते ही जा रहे थे। भारतवर्ष मे भी दाम ऊचे हो रहे थे। ऐसी अवस्था मे, जैसा कि पिछले अध्याय मे कहा जा चुका है—लोग चादी को स्वयसिद्ध मुद्रा कराने के पक्षपाती न रह गए। चेम्बरलेन-कमीशन के सामने सिर्फ एक गवाह ने यह माग पेश की

थी कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौता करके इस देश मे चादी को उसकी पुरानी जगह फिर दे दी जाय।

सोने मे दामो की अपेक्षा रुपए मे दाम ज्यादा बढे थे और कुछ विशेषज्ञो का—खास कर श्रीगोखले का—मत यह था कि रुपए चलन मे आवश्यकता से अधिक थे। उनका कहना था कि "सोने के सिक्के, आवश्यकता न रहने पर, निकल जाते है (जैसे निर्यात के रूप मे), पर रुपए निकल नही सकते, उन्हे गलाने से लाभ नही, भुगतान के लिए उन्हे विदेश भेजना सभव नही। या तो वे लौट कर बैको मे या सरकारी खज़ाने मे आ जायगे या चलन मे बने रहेगे। पर इस देश मे बैक-व्यवसाय की अभी यथेष्ट उन्नति नही हुई है, इसलिए रुपए जल्दी लौटते नही, लोगो के ही पास बने रहते है और दामो पर अपना असर डालते रहते है।" इस विषय का अनुसन्धान करने के लिए १९१० मे एक छोटी-सी कमेटी बैठी थी, जिसके अध्यक्ष मि० के० एल० दत्त थे। इसकी राय यह ठहरी कि रुपयो की वृद्धि आवश्यकता के अनुसार ही हुई थी और उनकी कोई ऐसी बहुतायत न थी। हा, बैको से उधार मिलने मे अब बडी सहूलियत हो चली थी, और इसका असर दामो पर बेशक पडा था।

चेम्बरलेन-कमीशन की सिफारिशो का जिक्र करने से पहले परिस्थिति का सिहावलोकन कर लेना आवश्यक है —

(१) इस समय सॉवरेन (गिनी) और रुपया, दोनो ही चलन मे थे, और लोग दोनो को ही लेने-देने को बाध्य थे।

(२) सरकार रुपए के बदले सोना देने को कानूनन बाध्य नही थी, पर एक हद तक वह सोना देने को तैयार रहती थी।

(३) सरकार सॉवरेन के बदले १६ पेस की दर से रुपया देने को बाध्य थी, पर धातु के रूप मे सोने के बदले नही।

(४) भारत-सचिव १६ १/८ पेस की दर से चाहे जितने की हुडी भारत-सरकार के नाम बेचने को तैयार रहते थे। भारत-सरकार भी भारत-सचिव के नाम उलटी हुडी बेचना स्वीकार कर चुकी थी, पर १५ २९/३२ पेस से नीची दर से नही। ऐसी हालत मे एक्सचेज न तो १६ १/८ पेस से ऊपर जा सकता था, न १५ २९/३२ पेस से नीचे।

(५) चलन मे विशेषता रुपयो की थी। करेंसी रिजर्व और सरकार के हाथ के रुपयो को छोड, वाकी रुपयो का चलन १९१२ मे २०० करोड कूता गया था।

सोने के सिक्को का प्रचार वढ रहा था। ३१ मार्च १९१३ को समाप्त होनेवाले १२ वर्षो मे प्राय ९० करोड के सॉवरेन सार्वजनिक चलन मे गए। इन वारह वर्षो मे चादी के रुपए भी प्राय ९० करोड ही ढले। सोने के चलन की रफ्तार १९०९ के वाद तेजी से वढने लगी थी। ३१ मार्च १९०९ और ३१ मार्च १९१३ के वीच ४५ करोड के सॉवरेन सार्वजनिक चलन मे गए। यह तो नही कहा जा सकता कि सव-के-सव सॉवरेन चलन मे मौजूद थे, पर चेम्वरलेन-कमीशन की रिपोर्ट ने भी यह वात स्वीकार की थी कि लेन-देन के काम मे सॉवरेन अधिकाधिक आ रहा था—खास कर वम्वई, सयुक्त प्रात, पजाव और मद्रास के कुछ हिस्सो मे।

सोने का यह प्रचार या उपयोग हमारे शासको की अनिच्छा होते हुए भी होने लगा था। हमारे शासन-सूत्रधर की तो वरावर यह चेष्टा रहती थी कि सोना लन्दन से भारतवर्ष आने न पावे। पर फिर भी कुछ-न-कुछ सोना आता ही रहता था, और करेन्सी के रूप मे सॉवरेन के उपयोग का वढना कुछ भी आश्चर्यजनक नही था।

जिस विशुद्ध गोल्ड स्टैण्डर्ड या सुवर्ण-मान की फौलर कमेटी ने सिफारिश की थी वह हमे न दिया गया। उसकी जगह दिया गया 'गोल्ड एक्सचेंज स्टैण्डर्ड' जिसकी सिफारिश मि० लिण्डसे ने की थी और जो उस समय अस्वीकृत कर दिया गया था। इस स्टैण्डर्ड के अनुसार मूल्य का मान या मापक सोना ही था—एक रुपया वास्तव मे ७ ५३३४४ ग्रेन सोने का प्रतीक या प्रतिनिधि था—पर हमारा अपना कोई सोने का सिक्का नही था, और रुपए का मूल्य सरकारी व्यवस्था पर निर्भर करता था। सोने का रिजर्व यहा से सात समुद्र-पार विलायत मे रख दिया गया था और भारत-सचिव अपनी नीति-रीति ऐसी रखते थे कि कम-से-कम सोना भारतवर्ष आने पावे।

भारत-सरकार का अपना मत कई वातो मे भारत-सचिव से भिन्न था, पर वह परतत्र होने के कारण लाचार थी। भारत-सचिव लदन के पूजी-

पतियो के हाथ की कठपुतली थे। उन्हे वही करना पडता था जो इगलैण्ड के हित के अनुकूल था, जिससे इगलैण्ड की भलाई निश्चित थी।

१७ अप्रैल १९१३ को एक रायल कमीशन भारतीय मुद्रा-प्रणाली के हर पहलू पर विचार करने के लिए नियुक्त हुआ। इसके अध्यक्ष थे मि० ऑस्टेन चेम्बरलेन, जो बाद मे भारत-सचिव और परराष्ट्रसचिव हुए थे। कमीशन के दूसरे मेम्बरो मे लॉर्ड फैबर, सर शापुर्जी भरोचा, सर अर्नेस्ट केबल और अध्यापक केन्स थे। इसके सेक्रेटरी थे सर बेसिल ब्लैकेट, जो बाद भारत के अर्थ-सदस्य हुए।

पिछली कमेटियो की तरह इस कमीशन की भी सारी कार्रवाई लन्दन मे ही हुई। इसकी रिपोर्ट २४ फरवरी १९१४ को ब्रिटिश सरकार के पास भेजी गई। इसके एक मेम्बर सर जेम्स बेग्वी ने सोने के प्रचार के सम्बन्ध मे औरो से अपना मतभेद प्रकट किया था। रिपोर्ट मे अध्यापक (वर्त्तमान लॉर्ड) केन्स का रिजर्व बैंक जैसी सस्था पर एक नोट था।

कमीशन ने अपनी रिपोर्ट मे यह स्वीकार किया कि कितनी ही बातो मे वस्तुस्थिति फौलर-कमेटी द्वारा स्वीकृत स्कीम से भिन्न थी। यहा की मुद्रा-प्रणाली का आधार था तो मि० लिण्डसे का प्रस्ताव, जो कमेटी द्वारा अस्वीकृत हो चुका था, पर कमेटी के बताए हुए मार्ग का अवलम्बन न करने के लिए कमीशन ने अधिकारियो की किसी प्रकार की निन्दा नही की, बल्कि उसका कहना था कि जो कुछ हुआ था, अच्छा ही हुआ था।

कमीशन की सिफारिशो मे कुछ खास बाते ये थी :—

(१) यह निश्चित हो जाना चाहिए कि भारतीय मुद्रा-प्रणाली का लक्ष्य क्या है। १८९८ की कमेटी की राय थी कि इस देश मे सोने के मान की सफलता के लिए सोने का सिक्का आवश्यक है। पर पिछले १५ वर्षों के इतिहास से इस धारणा की पुष्टि नही होती।

(२) चलन मे सोने के उपयोग को प्रोत्साहन देना भारतवर्ष के लिए हितकर न होगा।

(३) सोने के सिक्के की यहा ढलाई की कोई आवश्यकता नही। पर भारतीय जनता सचमुच इसे चाहती है और भारत-सरकार इसका

खर्च देने को तैयार है, तो सिद्धाततः कोई आपत्ति नही हो सकती। हा, जो सिक्का ढाला जाय वह सॉवरेन होना चाहिए।

(४) एक्सचेज की पुश्ती के लिए रिजर्व मे काफी सोना और स्टर्लिग रहना चाहिए।

(५) गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व की अभी कोई हद नही बाधी जा सकती।

(६) रुपयो की ढलाई से जो मुनाफा हो वह पूरा-का-पूरा इसी रिजर्व मे जमा किया जाय।

(७) इस रिजर्व मे इस समय जितना सोना रखा जाता है उससे अधिक रखने की जरूरत है।

(८) गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व लन्दन मे ही रहना चाहिए।

(९) सरकार को साफ तौर से यह जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेनी चाहिए कि जब कभी स्टर्लिग की भारतवर्ष मे माग होगी तब वह भारत-सचिव के नाम १५$\frac{२९}{३२}$ पेस की दर से हुडी बेचने को तैयार रहेगी।

(१०) भारत-सरकार के हाथ मे जब कभी बचत का रुपया हो तब उसे प्रेसिडेसी बैको को उधार देने का नियम-सा कर लेना चाहिए। किन शर्तो पर रुपया उधार दिया जाय, यह निश्चित हो जाना चाहिए।

(११) इस समय हम किसी स्टेट या सेण्ट्रल (केन्द्रीय) बैक की स्थापना के पक्ष या विपक्ष मे कुछ भी नही कह सकते, पर इतना हम अवश्य कहेगे कि यह विषय महत्वपूर्ण है और इसपर विशेषज्ञो की एक छोटी-सी कमेटी द्वारा विचार होने की आवश्यकता है।

इडिया ऑफिस की फाइनेन्स कमेटी के दो चेयरमैन और एक मेम्बर ऐसी बैको से सम्बद्ध रह चुके थे, जिनका इडिया ऑफिस से लेन-देन का सरोकार रहता था। यह बात समालोचको-द्वारा आपत्तिजनक बताई जा चुकी थी। इसपर कमीशन ने अपनी राय यह दी कि ऐसे सम्बन्ध के कारण किसी प्रकार का पक्षपात तो साबित नही होता, पर भारत-सचिव को चाहिए कि जहा तक हो सके, ऐसी समालोचना या शिकायत के लिए कोई मौका ही न दे।

इडिया ऑफिस के दलाल को जिस उसूल पर दलाली दी जाती थी,

उसका कमीशन समर्थन न कर सका। उसकी सिफारिश थी कि कुछ समय बाद इस प्रश्न पर फिर से विचार किया जाय।

बैंक आव् इगलैंड के विषय मे उसने दबी जबान इतना ही कहा कि हम लोगो के विचार मे, इडिया ऑफिस और इस बैंक के सम्बन्ध को नई भित्ति पर रखने का समय आ गया है।

कमीशन की रिपोर्ट सरकार के विचाराधीन ही थी कि अगस्त १९१४ मे प्रथम महासमर छिड गया। अब यह निश्चय हुआ कि जब तक शाति स्थापित नही होती तब तक कार्रवाई मुलतबी रहे।

५

लेने के देने

महासमर के कारण भारतवर्ष को जो आर्थिक लाभ होना चाहिए था नहीं हुआ, बल्कि गहरी हानि हुई। परतन्त्रता के फलस्वरूप उसे लेने के देने पड गए।

आरम्भ मे हमारे व्यापार को धक्का-सा लगा और काम-काज बहुत कम हो चला। एक्सचेज मे कमजोरी आने लगी जिसको रोकने के लिए सरकार ने भारत-सचिव के नाम उलटी हुण्डी बेचना शुरू किया। लोग बैंको से अपने-अपने रुपए उठाने लगे। पहले दो महीनो मे ही सेविंग्स बैंक डिपॉजिट मे छ करोड की कमी हो चली। सितम्बर से अक्टूबर १९१४ तक दो करोड की और कमी हुई। बाद मे परिस्थिति सुधरी और डिपॉजिट बढने लगे। शुरूआत मे घबराहट के मारे लोग नोट भी तेजी से भुनाने लगे। ३१ जुलाई १९१४ और ३१ मार्च १९१५ के बीच नोटो का चलन प्राय दस करोड कम हो चला। पर इसके बाद अवस्था सुधरने पर नोटो का चलन फिर बढने लगा और बढता ही गया। जुलाई १९१४ के अन्त मे सोने की माग बढ चली और सरकार के हाथ से प्राय १,८००,००० पौंड का सोना निकल गया। ५ अगस्त को सरकार ने सोना देना बन्द कर दिया। उसके बाद नोटो के बदले सिर्फ रुपए मिल सकते थे।

भारतवर्ष की करेन्सी और एक्सचेज पर महासमर का क्या असर हुआ उसे बताने से पहले यह बता देना आवश्यक है कि इंगलैण्ड मे अब सोना और स्टर्लिंग दोनो दो चीजे हो चली, उनकी समानता जाती रही। हमारा जितना धन विलायत मे जमा था, और जिसे हम बराबर सोना मानते आते थे, अब स्टर्लिंग कागज रह गया।

इगलैण्ड तथा अन्य मित्र-देशो को इस समय भारतवर्ष से बहुत कुछ माल मिल सकता था और वह मिलने भी लगा।

एक्सपोर्ट के मार्ग मे कई कठिनाइया थी। जहाज कम मिलते थे, आर्थिक प्रतिवन्ध के कारण जितना माल जा सकता था, न जा पाता था। फिर भी एक्सपोर्ट मे कमी नही हुई, बल्कि १९१६–१७ से वृद्धि ही होने लगी। दूसरी ओर बाहर से कम माल आने लगा, क्योकि जर्मनी, ऑस्ट्रिया, हगरी जैसे देशो से तो कुछ आ ही नही सकता था और दूसरे देशो से भी आने मे कई तरह की रुकावटे थी। फिर भी दाम ऊचे होने के कारण जो कुछ आया उसकी कीमत महासमर के पूर्व जैसी ही बनी रही। १९१४–१५ से १९१८–१९ तक ऐसे माल का जितना इम्पोर्ट हुआ उससे हर साल प्राय ७६ करोड रुपए अधिक का एक्सपोर्ट हुआ। यह कोई असाधारण वात नही थी, पर सोना-चादी पहले की अपेक्षा वहुत कम आई, इसलिए और देशो से हमारा पावना पहले से कही अधिक हो चला। लडाई से पहले पाच वर्षो मे यहा १८० करोड की सोना-चादी आई थी। पर इन पाच वर्षो मे कुल ५४ करोड की आई। सालाना औसत प्राय ११ करोड वैठा।

भारतवर्ष से ही उस समय ईराक, ईरान और पूर्व अफ्रीका मे लडाई के खर्च के रुपए मगाए जाते थे। फौज का वेतन-आदि चुकाने, लडाई के सामान खरीदने और शासन-सम्वन्धी सारा व्यय चुकाने के लिए इन रुपयो की जरूरत पडती थी। इन रुपयो के वदले भारत-सरकार विलायत मे ब्रिटिश सरकार से स्टर्लिंग पाती थी। १९१४ और १९१९ के बीच इस प्रकार के खर्च का जोड २४०,०००,००० पौड हो चुका था और खर्च जारी ही था। भारतवर्ष मे अमेरिका और ब्रिटिश उपनिवेशो की ओर से उन दिनो करोडो के माल खरीदे गए थे, इसके लिए भी खास व्यवस्था करनी पडी थी।

इन सब कारणो से यहा करेन्सी की माग बढने लगी और टकसालो मे रुपयो की ढलाई जोर-शोर से होने लगी। अप्रैल १९०४ और मार्च १९०९ के वीच जब करेसी की माग काफी अच्छी थी, प्राय १८०,०००,००० स्टैण्डर्ड औंस चादी के रुपए ढले थे। पर अप्रैल १९१६ और मार्च १९१९

के बीच प्राय ५००,०००,००० स्टैण्डर्ड औस चादी का इस काम मे उपयोग हुआ ।

३१ मार्च १९१४ को प्राय ६६ करोड के नोट चलन मे थे। ३० नवम्बर १९१९ को यह तादाद प्राय १८० करोड हो चली थी। नोट बढते गए पर उनकी पुश्ती के लिए करेन्सी रिजर्व मे जो सोना-चादी रखी जाती थी उसका अनुपात घटता गया। महासमर से पहले कानून था कि रिजर्व मे सिक्यूरिटीज या कागज अधिक-से-अधिक १४ करोड रुपए के रखे जा सकते थे। धीरे-धीरे यह हद बढाकर १२० करोड कर दी गई जिसमे २० करोड के कागज भारत-सरकार के रखे जा सकते थे, बाकी ब्रिटिश सरकार के। ३० नवम्बर १९१९ को नोटो के चलन की पुश्ती इस प्रकार थी—

	करोड रुपए
चादी (रुपए)	४७
सोना	३३
कागज	१००
	१८०

नोटो के सम्बन्ध मे दूसरी नई बात यह हुई कि १९१७ मे ढाई रुपए के और १९१८ मे एक रुपए के नोट जारी किए गए। ३१ मार्च १९१९ को ढाई रुपए के नोट प्राय १ करोड ८४ लाख के और एक रुपए के नोट प्राय १०॥ करोड के चलन मे थे ।

पहले सरकार की नीति यह रहती थी कि नोट भुनाने के लिए सर्व-साधारण को हर तरह की सुविधा दी जाय। महासमर मे यह नीति कायम न रह सकी। कागज की पुश्ती कागज से करके नोट बढाए जा रहे थे, इस-लिए लोगो का नोटो मे वह विश्वास न रह गया था जो पहले था। लोग रुपए मागते थे। १९१६–१७ मे प्राय ३८ करोड और १९१७–१८ मे २८ करोड रुपए चलन मे गए। १ अप्रैल १९१८ को रिजर्व मे कुल १०॥ करोड रुपए रह गए थे—अर्थात् महासमर से पूर्व कम-से-कम जितना रिजर्व मे रखना निरापद समझा जाता था उससे प्राय आठ करोड कम।

मार्च और अप्रैल १९१९ मे महासमर-सम्बन्धी परिस्थिति कुछ चिन्ता-जनक हो चली जिसका नतीजा यह हुआ कि लोग नोटो को बेतहाशा भुनाने लगे। जून के पहले सप्ताह मे रुपए कुल प्राय चार करोड रह गए थे। इस वीच मे सरकार ने अमेरिका से कुछ चादी लेने की व्यवस्था कर ली थी और वह चादी अब आने भी लगी। इसके फलस्वरूप परिस्थिति मे सुधार होने लगा।

सरकार नोटो के बदले रुपए देने के लिए सब जगह बाध्य नही थी पर आम तौर से दिया करती थी। पर यह सुविधा अब न रही। रेल या स्टीमर-द्वारा सिक्के ले जाने पर प्रतिबन्ध लग गया। डाक-द्वारा भी अब कोई उन्हे कही न भेज सकता था। करेन्सी ऑफिसो मे सरकार नोटो के बदले रुपए देने को अब भी बाध्य थी। पर वहा भी अब यह विधान कर दिया गया कि एक आदमी को एक ही दिन इतने से ज्यादा रुपए न मिल सकेगे। इन प्रतिबन्धो और रुकावटो के कारण चलन मे रुपये का स्थान नोट ग्रहण करते गए। पर नोटो पर ऐसी हालत मे बट्टा लगना स्वाभाविक था। कुछ समय तक तो कही-कही यह बट्टा १९ प्रतिशत तक रहा।

हम स्वाधीन होते और दूसरो के हाथ माल बेचते या उनके लिए कुछ खर्च करते तो हम उनसे बेबाकी स्टर्लिंग—जैसे कागजी रुपए मे न कराके चादी या सोने मे कराते। घडी भर के लिए यह मान ले कि हमारे देनदार चादी या सोना देने मे असमर्थ होते और हम फिर भी उनके साथ कारोबार करना चाहते तो हम यह व्यवस्था कर सकते थे कि उन्हे कुछ समय के लिए अपना रुपया कर्ज दे। पर हम थे पराधीन और इस पराधीनता के कारण हम दाम या भुगतान अपनी इच्छा या सुविधा नही बल्कि इगलैण्ड की इच्छा और सुविधा के अनुसार लेने को विवश थे। वर्षो वहा हमने जो सोना जमा कर रखा था वह तो कागज हो ही गया, अब इगलैण्ड हमसे जो कुछ लेने लगा उसका दाम भी कागज मे ही चुकाने लगा। करेन्सी रिजर्व की जो शाखा लन्दन मे थी उसमे स्टर्लिंग के कागज रख दिए जाते और उनके मद्दे इधर नोट निकाल दिए जाते। दोनो ओर पतगबाजी थी।

महासमर छिडते ही प्राय प्रत्येक देश ने सोने के निर्यात पर प्रति-

बन्ध लगा दिया। सोना बाहर जा सकता था तो उसी हालत मे जब विना सोना दिए किसी देश का काम चलनेवाला न था। १९१७–१८ मे भारतवर्ष मे जापान और अमेरिका से कुछ सोना इस कारण आया था कि उन्हे यहा माल खरीदना था और उस समय भारत-सचिव से हुडी मिलने मे कठिनाई थी। जव सोना दुर्लभ हो चला तब चादी की माग बढी। पर चादी का उत्पादन १९१४ से ही कम होने लगा था। १९१० से १९१३ तक तमाम दुनिया की खानो से २२८,५५२,००० औस चादी निकली थी। १९१४ से १९१७ तक कुल चादी १७८,०७५,००० औस निकली। इस कमी का खास कारण यह था कि मेक्सिको मे राजनैतिक अशान्ति के कारण चादी का उत्पादन बहुत घट गया। इधर ब्रिटिश साम्राज्य और चीन आदि देशो की ओर से माग कही-से-कही बढ गई। इसका नतीजा यह हुआ कि चादी महगी हो गई। १९१५ मे जो दाम २७। पेस था वह अगस्त १९२७ मे ४३ पेस, और एक ही महीना बाद ५५ पेस हो चला था।

अमेरिका, कनाडा और ग्रेट ब्रिटेन ने चादी के दाम की घटावढी को रोकने की कुछ खास व्यवस्था की, जिससे चादी का दाम कुछ समय तक प्रति औस प्राय एक डॉलर बना रहा। मई १९१८ और अप्रैल १९१९ के बीच लन्दन मे दाम ४७॥ और ५० पेस के बीच रहा। मई १९१९ मे अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन ने चादी के बाजार से अपना-अपना नियन्त्रण उठा लिया, जिसका नतीजा यह हुआ कि लन्दन मे दाम फौरन ५८ पेस हो गया। उसके बाद भी दाम बढता ही गया और १७ दिसम्बर को ७८ पेस तक पहुच गया था।

चौथे अध्याय मे कहा गया है कि जव चादी का दाम लन्दन बाजार मे २४ पेस होता तब एक रुपए की चादी की कीमत ९ पेस से कुछ ऊपर होती। इसी प्रकार जब चादी का दाम ४३ पेस हो गया तब रुपए की चादी की कीमत १६ पेस के पास पहुच गई, अर्थात् चादी इतनी महगी होते ही रुपए की असली कीमत उसकी नकली कीमत के पास पहुच गई। और जब चादी और भी महगी हुई तव १६ पेस मे रुपया देना सरकार के लिए असभव हो गया।

बचाव के लिए सरकार ने एक्सचेज को ऊचा करना शुरू कर दिया। २८ अगस्त १९१७ को टी० टी०* का दाम १६$\frac{1}{8}$ पेस से १७ पेस कर दिया गया। उसके कुछ ही दिन बाद यह विज्ञप्ति निकली कि भारत-सरकार के नाम हुडी की दर अब चादी के दाम पर निर्भर करेगी। १२ अप्रैल १९१९ को दर १८ पेस कर दी गई और १३ मई १९१९ तक यही दर रही। अमेरिका ने चादी के बाजार पर से नियत्रण उठा लिया, इस कारण चादी और भी महगी हो चली और रुपए की एक्सचेज-दर अब २० पेस कर दी गई। उसके बाद ज्यो ज्यो चादी तेज होती गई यह दर ऊची होती गई। इसके मरातिब ये थे —

१२ अगस्त १९१९	२२ पेस
१५ सितम्बर ,,	२४ पेस
२२ नवम्बर ,,	२६ पेस
१२ दिसम्बर ,,	२८ पेस

३ सितम्बर १९१७ को चादी का व्यापारियो-द्वारा इम्पोर्ट बन्द कर दिया गया। एक्सपोर्ट पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया—बिना सरकार से लाइसेस प्राप्त किए कोई सोना या चादी के सिक्के इस देश से बाहर नही भेज सकता था।

इम्पोर्ट रोका गया था इस उद्देश से कि जो चादी ससार मे उपलभ्य थी उसका कोई हिस्सा भारतवर्ष के व्यापारियो के हाथ लगने न पावे। एक्सपोर्ट इसलिए रोका गया था कि लोग सिक्को को गला कर या यो ही बाहर भेजना न शुरू कर दे। २९ जून १९१७ के बाद तो चादी या सोने के सिक्को को और किसी काम मे ले आना भी जुर्म करार दे दिया गया।

चादी की कमी के कारण सरकार अपना सोने का स्टॉक भी बढाने लगी। २९ जून १९१७ के बाद जो सोना विदेश से आता उसे मगानेवाले को सरकार के हाथ बेच देना पडता। अगस्त १९१९ मे रॉयल मिण्ट अर्थात् ब्रिटिश टकसाल की एक शाखा बम्बई मे खोली गई और वहा मॉव-

* Telegraphic Transfers—तार-द्वारा की जानेवाली हुडी।

रेन ढाले जाने लगे। इससे पहले कुछ ऐसी मोहरे यहा की टकसालो में ढाली जा चुकी थी जो प्राय हर बात मे सॉवरेन के समान थी। अप्रैल १९१९ मे रॉयल मिण्ट की यह शाखा उठा दी गई।

ऊपर कहा जा चुका है कि महासमर छिडते ही सरकार ने सॉवरेन देना बन्द कर दिया था। बाजार मे सॉवरेन की कीमत बढ चली और १५) से ऊपर रहने लगी। कानूनन सॉवरेन की कीमत अब भी वही १५) थी, और सरकार उसके बदले १५) देने को ही बाध्य थी। सॉवरेन ऐसी हालत मे करेन्सी के काम न आ सकते थे। फिर भी रुपयो की इतनी कमी हो रही थी कि दो बार सरकार को इस देश के कुछ हिस्सो मे किसानो से माल खरीदने के लिए कई करोड के सोने के सिक्के (सॉवरेन और देशी मोहरे) देने पडे।

शांति स्थापित हो जाने पर अमेरिका ने ९ जून १९१९ से सोने के एक्सपोर्ट की स्वतत्रता दे दी। दक्षिण अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया का सोना भी बाहर जाने के लिए स्वतत्र हो गया। इसलिए इस देश मे सोने की आमद बढ चली। भारतवर्ष लन्दन मे और अन्यत्र भी सोना खरीदने लगा। १५ सितम्बर १९१८ के बाद भारत-सरकार इम्पोर्टर को सोने का दाम इस हिसाब से देने लगी कि हुडी की दर की घटा-बढी के अनुसार सोने की जो कीमत हो वह उसे मिल जाया करे।

अगस्त १९१९ के अन्त मे भारत-सरकार ने यह घोषित किया कि हर पखवारे उसकी ओर से सोने की बिक्री की जायगी। इस बिक्री का नतीजा यह हुआ कि बाजार मे सोने का दाम गिर पडा। १५ अगस्त १९१९ को दाम था ३२ १२ रुपए तोला। २२ सितम्बर को यह गिर कर २७ रुपए रह गया था। फिर दाम मे कुछ तेजी आई और अक्तूबर के अन्त तक वह २९ १२ रुपए तोला हो चला। फिर कुछ ही दिन बाद वह गिर कर २८ ५ रुपए तोला रह गया। जब दाम ३२ १२ रुपए तोला था तब एक सॉवरेन की कीमत २० ९ रुपए थी। जब दाम २८ ५ रुपए तोला रह गया तो सॉवरेन की कीमत थी १७ ११ रुपए।

चांदी-सम्बन्धी परिस्थिति को काबू मे लाने के लिए सरकार ने हर

तरह की तदबीर की, पर चादी की कमी बनी ही रही और अन्त मे उसे ब्रिटिश सरकार की मार्फत अमेरिका का दरवाजा खटखटाना पडा। अमेरिका के पास रिजर्व मे बहुत कुछ चादी पडी हुई थी और उसने उसका एक हिस्सा भारत-सरकार को देना स्वीकार कर लिया। २३ अगस्त १९१८ को वहा इसके लिए पिटमैन ऐक्ट नामक विधान बना जिसका आशय था कि वहा की सरकार दूसरी सरकारो को इस रिजर्व मे से ३५०,०००,००० चादी के डॉलर तक चादी बेच सकती है। भारत को इसमे से २००,०००,००० औस चादी मिली जिसका दाम प्रति औस (खालिस चादी) १०१½ सेट चुकाना पडा। यह चादी मिल जाने से भारत-सरकार का बहुत बडा सकट टल गया। समय-समय पर वह बाजार मे भी चादी खरीदती रही। सब मिला कर उसने ५३८,००५,००० औस (स्टैण्डर्ड) चादी खरीदी।

३० मई १९१९ को एक करेन्सी कमेटी की नियुक्ति हुई जिसके अध्यक्ष मि० वैविगटन स्मिथ थे और जिसके एकमात्र भारतवासी मेम्बर थे मि० दादीवा मेरवान जी दलाल। कमेटी को यह देखना था कि भारतीय प्रणाली पर महासमर का क्या असर हुआ है—उस प्रणाली मे कौन से हेरफेर की जरूरत है और किस प्रकार यहा के 'गोल्ड एक्सचेज स्टैडर्ड' मे स्थिरत्व या स्थायित्व लाया जा सकता है। उस समय एक्सचेज की दर २० पेस थी।

२२ दिसम्बर १९१९ को कमेटी की रिपोर्ट तैयार हुई और भारत-सचिव के पास भेजी गई। मि० दलाल, कमेटी की रिपोर्ट से सहमत न हो सके और उन्होने अपने विचार अलग ही एक नोट मे प्रकट किए।

कमेटी की खास सिफारिश यह हुई कि रुपए की एक्सचेज-दर सोने मे बाध दी जाय और यह दर २४ पेस (सोना) हो। इस हिसाब से सॉवरेन की कीमत १५) के बजाय १०) होती। १८७३ से पहले एक्सचेज की जो रेट थी उसे फिर से ले आने के लिए, ऊचे एक्सचेज के पक्षपातियो की दृष्टि मे, यह अवसर अनुपम था—इसे हाथ से जाने देना परले सिरे की मूर्खता होती।

मि० दलाल ने इस धीगाधीगी का जोरो से विरोध किया। उन्होने अकाट्य युक्तियो से यह प्रमाणित कर दिया कि एक्सचेज की दर (१६ पेस) मे किसी प्रकार का परिवर्तन न होना चाहिए था।

कमेटी ने जिस दर की सिफारिश की थी वह थी २४ पेस (सोना)। उस समय इगलैण्ड मे सोने का स्टैण्डर्ड या मान नही था—नोटो के बदले सोना मिलना बन्द हो गया था। सोना और स्टर्लिग दोनो दो चीजे हो रही थी। एक सौ औस खालिस सोना हो तो उसके ४२५ सॉवरेन ढाले जा सकते है—शायद यह कहना ठीक होगा कि ढाले जा सकते थे। पर १७ दिसम्बर १९१९ को जो भाव था उसके अनुसार एक सौ औस खालिस सोने का दाम प्राय ५४४ पौड स्टर्लिग (कागजी) होता था। एक पौड स्टर्लिग (कागजी) अब एक सॉवरेन के बराबर न होकर ४२५/५४४ अर्थात् ७८ सॉवरेन (सोना) के बराबर था। इसीको दूसरी तरह यो कह सकते है कि एक सॉवरेन (सोना) अब ५४४/४२५ अर्थात् १ २८ पौड स्टर्लिग (कागजी) के बराबर था। कमेटी ने रुपए को स्टर्लिग से न बाध कर सोने से बाधने की सिफारिश की। २४ पेस (सोने) का अर्थ २४ पेस स्टर्लिग नही, बल्कि इससे कही अधिक था।

एक्सचेज को उठाने के पक्ष मे दलील यह दी गई थी और दी जा रही थी कि चादी का दाम ४३ पेस से ऊपर हो जाने पर रुपए का प्रतीक-मुद्रा रहना असम्भव था, इसलिए रुपए को चलन मे कायम रखने के लिए उसकी एक्सचेज-दर को काफी ऊँचा रखने की जरूरत थी। भविष्य के सम्बन्ध मे भी कमेटी की धारणा थी कि चीजो के दाम शीघ्र गिरनेवाले न थे—और चादी का दाम इतना ऊँचा रहनेवाला था कि रुपए की कीमत २ शिलिग अर्थात् २४ पेस (सोने मे) से कम रखने से उसके चलने से निकल जाने का अर्थात् धातु के रूप मे बिक जाने का डर था। लॉर्ड केन्स आर्थिक विषयो मे बडे दूरदर्शी माने जाते है। उन्होने भी दो शिलिग जैसी ऊँची दर का समर्थन इस आधार पर किया कि ससार मे चीजो के दामो के गिरने की कोई सम्भावना न थी—बल्कि सम्भावना यह थी कि दाम और भी ऊपर चढेगे। कहा गया कि इस महगी को ध्यान मे रखते हुए यह और

भी जरूरी था कि रुपए की एक्सचेज-दर काफी ऊँची हो—जिससे भारतवर्ष में महगी की भीषणता कुछ हद तक कम हो सके।

वास्तव मे—जैसा कि मि० दलाल ने अपने वक्तव्य मे कहा था—चादी की तेजी ही एक्सचेज की दर मे वृद्धि का एकमात्र कारण नही हो सकती थी, क्योकि अधिकारियो की मशा थी कि चादी सस्ती हो जाय तो भी एक्सचेज १६ पेस से काफी ऊँचा रखा जाय।

पर जो दलील दी गई थी उसका मि० दलाल के शब्दो मे जवाब यह था—

"महासमर की समाप्ति हो जाने पर भी चादी के एक्सपोर्ट पर प्रतिबन्ध बना रहा। अगर यह प्रतिबन्ध हटा दिया गया होता तो चादी मे इतनी तेजी न आती। भारतवर्ष आसानी से दूसरे देशो के हाथ अपनी चादी का एक हिस्सा बेच सकता था। इसका चादी के दामो पर अच्छा असर पडता। चादी का एक्सपोर्ट रुक जाने मे और जो चादी बेच सकता था उसका चादी का खरीदार बन जाने से ही इस बाजार मे आग लग गई।

"अगर यह मान भी लिया जाय कि चादी का एक्सपोर्ट होने लायक न था तो भी लडाई के समय उसका दाम बढने के कारण एक्सचेज को उठाना मुनासिब न था। भारत-सचिव को चाहिए था कि जितने रुपए की उन्हे जरूरत होती उतने की भारत-सरकार के नाम हुण्डी करके इस काम से हाथ खीच लेते—व्यापारी अपना देना, चादी न भेजकर, और जिस तरह चुका सकते, चुकाते।

"जब तक ससार-मात्र मे सोने के एक्सपोर्ट पर प्रतिबन्ध था तब तक थोडे समय के लिए एक्सचेज मे कुछ वृद्धि शायद अनिवार्य-सी थी, पर जब अमेरिका ने ९ जून १९१९ से प्रतिबन्ध हटा लिया और दक्षिण अफ्रीका का सोना भी १८ जुलाई १९१९ से लन्दन के बाजार मे बे-रोक-टोक बिकने लगा तब कोई भी कारण न हो सकता था कि एक्सचेज की दर को २० पेस से २८ पेस कर दिया जाय।

"सोने और रुपए के बीच की दर जो कायम थी वह महासमर के समय उठा दी गई। पर महासमर के बाद जो कुछ किया गया वह उससे

भी अनुचित था। शान्ति स्थापित हो जाने पर परिस्थिति बदल गई। लड़ाई के कारण बड़े पैमाने पर होनेवाले तरह-तरह के खर्च की अब कोई जरूरत न रह गई। व्यापार के लिए रुपए की माग अवश्य थी, पर यह माग पूरी करने से कही अधिक आवश्यक यह था कि यहा की जनता के मुद्रा-सम्बन्धी अधिकार की रक्षा की जाय, मूल्य का जो मान या स्टैण्डर्ड कर दिया गया था उसे अविचल रहने दिया जाय। हर हालत मे --पर खास कर शान्ति स्थापित हो जाने पर---चाहिए यह कि व्यापार उस मान या स्टैण्डर्ड के पीछे चले---न कि यह कि मान या स्टैण्डर्ड ही व्यापार का अनुवर्ती बन जाय। अगर उस स्टैण्डर्ड को बदले बिना व्यापार की माग पूरी नही की जा सकती थी तो मुनासिब था कि वह माग पूरी न की जाय, यह हर्गिज मुनासिब न था कि माग तो पूरी की जाय और स्टैण्डर्ड को उठा दिया जाय।"

रुपया स्वय हमारी मद्रा-प्रणाली मे, मूल्य का कोई मान न था। यह मान या स्टैण्डर्ड १६ पेंस अर्थात् ७ ५३३४४ ग्रेन सोना था। रुपया कागजी नोट की तरह उसका प्रतिनिधि-मात्र था। अगर चादी महगी हो गई थी तो सरकार को चाहिए था कि मान या माप-दण्ड को ज्यो-का-त्यो*

---

* मान या मापदण्ड के लिए जिस धातु का उपयोग होता था वह महगी हो रही थी, इसलिए मान या मापदण्ड ही बदल दिया जाय--यह प्रस्ताव कितना अनुचित था यह नीचे के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। नापने के गज को लीजिए। यह १६ गिरह या तीन फुट का होता है। मान लीजिए कि कही गज नापने के लिए रेशम का फीता काम में लाया जाता है (सोलह पेंस के लिए एक रुपए की तरह)। अचानक रेशम महगा हो गया और गज के लिए उसका उपयोग असम्भव है। ऐसी दशा में वहां वाले क्या करेंगे ? अवश्य ही रेशम की जगह वह और किसी वस्तु का उपयोग करने लगेंगे जो रेशम से सस्ती हो। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि इस विषय का नियन्त्रण सरकार करती है और उसने रेशम की जगह सूत के व्यवहार की आज्ञा न देकर यह आज्ञा दे दी कि १६ अगुल के बजाय अब २४ अगुल का एक गज समझा जायगा। ऐसी आज्ञा

रखते हुए, रुपए मे चादी का परिमाण कम कर देती या नए रुपए ढालती ही नही। कई व्यक्तियो और सस्थाओ ने उस समय यह प्रस्ताव किया था कि दो या तीन रुपए के ऐसे सिक्के निकाले जाय जिनमे चादी का परिमाण फी रुपया १६५ ग्रेन के हिसाव से न होकर इतना कम हो कि चादी का दाम काफी ऊँचा होते हुए भी रुपयो के चलन से निकल जाने का कोई खतरा न रहे। दरअसल नए रुपए ढालने की कोई ऐसी जरूरत ही न थी। व्यापारियो पर ही यह जिम्मेवारी छोड देनी चाहिए थी कि अपना देना चुकाने के लिए उन्हे जो व्यवस्था उत्तम जचती, करते।

पूछा जा सकता है कि व्यापारी आखिर क्या करते ? उत्तर यह है कि इगलैण्ड को अगर हमारे माल की जरूरत थी तो वह हम सोना देता—खास कर जव शान्ति स्थापित हो गई और कई देशो मे सोने को वाहर जाने की स्वतन्त्रता मिल गई—या इगलैण्ड हमसे कर्ज लेता। इसके वजाय किया यह गया कि हमारा स्टैण्डर्ड बदल दिया गया—एक्सचेज की जो ऊँची-से-ऊँची दर उस समय हो सकती थी, कायम कर दी गई—नोटो की छूट कर दी गई और नोटो की पुश्ती के लिए लन्दन मे ब्रिटिश 'ट्रेजरी विलो' के रूप मे स्टर्लिग कागज रखे जाने लगे। इन ट्रेजरी विलो के द्वारा भी ब्रिटिश सरकार ने हमसे कर्ज लिया, पर यह कर्ज ऐसा न था जिसे हमने अपनी खुशी या रजामन्दी से दिया हो। यह तो हमसे जवरन लिया हुआ कर्ज था—और जिस समय बैविगटन स्मिथ कमेटी की रिपोर्ट तैयार हुई उस समय यह कर्ज ८३ करोड रुपए से ऊपर हो चला था।

या विधान का एक फल यह होगा कि जो किसीको एक गज देने के लिए बाध्य है उसे १६ की जगह अब २४ अगुल नाप कर देना होगा। एक्सचेंज-रेट बढ़ा देने का नतीजा भी ठीक ऐसा ही हुआ। पहले जो किसीको १) देनें को वाध्य था उसे अब ७ ५३३४४ ग्रेन की जगह ११ ३००१६ ग्रेन सोना (या इसी हिसाब से अपने खेत की उपज) देना पडा। कारण कि रुपया-रूपी गज अब १६ की जगह २४ अगुल की नाप या स्टैण्डर्ड बन गया था।

ऊँची एक्सचेज-दर के द्वारा इस देश मे दाम गिराने के सम्बन्ध में कमेटी ने जो कुछ कहा था उसपर मि० दलाल की टिप्पणी यह थी —

"कहा गया है कि एक्सचेज उठाने का एक अच्छा नतीजा यह होगा कि भारतवर्ष मे दाम गिर जायगे। दाम जरूर गिरेंगे, पर दाम गिराने का यह तरीका ठीक नही कहा जा सकता। भारतवर्ष मे कृत्रिम फुलावट-जैसी अवस्था नही हुई है। वहा फुलावट हुई भी है तो उस प्रकार की जिसे स्वाभाविक विस्तार का नाम देना अधिक उपयुक्त होगा। · · · एक्सचेज-दर ऊँची कर देने से रुपयो मे दाम जरूर गिरेंगे, पर जहा करेन्सी की फुलावट हो वहा गिरावट करके दाम गिराना तो जायज है पर स्टैण्डर्ड या मूल्य के मान मे अदल-बदल करके दाम गिराना जायज नही हो सकता। भारतवर्ष में करेन्सी की मिकदार, दाम ऊँचे होने के कारण बढी है, दाम, करेन्सी अधिक होने के कारण नही बढे है। और बढी हुई करेन्सी का दामो पर कोई खास असर इसलिए नही पडा है कि लोग हर तरह की करेन्सी को दबा कर बैठ गए है। भारतवर्ष मे एक्सचेज ऊँचा होने से दाम जरूर नीचे रहेंगे, पर दाम बढने का जो वास्तविक कारण है वह ज्यो-का-त्यो बना रहेगा।"

कमेटी की दूसरी सिफारिशो में कुछ इस प्रकार थी —

(१) भारत-सरकार, बिना भारत-सचिव की अनुमति प्राप्त किए, एक्सचेज कमजोर पडने पर उलटी हुण्डी बेचने को तैयार रहे। इस उलटी हुण्डी की दर इस बात को ध्यान मे रख कर निश्चित की जाय कि भारतवर्ष से इगलैण्ड सोना भेजने मे क्या खर्च पडता है। इसका अर्थ यह था कि इस देश मे दस रुपए देनेवाले को सरकार लन्दन मे एक सॉवरेन या उतने का स्टर्लिंग (सोना भेजने का खर्च काट कर) दे दे।

(२) भारतवर्ष मे अब सोना बेरोक-टोक आने दिया जाय।

(३) जब तक चादी की तेजी बनी रहे तब तक सरकार थोडी मिकदार मे चलन के काम आने के लिए सोने के सिक्के दिया करे।

(४) रॉयल मिण्ट या ब्रिटिश टकसाल की जो शाखा बम्बई मे खुली थी, और जो बाद मे बन्द कर दी गई थी वह फिर से खोल दी जाय। इसमें

सॉवरेन (गिनी) ढालने की व्यवस्था की जाय। सरकार यह घोषित कर दे कि जो कोई सोना लावेगा उसे नई एक्सचेंज-दर से—अर्थात् एक रुपया = ११.३००१६ ग्रेन खालिस सोना के हिसाब से सॉवरेन मिल सकेंगे।

(५) चांदी की कमी और महंगी के कारण सरकार के लिए अब सॉवरेन के बदले रुपए देना आवश्यक न रहे।

(६) सॉवरेन की कीमत अब १५) के बजाय १०) होगी, इसलिए सरकार यह घोषित कर दे कि अमुक तिथि तक जो कोई सॉवरेन लाकर देगा उसे फी सॉवरेन १५) मिल जायगा। यही बात मोहर के सम्बन्ध में भी रहे, और कुछ समय बाद चलन से मोहर उठा दी जाय।

(७) चांदी के इम्पोर्ट पर जो प्रतिबन्ध है वह यथासम्भव शीघ्र हटा दिया जाय।

(८) एक्सपोर्ट-सम्बन्धी प्रतिबन्ध अभी कुछ समय के लिए बना रहे।

(९) चांदी खरीदने की जो वर्तमान व्यवस्था है उसमें किसी प्रकार के हेर-फेर की हम सिफारिश नहीं करते।

(१०) करेन्सी रिजर्व का जो हिस्सा कागज के रूप में रखा जा सकता है वह कुछ समय के लिए १२० करोड़ बना रहे।

(११) करेन्सी रिजर्व में जितना सोना या स्टर्लिंग* है उसकी नई कीमत २४ पेंस की दर से ठहराई जाय। ऐसा करने से रिजर्व में ३८.४ करोड़ की कमी होगी। यह कमी धीरे-धीरे पूरी कर दी जायगी।

(१२) करेन्सी रिजर्व की जो सोना-चांदी हो वह इसी देश में रखी जाय। बाहर उसी हालत में रह सकती है जब यहां आनेवाली हो या आ रही हो।

(१३) नोट भुनाने के लिए जो सुविधाएँ सर्वसाधारण को पहले प्राप्त थीं वे स्थिति सुधरते ही फिर से जारी कर दी जाय। सरकार को यह अधिकार हो कि वह नोटों के बदले चांदी या सोने के सिक्के दे सके।

(१४) सरकार को जो सोना प्राप्त हो सके वह फिलहाल गोल्ड

---

* इसके लिए सोना और स्टर्लिंग समान माने गए।

स्टैण्डर्ड रिजर्व मे न रख कर पेपर-करेन्सी रिजर्व मे रखा जाय। जब ऐसा करना सम्भव हो तब गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व मे भी काफी सोना रखने की व्यवस्था की जाय, पर इस समय तो सब से सन्तोषजनक व्यवस्था यही हो सकती है कि उस रिजर्व को ऐसी सिक्यूरिटीज* के रूप मे रखा जाय जिनकी मीयाद थोडे ही समय मे पूरी होनेवाली हो।

(१५) गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व के सोने का अधिक-से-अधिक आधा हिस्सा भारतवर्ष मे रखा जाय, पर सर्वसाधारण को वह सिर्फ निर्यात के लिए मिल सके।

कमेटी ने बहुमत से जो सिफारिश की थी उसे भारत-सचिव ने मजूर कर लिया। फरवरी १९२० मे सरकारी विज्ञप्ति निकलते ही एक्सचेज की दर २८ पेस (स्टर्लिंग) से ३२॥ पेस (स्टर्लिंग) हो चली। यह नई दर २४ पेस (सोना) के आसपास थी। पर बाजारवालो को इतनी ऊँची दर के ठहरने का विश्वास न हो सका और उनकी ओर से स्टर्लिंग की माग होने लगी। उद्देश यह था कि पहले रुपयो के बदले ऐसी ऊँची दर से स्टर्लिंग ले लिया जाय, फिर एक्स्चेज गिरने पर उसी स्टर्लिंग से अधिक रुपए बना लिए जाय। सरकार स्टर्लिंग की माग पूरी करने के लिए, कमेटी की सिफारिश के अनुसार उलटी हुण्डी बेचने लगी। विधान मे सशोधन कर सॉवरेन की कीमत १०) कर दी गई और लोग उसे इस दर मे लेने-देने को बाध्य कर दिए गए।

स्टर्लिंग की माग इतनी ज्यादा थी कि सरकार के लिए उसे पूरा करना असम्भव था। उसे नेक सलाह दी गई कि वह माग पूरी करने के प्रयत्न को छोड दे और भारतवर्ष का जो धन लन्दन मे सचित था उसे बरकरार रखे। पर सरकार ने एक न सुनी और उलटी हुण्डी बेचती ही गई। जब इससे भी २४ पेस (सोना) वाली दर कायम न हो सकी तब वह अपनी नीति बदल कर २४ पेस स्टर्लिंग पर एक्सचेज को ठहराने की कोशिश

---

* ३० नवम्बर १९१९ को रिजर्व ३७,४३८,३१७ पौंड स्टर्लिंग था जिसमें ३७,४११,२२४ पौंड स्टर्लिंग सिक्यूरिटीज के रूप में था।

करने लगी। यह नीति-परिवर्तन २४ जून १९२० से किया गया। पर इसमे भी उसे सफलता नही मिली और अन्त मे हार मान कर उसने २८ सितम्बर को उलटी हुण्डी बेचना बन्द कर दिया।

स्टर्लिंग की माग अपरिमित-सी थी,और वह माग पूरी करने की सरकार की शक्ति अत्यन्त परिमित। ऐसी दशा मे एक्सचेज का गिरना स्वाभाविक था। जो दर १ जनवरी १९२० को २७ ५/८ पेस स्टर्लिंग थी वह १ अगस्त १९२० को २२ ५/८ पेस स्टर्लिंग हो चली थी। उसके बाद भी दर क्रमश गिरती ही गई।

१९१९–२० और १९२०–२१ मे सब मिलाकर सरकार ने ५५,५३२,००० पौंड स्टर्लिंग की उलटी हुण्डिया बेची। सरकार को इसके बदले यहा ४७ करोड १४ लाख रुपए मिले। अगर पुरानी दर १६ पेस रहती तो इतने रुपयो के बदले सरकार को कुल ३१,४२६,६६६ पौंड स्टर्लिंग बेचना पडता। इससे स्पष्ट है कि २४ पेसवाली दर को कायम करने के प्रयत्न मे सरकार ने २४,०००,००० पौंड स्टर्लिंग से अधिक गवा दिया। यह धन भारतवासियो का था, जिसे सरकार ने उनके हानि-लाभ की तनिक भी परवा न कर बात-की-बात मे लुटा दिया। पुरानी दर से २४,०००,००० पौंड स्टर्लिंग के ३६ करोड रुपए हुए।

स्टर्लिंग के लिए जो इतनी बडी माग पैदा हो गई वह इस नई ऊची दर के कारण ही। इसलिए यद्यपि यह कहा गया है कि उलटी हुडियो की बिक्री से प्राय ३६ करोड की हानि हुई तथापि यह भी ध्यान मे रखने की बात है कि अगर यह ऊची दर सरकार-द्वारा स्वीकृत न होती तो स्टर्लिंग के लिए जो कृत्रिम माग पैदा हो गई वह न होती और लन्दन मे जो हमारा स्टर्लिंग धन था वह इस प्रकार हवा न हो जाता।

१९१९–२० मे यहा से एक्सपोर्ट बहुत ही बडे पैमाने पर हुआ। सोने-चादी को छोड बाकी चीजो के इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट प्राय १२६ करोड रुपए अधिक का हुआ। पर स्थिति पलटते देर न लगी। १९२०–२१ मे एक्सपोर्ट तो ३२७ करोड से २५८ करोड और इम्पोर्ट २०१ करोड से ३३६ करोड हो चला। १९२१–२२ मे भी ऐसी ही अवस्था रही। जिस समय एक्सचेज

की दर २४ पेंस की जा रही थी उस समय इसके विरोधियो ने कहा था कि इस ऊची दर का परिणाम यह होगा कि एक्सपोर्ट कम हो जायगे और इम्पोर्ट बढ जायगे—और सम्भवत एक्सपोर्ट से इम्पोर्ट का पलडा भारी हो जायगा। ठीक यही हुआ। जून १९२० से ही यह पलडा भारी होने लगा और दोनो वर्षो के अको को मिला कर एक्स्पोर्ट से इम्पोर्ट का पलडा प्राय ९९ करोड रुपए भारी रहा। स्थिति मे इस विपर्य्यय की बहुत बडी जिम्मेवारी एक्सचेज की नई दर पर थी। सर वैलण्टाइन शिरोल अपनी India—Old and New (भारत—प्राचीन और नवीन) नामक पुस्तक मे लिखते है —

"बैबिग्टन स्मिथ कमेटी की सिफारिश को भारत-सचिव ने स्वीकार कर लिया और फरवरी १९२० मे नई दर को कायम करने के लिए उद्योग होने लगा, हालाकि जनवरी मे ही इस बात का सबूत मिल गया था कि आर्थिक स्रोत की गति भारतवर्ष के प्रतिकूल होने लगी थी। रुपए की एक्सचेज दर २ शिलिग सोना होने जा रही थी। कमेटी मे इसके एकमात्र विरोधी बम्बई के सराफा बाजार के पारसी व्यापारी मि० मेरवान जी दलाल थे जिन्हे इस विषय का व्यावहारिक ज्ञान शायद कमेटी के बाकी सब मेम्बरो से अधिक था। उन्होने सिफारिश की थी कि पुरानी एक्सचेज-दर को बदला न जाय।-शीघ्र ही यह बात प्रमाणित होनेवाली थी कि उनका यह कहना बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से पूर्ण था।"

उलटी हुण्डियो की बिक्री और सरकारी नीति की असफलता का उल्लेख करते हुए सर वैलण्टाइन आगे लिखते है —

"जब सरकार ने यह घोषित कर दिया कि वह एक्सचेज-दर २ शिलिग सोना करने जा रही थी तब भारतीय व्यापारियो ने यह मान लिया कि वह ऐसा कर सकती थी और जरूर करेगी। लडाई के दिनो मे उनका स्टॉक प्राय खाली हो गया था—उन्होने दो शिलिग की रेट से हिसाब लगा कर कपडे तथा दूसरी ब्रिटिश वस्तुओ के लिए बडे-बडे आर्डर दिए। उस समय दाम खूब तेज थे। पर माल भारतवर्ष मे पहुँचते-पहुँचते रुपए की एक्सचेज-दर काफी नीचे आ गई थी और दाम भी गिर पडे थे। भारतीय इम्पोर्टर

ने देखा कि यह सौदा उसको बेतरह महगा पडने जा रहा था। . .
बस, उसने माल छुडाने से ही इनकार कर दिया, क्योकि माल छुडाने का अर्थ था उसका सर्वनाश। उससे यह कहना कि व्यापारी को अपना कौल-करार जरूर पूरा करना चाहिए, बिलकुल व्यर्थ था, वह इसका उत्तर यह देता कि इस विषय मे सरकार ही अपना उदाहरण सबके सामने रख चुकी थी—उसने भी एक तरह का कौल-करार किया था कि वह रुपए की कीमत दो शिलिग कर देगी और उससे अपने वचन की रक्षा न हो सकी थी। सरकार की ओर से कहा गया कि उसने कोई कौल-करार नही किया था, पर भारतीय व्यापारी की ओर से इसका जवाव यह दिया गया कि अब तक तो सरकार की वात को लोग इसी प्रकार का महत्व देते आ रहे थे—यहा तो यही समझा जाता था कि उसने जो कुछ कह दिया उसे वह पूरा करके ही रहेगी।"

सर वैलण्टाइन शिरोल भारतीय आकाक्षाओ के और भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के विरोधी और निन्दक थे, इसलिए उनका ऐसा लिखना विशेषतापूर्ण है।

उलटी हुडियो की विक्री-द्वारा जो परिस्थिति पैदा की गई उसे उस समय 'लूटपाट' कहा गया था। इसकी सार्थकता समझने के लिए कुछ वाते ध्यान मे रखने की है। लन्दन मे हमारा जो धन सचित था वह १६ पेस या उससे कुछ ऊँची दर के हिसाब से—अर्थात् जव हमने १५) का माल बेचा तव हमे लन्दन मे एक पौड स्टर्लिंग या उससे कुछ अधिक स्वीकार करना पडा। पर जब दर २४ पेस (सोना) कर दी गई और उसे ठहराने के लिए उलटी हुडिया वेची जाने लगी तव एक पौड स्टर्लिंग ७) मे ही मिलने लगा*। १५) की दर से हमने लन्दन मे जो कुछ जमा किया था उसे

* स्टर्लिंग में उलटी हुडियो की दर २७ ७/३२ पेंस से ३४ ७/३२ पेंस तक थी। स्टर्लिंग सोने की अपेक्षा सस्ता था, इसलिए (२४ पेंस सोना) ३४ ७/३२ पेंस (स्टर्लिंग) होता था। ३४ ७/३२ पेन्स के हिसाब से एक पौड स्टर्लिंग प्राय. ७) का हुआ।

७) की दर से हमे छोडना पडा। यह लूट-खसोट नही तो और क्या था ?

इस लूट-खसोट के लिए दोषी कहा तक भारत-सचिव थे और कहा तक भारत-सरकार, इसका स्पष्टीकरण न हो सका। जनता की ओर से कई वार यह माग पेश की गई कि सरकार इस सम्वन्ध मे भुगते हुए पत्रो और तारो को प्रकाशित करे। पर उसने ऐसा नही किया। अनुमान—जिसकी पुष्टि इतिहास से होती है—यही है कि जो कुछ हुआ, भारत-सचिव की प्रेरणा और दवाव से।

२८ सितम्वर १९२० के बाद उलटी हुडियो की बिक्री तो बन्द हो गई, पर कानूनन दर २४ पेंस (सोना) ही बनी रही—अर्थात् एक सॉवरेन के वदले सरकार केवल १०) देने को वाध्य थी। एक्सचेज गिर जाने के कारण सॉवरेन की वास्तविक कीमत इससे कही ज्यादा थी, और ऐसी हालत मे सॉवरेन करेन्सी के काम न आ सकते थे।

सरकार रुपए लेकर वदले मे स्टर्लिग दे रही थी। इसका अर्थ यह हुआ कि चलन से रुपए या नोट निकले जा रहे थे। १ फरवरी और १५ सितम्बर १९२० के बीच उलटी हुडियो की बिक्री के फलस्वरूप नोटो का चलन १८५ करोड रुपए से घट कर १५८ करोड रुपए हो गया था। इसके अलावा रुपयो के चलन मे भी कमी हुई थी। सिद्धान्तत सरकार के लिए यह सम्भव था कि रुपयो की कमी करके एक्सचेज की दर को जो चाहती, कर देती। पर व्यवहार मे ऐसी कमी करना उस समय सरकार के वस की वात नही थी। इसलिए वह ऐसी कृत्रिम दर को न ठहरा सकी।

पर कुछ भी हो, हमारे शासको का ध्येय यही वना रहा कि रुपए का विनिमय-मूल्य २ शिलिग सोना कर दिया जाय, और वे इसके लिए अनुकूल परिस्थिति की प्रतीक्षा करने लगे।

फरवरी १९२० मे चादी के इम्पोर्ट का रास्ता खुल गया और प्रतिवन्ध एक-एक कर हटाए जाने लगे। २१ जून को सोने का इम्पोर्ट भी खुल गया। पेपर करेन्सी रिजर्व-सम्बन्धी विधान मे सशोधन कर यह व्यवस्था की गई कि सिक्यूरिटीज की हद तो १२० करोड ही रहे पर ऐसा कोई नियम न

हो कि इतनी सिक्यूरिटीज तो स्टर्लिंग मे रहे और इतनी रुपए मे। इस विधान मे दूसरे ऐक्ट द्वारा और भी हेर-फेर किए गए। रिजर्व मे जो सिक्यूरिटीज और सोना था उनकी कीमत नई दर से लगाई गई। एक सॉवरेन पहले १५) के नोट की पुश्ती करता था, अब १०) के नोट की पुश्ती करने लगा। इस कारण रिजर्व मे कुछ कमी पडी, जिसकी पूर्ति भारत-सरकार ने अपने कागज रिजर्व को देकर कर दी।

१८ पेंस का रुपया

जिस समय उलटी हुडियो की बिक्री शुरू हुई (फरवरी १९२०) प्राय उसी समय से चादी का भाव गिरने लगा। उस समय दाम ८२ और ८९॥ पेस के बीच था, पर सितम्बर १९२० तक ५७$\frac{५}{८}$ और ६०$\frac{३}{४}$ पेस के बीच आ चुका था। उसके बाद चादी के दाम यो रहे —

	ऊचे-से-ऊचा	नीचे-से-नीचा
	पेस	पेस
जनवरी १९२०	४२$\frac{१}{२}$	३५$\frac{१}{८}$
दिसम्बर ,,	३७$\frac{५}{८}$	३४$\frac{१}{२}$
१९२२	३७$\frac{३}{८}$	३०$\frac{३}{८}$
१९२३	३३$\frac{१}{१६}$	३०$\frac{१}{२}$
१९२४	३६$\frac{१}{१६}$	३१$\frac{१}{२}$
१९२५	३३$\frac{७}{१६}$	३१$\frac{१}{१६}$

एक्सचेज का क्रम यह रहा --

		स्टर्लिग	सोना
		पेस	पेस
१ जनवरी	१९२१	१७$\frac{१}{४}$	१२$\frac{१५}{३२}$
,,	१९२२	१५$\frac{१५}{१६}$	१३$\frac{२५}{३२}$
,,	१९२३	१६$\frac{१}{३२}$	१५$\frac{३}{३२}$
,,	१९२४	१७$\frac{५}{३२}$	१५$\frac{१}{१२}$
,,	१९२५	१८$\frac{१}{१६}$	१७$\frac{२१}{३२}$

धीरे-धीरे स्टर्लिग की कीमत बढ़ती गई और जून १९२५ मे इगलैण्ड

मे फिर सोने के मान या स्टैण्डर्ड की प्रतिष्ठा हो गई। उसके बाद स्टर्लिंग और सोने मे मूल्य-सम्बन्धी एकता हो चली।

१ अगस्त १९२१ को रुपए की एक्सचेज-दर स्टर्लिंग मे १५ ३१/३२ पेंस और सोने मे ११ १/३२ पेंस थी। पर कानूनन दर वही २४ पेंस (सोना) थी—अर्थात सरकार एक सॉवरेन के बदले १०) से ज्यादा देने को तैयार नही थी। जाहिरा तौर पर वह चुपचाप बैठी हुई थी, कुछ नही कर रही थी, पर असलियत मे उसने अपनी इस नीति-द्वारा नई करेन्सी की पैदाइश को रोक रखा था। उद्देश था धीरे-धीरे रुपए को महगा करके उसके मूल्य मे मनमानी वृद्धि करना। अनुकूल परिस्थिति का अर्थ था रुपए का ऐसा अभाव कि लोग उसकी कीमत ज्यादा देने को मजबूर हो जाय। कुछ न करके सरकार वास्तव मे ऐसे अभाव को प्रकृत या यथार्थ करना चाहती थी।

२४ जनवरी १९२२ को व्यवस्थापिका परिषद् मे सर विट्ठलदास ठाकरसी ने इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित किया कि—

"एक ऐसी कमेटी नियुक्त की जाय जिसके अधिकाश मेम्बर भारतवासी हो और जो निम्नलिखित विषयो पर विचार करे —

(१) करेन्सी और एक्सचेज-सम्बन्धी वर्तमान नीति,

(२) भारतीय टकसालो मे सोने के सिक्को की अवाधित ढलाई,

(३) गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व को लन्दन से हटा कर भारतवर्ष मे रखने की आवश्यकता।"

उस समय तक दाम काफी गिर चुके थे। कपास, पाट, चाय, लोहा, प्राय सभी चीजो के दाम नीचे हो रहे थे। अगर १९१३ के दाम को १०० मान ले तो फरवरी १९२० मे दाम इस प्रकार थे —

ग्रेट ब्रिटेन ३०३

अमेरिका २३२

और ये दाम गिर कर जनवरी १९२२ मे क्रमश १५९ और १३८ हो गए थे।

भारतवर्ष मे जुलाई १९१४ का दाम १०० माना जाय तो १९२०

का औसत २०४ बैठता था और१९२१ का १८१ होता था। जनवरी १९२० मे यहा के दाम का 'इण्डेक्स नम्बर'—अर्थात् 'सूचक अक' १७८ था।

चादी की बात ऊपर कही जा चुकी है। बैबिग्टन स्मिथ कमेटी ने अपनी रिपोर्ट मे कहा था कि —

"अगर लोगो के विश्वास के प्रतिकूल, ससार मे चीजो के दाम तेजी से गिर पडे तो यह उलट-फेर कर देनेवाली एक नई बात होगी। इस हालत मे हो सकता है कि भारतवर्ष मे मजूरी आदि इसी हिसाब से न गिरे और भारतवर्ष से एक्सपोर्ट इतना कम हो कि जिस एक्सचेज-दर की हम लोग सिफारिश कर रहे है उसे कायम रखना असम्भव हो जाय। अगर परिस्थिति सचमुच ऐसी हो जाय तो इस विषय पर नए सिरे से विचार करना और तदनुकूल कार्य करना आवश्यक होगा।"

सर बिट्ठलदासका कहना था कि परिस्थिति इस समय सचमुच ऐसी ही हो रही थी, इसलिए आवश्यक था कि सारे विषय पर फिर से विचार किया जाय और २४ पेसवाली फरजी दर के कारण व्यापारियो को जो दुविधा या चिन्ता हो रही थी उसका अन्त कर दिया जाय।

पर सरकार की ओर से यही उत्तर मिला कि अभी कुछ भी करना ठीक न होगा—अभी कुछ और ठहरिए और देखिए कि स्थिति कैसी होती है।

२० जनवरी १९२० से भारत-सचिव ने भारत-सरकार पर हुडी करना बन्द कर दिया। तीन साल तक इन हुण्डियो की बिक्री बन्द रही। जब एक्सचेज-रेट १६ पेस स्टर्लिग हो चली तब फिर हुण्डिया बिकने लगी। इस बीच मे भारत-सचिव अपना काम ब्रिटिश सरकार से भारत-सरकार का पावना वसूल कर और लन्दन मे कर्ज लेकर चलाते रहे। इधर सरकारी बजट मे टोटा होने लगा था। १९१८-१९ और १९२२-२३ के बीच प्राय. ९८ करोड का टोटा रहा। इसके कई कारण थे—साधारण व्यय मे वृद्धि, १९१९ के अफगान-युद्ध का खर्च और एक्सचेज को २४ पेस (सोना) करने का प्रयत्न। लेहाजा सरकार को लन्दन मे काफी कर्ज लेना पडा, जो इस प्रकार था —

१९२१-२२ मे	१७,५००,०००	पौड	स्टर्लिंग
१९२२-२३ मे	३२,५००,०००	"	"
१९२३-२४ मे	२०,०००,०००	"	"

सरकारी दर २४ पेंस सोना होने के कारण नई करेन्सी की पैदाइश बन्द थी ही, उधर सरकारी नीति के कारण जो करेन्सी मौजूद थी उसका भी सकोच हो रहा था। यह सकोच कई प्रकार से किया जा सकता था। जब रुपया चलन मे जाता है तब करेन्सी का विस्तार होता है, जब रुपया चलन से खिच कर सरकारी खजाने या रिजर्व मे पहुच जाता है तब करेन्सी का सकोच होता है। जब भारत-सचिव भारत-सरकार के नाम हुडिया बेचते और यहा उन हुडियो के भुगतान के लिए रुपए दिए जाते तब करेन्सी का विस्तार होता। इसके विपरीत जब भारत-सरकार लोगो से रुपए लेकर उलटी हुडिया बेचती तब करेन्सी का सकोच होता। १ जनवरी १९२० और ३१ अगस्त १९२४ के बीच इस प्रकार प्राय ४५॥। करोड रुपए का सकोच हुआ। इसी तरह जब सरकार कर्ज लेती तो करेन्सी का सकोच होता, और जब कर्ज चुकाती तब करेन्सी का विस्तार।

सरकार की नीति कुछ हद तक सफल हो चली और सितम्बर १९२४ मे एक्सचेज-दर १६ पेंस (सोना) पर आ गई। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने उस समय व्यवस्थापिका परिषद् मे दो बिल पेश कर यह विधान कराना चाहा कि स्थायी रूप से एक्सचेज १६ पेंस (सोना) कर दिया जाय। पर इन बिलो पर परिषद् मे विचार न हो सका। इस समय अर्थ-सदस्य सर बेसिल ब्लैकेट थे। उन्होने सरकारी नीति का स्पष्टीकरण करते हुए १९ सितम्बर को कहा कि —

"ऐसे समय मे जब कि हॉलैण्ड, स्विटजरलैण्ड और दक्षिण अफ्रीका जैसे देश भी स्टर्लिंग की गति के विषय मे कुछ और निश्चयपूर्वक जाने बिना सोने के मान या स्टैण्डर्ड की स्थापना को अपने लिए जोखिम का काम समझते है, भारत-सरकार रुपए की एक्सचेज-दर को सोने मे अभी निश्चित कर देना भारतवर्ष के लिए हितकर नही समझती।"

बात यह थी कि सरकार की नीयत १६ पेंस (सोना) से ऊची दर करने

की थी और वह जिस अवसर की प्रतीक्षा मे थी वह अभी पहुचा नही था।

१९२३ मे बाजार मे रुपए की तगी यहा तक बढ गई कि बैंक-रेट ५ प्रतिशत से ९ प्रतिशत कर दी गई। जुलाई १९२४ मे बगाल चेम्बर की कमेटी ने सरकार के पास एक आवेदनपत्र भेजा जिसमे इस तगी की शिकायत करते हुए उसने कहा था --

"प्रत्येक प्रगतिशील देश के लिए प्रतिवर्ष करेन्सी मे वृद्धि आवश्यक है। पर भारतवर्ष मे जैसी परिस्थिति है उसमे यह वृद्धि हो ही नही सकती। इसीलिए यहा रुपए की ऐसी टान हो रही है। एक्सचेज-दर २४ पेंस होने के कारण यह सभव नही कि सोना या सॉवरेन लाकर कोई सरकार को दे और बदले मे नोट ले। फिर भारत-सचिव द्वारा जो हुडिया बेची जाती है उनके फलस्वरूप भी आजकल साधारणत करेन्सी की वृद्धि नही होती। अगर इन हुण्डियो का भुगतान करेन्सी रिजर्व से होता, तो करेन्सी की वृद्धि हो सकती थी। पर अब तो सिर्फ यह होता है कि इम्पीरियल बैंक मे जो रुपया एक खाते मे जमा है वही दूसरे खाते मे डाल दिया जाता है--करेन्सी मे किसी प्रकार की वृद्धि नही होती।"

अर्थ-सदस्य ने परिषद् मे यह स्वीकार किया कि रुपए की काफी तगी हो रही थी, पर इसके इलाज के बारे मे उन्होने इतना ही कहा कि सरकार इस बात की भरपूर चेष्टा करेगी कि स्टर्लिंग के बदले यहा लोगो को करेन्सी दी जाय। साथ ही उन्होने कहा कि --

"कोई भी कार्रवाई करने से पहले इस बात का ध्यानपूर्वक विचार करना होगा कि १६ पेंस सोना या इससे भी ऊची दूसरी दर भारतवासियो के हक मे अच्छी होगी। यह विचार करते समय उन लोगो के हित को खास तौर से याद रखना होगा, जो कर या टैक्स देते है और जो माल के खरीदार और काम मे लानेवाले है।"

इन शब्दो से ही स्पष्ट हो गया कि सरकार की असली नीयत क्या थी। उस समय रुपए की कीमत स्टर्लिंग मे १८ पेंस थी। सरकार चाहती थी कि जब इगलैण्ड मे स्टर्लिंग और सोना दोनो मे फिर एकता हो जाय और वहा

सोने का मान या स्टैण्डर्ड फिर स्थापित हो जाय तब रुपए की एक्सचेंज-दर भी वराबर के लिए १८ पेस सोना हो चले। भारत-सचिव इतने से ही सन्तुष्ट नहीं थे। वह १८ पेस (सोना) मे भी ऊची दर के इच्छुक थे। पर भारत-सरकार को वस्तुस्थिति का जैसा ज्ञान था वैसा उनको नही। सरकार जानती थी कि अगर इससे भी ऊची दर के लिए प्रयत्न किया गया तो यहा ऐसी भयकर स्थिति पैदा हो जायगी जिसे सभालना सभवत उसके लिए असभव हो जायगा। ८ अक्तूबर १९२४ को उसने भारत-सचिव को तार दिया—

"अब आम तौर से लोग यह समझने लगे है कि बाजार मे रुपए की जो तगी है वह सरकार के करेन्सी का सकोच करने या उसके विस्तार को रोक देने का फल है।"

उसी तार मे यह भी कहा गया था कि "अगर हम पेच जडते ही गए और रुपए की तगी बढती ही गई तो आर्थिक सकट उपस्थित होने का बडा खतरा है।"

फिर भी भारत-सचिव की राय न बदली—वह यही चाहते रहे कि एक्सचेज की ऊपरी हद न बाधी जाय। हा, वह इतना करने को राजी हुए कि किसी एक हफ्ते मे ⅛ पेनी से अधिक एक्सचेज को न उठने दिया जाय।

११ अक्तूबर को भारत-सरकार ने फिर तार दिया—

"भारत के हित को, और भविष्य मे अपनी आर्थिक जिम्मेवारी को, देखते हुए हम समझते है कि १८ पेस से ऊची दर मुनासिब न होगी।"

उसने जिस नीति का समर्थन किया वह उसीके शब्दो मे यह थी—

"अपने मन मे हम यह निश्चित कर ले कि रुपए की एक्सचेज-दर १८ पेस स्टर्लिंग की जायगी, और तब तक कुछ न करे जब तक स्टर्लिंग और सोना इन दोनो का मूल्य एक नहीं हो जाता।"

उस समय सारे विषय पर एक नए करेन्सी कमीशन द्वारा विचार होने जा रहा था। रेट के सम्बन्ध मे केवल विचार का अभिनय होनेवाला था, क्योकि विचार तो सरकार पहले ही कर चुकी थी, और होना वही था जो उसे मजूर था। भारत-सचिव तो और भी ऊची दर चाहते थे, इसलिए भारत-सरकार की नीति के सम्बन्ध मे उन्होने उसे व्यग-पूर्वक लिखा

कि जिस समय कमीशन अपनी कार्रवाई शुरू करनेवाला था उसी समय उसको यह जता देना कि इस विषय का निर्णय हो चुका था, और कुछ हो या न हो, शिष्टाचार नही था।

कमीशन की नियुक्ति के सम्बन्ध मे सरकार ने अपना इरादा जनवरी १९२५ मे जाहिर किया। उस समय रुपए की दर १८ पेस (सोना) के आस-पास पहुच चुकी थी। ग्रेट ब्रिटेन मे मई १९२५ मे सोने के मान या स्टैण्डर्ड की फिर से स्थापना हुई। २५ अगस्त को हिल्टन यग की अध्यक्षता मे कमीशन की नियुक्ति हुई।

इस कमीशन के चार मेम्बर भारतवासी थे— सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, सर राजेन्द्रनाथ मुकर्जी, सर मानिकजी दादाभाई और अध्यापक जहागीर कुबेरजी कोयाजी। इनमे सर पुरुषोत्तमदास को छोड और किसीके सम्बन्ध मे जनता को यह विश्वास नही था कि वह विचार-स्वातन्त्र्य का परिचय दे सकेगे या सरकार की इच्छा के विरुद्ध जा सकेगे। कमीशन की दूसरी विशेषता यह कही जा सकती है कि जहा पहले की कमीशन-कमेटियो ने इस विषय के अनुसन्धान के लिए भारतवर्ष मे आने की और गवाहिया लेने की कोई आवश्यकता नही समझी थी वहा इस कमीशन ने इस देश मे भी गवाहिया ली और अनुसन्धान किया। कमीशन ने प्राय एक वर्ष बाद अपनी रिपोर्ट दाखिल की। सर पुरुषोत्तमदास ने बहुमत के विरुद्ध अपना अलग नोट या वक्तव्य दिया। रुपए की दर जून १९२५ मे ही १८ पेस (८ ४७५१ ग्रेन) सोना हो गई थी और कमीशन की रिपोर्ट निकलने तक यह दर प्राय एक साल अपनी जगह कायम रह चुकी थी।

अप्रैल १९२६ मे एक्सचेज कुछ कमजोरी दिखाने लगा। सरकार ने करेन्सी मे ८ करोड की कमी कर दी और १७।। पेस की दर से उलटी हुण्डी बेचने को तैयार हो गई। १९२२ मे तत्कालीन अर्थ-सदस्य के द्वारा सरकार वचन दे चुकी थी कि जब कभी फिर उलटी हुण्डी बेचने की नौबत आवेगी तब सरकार परिषद् की सम्मति लिए विना कोई कार्रवाई न करेगी। पर १९२६ मे विना परिषद् से पूछताछ किए ही वह उलटी हुण्डी बेचने को तैयार हो गई।

वहुमत ने एक्सचेज के सम्बन्ध मे वही राय दी जिसकी उससे आशा की जा सकती थी—यह कि एक्सचेज को १८ पेस पर टिका दिया जाय। उसकी खास दलील यह थी कि इस दर को कायम हुए इतना समय हो चुका—देश मे चीजो के दाम और मजूरी का इससे वहुत कुछ मिलान हो चुका है—अव इसको हटाकर दूसरी दर कायम करने से वडी गडबडी होगी। पाठको को याद होगा कि फौलर कमेटी ने १६ पेस के पक्ष मे भी ऐसी ही वाते कही थी। १६ पेस की तरह १८ पेस भी कृत्रिम ढग से पैदा किया गया और कुछ महीनो के लिए टिकाया गया। फिर एक करेन्सी कमीशन ने आकर यह कहा कि जो चीज जमी हुई है उसे उखाडने की सलाह हम दे ही कैसे सकते है।

मिलानवाली दलील यह है कि एक्सचेज उठने से दाम गिरते है, मजूरी सस्ती हो जाती है— और किसान-जैसे उत्पादक को जहा अपना गल्ला बेचने पर कम रुपया मिलता है वहा साथ ही और चीजे सस्ती होने के कारण उसका खर्च भी कम पड़ता है—इसलिए वह अन्त मे न नफे मे रहता है, न घाटे मे। एक्सचेज की घटावढी थोडे समय के लिए किसीको लाभ पहुचा सकती है, और किसीको हानि। पर अन्त मे सब चीजो का उससे मिलान हो जाता है और यह मिलान हो जाने पर हानि-लाभ का प्रश्न ही जाता रहता है। लेना-देना समान हो गया, किसीकी स्थिति मे कोई अन्तर नही पडा।

वात ठीक-सी जचती है, पर इस सम्बन्ध मे कई प्रश्न किए जा सकते है। क्या गल्ले का दाम गिरने के साथ सरकार ने या जमीदारो ने किसानो से कम लगान लेना शुरू कर दिया था? क्या महाजन इस वात पर राजी हो गए थे कि व्याज मे कमी कर देगे? क्या मजूरो ने सचमुच खुशी-खुशी अपनी मजूरी मे कटौती मजूर कर ली थी, और क्या रेल-भाडा अव दाम गिरने से घटा दिया गया था? अगर नही, तो कैसे कहा जा सकता था कि मिलान हो चुका था? भारतवर्ष का भीतरी व्यापार उसके विदेशी व्यापार से कई गुना वडा है। इस भीतरी व्यापार की सैकडो चीजे ऐसी है जो कभी एक्सचेज या इम्पोर्ट की लिस्ट पर नही चढती और जिनपर

एक्सचेंज का असर पडता ही नही, और पडता भी है तो बहुत कम या बहुत समय बाद। चावल, गेहू, कपास या पाट के दाम पर तो एक्सचेंज का असर फौरन पड गया और किसान को कम पैसे मिलने लगे। पर उसका बोझ प्राय ज्यो-का-त्यो बना रहा। मिलान उसके लिए सार्थक न हो सका। उसे लगान वही देना पडता है, महाजन को ब्याज वही देना पडता है, खेत मे काम करनेवालो को मजूरी वही देनी पडती है। कितनी ही चीजो के, जो उसके काम आनेवाली है, उसे प्राय दाम भी वही देने पडते है जो पहले देने पडते थे। अगर कहा जाय कि इम्पोर्ट की चीजे सस्ती हो गई तो इसका जवाब यह है कि किसान आखिर इनपर खर्च ही कितना करता है ?

सर पुरुषोत्तमदास ने अपने वक्तव्य मे इस विषय की विस्तृत आलोचना की और दिखाया कि १८ पेस दर के कारण दामो मे या मजूरी मे जितनी कमी होनी चाहिए थी, नही हुई थी; इसलिए मिलानवाली दलील थोथी थी। उधर पुरानी दर १६ पेस को फिर से कायम करने के पक्ष मे बहुत कुछ कहा जा सकता था। वह प्राय २० वर्ष तक इस देश मे मूल्य का मान रह चुकी थी। अभी तक यह साबित नही हुआ था कि वह दर कायम नही रखी जा सकती। महासमर के समय की परिस्थिति असाधारण थी। और देशो को भी उस समय मुद्रा-सम्बन्धी कठिनाइयो का सामना करना पडा था। बैबिंग्टन स्मिथ कमेटी की नियुक्ति ऐसे समय मे हुई थी जब कि स्थिति अस्वाभाविकता और कृत्रिमता से परिपूर्ण थी। सरकार भी उसकी बात मानकर ऐसे समय मे कार्रवाई करने चली जब कि और किसी भी देश की ओर से अपनी मुद्रा-सम्बन्धी समस्या को हल करने का कोई प्रयत्न नही हुआ था। अगर दर २४ पेस न की जाती, और १६ पेस रहने दी जाती, तो न तो इतनी हैरानी-परेशानी उठानी पडती, न इतना नुकसान होता। दर इससे नीचे गिरती भी तो बहुत कम समय के लिए। पर जो हुआ, हुआ—अब भी सरकार को चाहिए कि १९१९—२० की भयकर भूल के दुष्परिणाम से देश को बचावे और १६ पेस दर को फिर से कायम कर दे।

सर पुरुषोत्तमदास ने अपने वक्तव्य मे इस प्रश्न के और पहलुओ पर

भी विचार किया और प्रमाणित कर दिया कि प्रत्येक दृष्टि से पुराना चावल ही हमारे लिए पथ्य हो सकता था'।

कमीशन की दूसरी सिफारिशे यह थी—

(१) चलन मे नोट और रुपए रहे और सरकार इनके बदले सोना देने को बाध्य हो, पर वह सोना इस रूप मे हो कि उसका मुद्रा की तरह उपयोग न हो सके ।

(२) करेन्सी-सम्बन्धी सारी व्यवस्था एक बडी बैंक के हवाले कर दी जाय जिसका नाम रिजर्व बैंक हो ।

(३) सॉवरेन अब सिक्का न रहे और उसे लेने-देने को कोई बाध्य न हो ।

(४) कागज के नोटो के बदले जो रुपए देने की व्यवस्था है वह धीरे-धीरे उठा दी जाय । जो पुराने नोट चलन मे है उनके लिए तो यह व्यवस्था रहे, पर नए नोटो के लिए न रहे । पर कानूनन ऐसी व्यवस्था न होते हुए भी व्यवहार मे नोटो के बदले रुपए दिए जाय । एक रुपए के नोट फिर से जारी किए जाय । करेन्सी-विभाग को अधिकार हो कि वह एक रुपए के नोटो को छोड बाकी नोटो के बदले या तो कम कीमत के दूसरे नोट दे सके या—अगर वह चाहे तो—रुपए ।

(५) रुपया लेने-देने को लोग बाध्य बने रहे पर नए रुपए तब तक न ढाले जाये जब तक चलन मे उनका परिमाण काफी कम न हो जाय।

(६) पेपर करेन्सी और गोल्ड स्टेण्डर्ड रिजर्व मिला दिए जाय, और उस सयुक्त रिजर्व मे सोना, चादी या सिक्यूरिटीज का परिमाण क्या हो, यह कानून-द्वारा निश्चित कर दिया जाय ।

(७) हुडियो और चेको पर जो स्टाम्प-ड्यूटी है वह उठा दी जाय ।

सोने के जिस मान या स्टैण्डर्ड की कमीशन ने सिफारिश की थी उसमे सिक्को का कोई स्थान नही था। कमीशन की राय सोने के सिक्को के चलन के खिलाफ थी, इसलिए उसने सिफारिश की थी कि करेन्सी-विभाग सोना लेने-देने को बाध्य तो हो पर वह सोना सिक्को के रूप मे न होकर सिल या पासे के रूप मे हो, और ४९० औंस से कम लेने-देने का किसीको

अधिकार न हो। कमीशन ने इस स्टैण्डर्ड को गोल्ड बुलियन स्टैण्डर्ड—अर्थात् सोने का धात्वात्मक मान बताया। जो गोल्ड एक्स्चेंज स्टैण्डर्ड फौलर-कमेटी की सिफारिश को ठुकरा कर यहा स्थापित किया जा चुका था उसे कायम रखने की कमीशन ने सलाह नही दी। उसने इसका एक दोष तो यह बताया कि ऐसी मुद्रा-प्रणाली में रुपयो का चलन अनिवार्य था और चादी में एक हद से ज्यादा तेजी आते ही रुपए गायब हो सकते थे। वैसी हालत मे इलाज यही हो सकता था कि कम कीमत के नोट निकाले जाय—या 'निकल' के सिक्के जारी किए जाय, या रुपए मे चादी की मात्रा घटा दी जाय। पर कमीशन की राय मे इस प्रणाली का खास दोष यह था कि यह सरल न होकर जटिल थी—इसे समझना सबके लिए आसान नही था—लोगो को अपने इस प्रश्न का कोई सतोषजनक उत्तर न मिल सकता था कि नोट या रुपए के पीछे पुश्ती करनेवाली और उसकी कीमत ठहराने वाली आखिर कौन सी चीज है? इसपर जनता का जैसा विश्वास होना चाहिए, नही था, और बहुत से लोगो का यह खयाल (गलत ही सही) था कि इसमे ऐसी कारसाजी के लिए बहुत गुजाइश थी जिससे भारत का अनिष्ट हो सकता था। कमीशन ने जिस स्टैण्डर्ड की सिफारिश की उसके विषय मे सर पुरुषोत्तमदास का कहना था कि अगर सोना भारतवर्ष मे आने से रोका न जाय या उसके मार्ग मे बिना व्यवस्थापिका परिषद् की स्वीकृति के, किसी प्रकार की बाधा न डाली जाय, तो मै भी सोने के इस धात्वात्मक मान या स्टैण्डर्ड के पक्ष मे हू।

कमीशन ने रिजर्व बैक की स्थापना की जो सिफारिश की थी उसके विषय मे सर पुरुषोत्तमदास का मत था कि इम्पीरियल बैक को ही ऐसी सस्था का रूप दे दिया जाय और कोई नई सस्था खडी न की जाय।

कमीशन की सिफारिशो मे जो रुपए की एक्सचेज दर से सम्बन्ध रखती थी वह लोगो को विशेष आपत्तिजनक जची और उसके विरुद्ध एक देशव्यापी आदोलन खडा हो गया। यह आदोलन अभूतपूर्व था, क्योकि इससे पहले कभी ऐसी सिफारिश या सरकारी कार्रवाई का ऐसा सगठित विरोध देखने मे नही आया था। बात यह थी कि १८९३ या १८९८ की अपेक्षा

आज जनता कही अधिक जाग्रत थी। १९१९-२० से भी वह बहुत आगे बढ गई थी। इसका श्रेय महात्मा गाधी को था। लोग इतने दिनो से बराबर यही देखते आ रहे थे कि सरकार को अपनी मुद्रा-सबधी नीति-रीति वही रखनी पडती थी जो इगलैण्ड के व्यापारियो या पूजीपतियो के हक मे अच्छी थी, न कि इस देश की जनता के। इस नीति-रीति का उद्देश होता आया था भारतवर्ष का दोहन कर इगलैण्ड के मुह मे धारोष्ण पहुचा देना। १६ पेस की जगह १८ पेस एक्सचेज करने की तैयारी भी इसी नीयत से थी। इससे भारतवर्ष के उत्पादको की, करोडो किसानो की, हानि थी। लाभ था ब्रिटिश व्यवसायियो का--इस देश मे ब्रिटिश माल मगानेवालो का, यहा के ब्रिटिश कर्मचारियो का।

सरकार ने निश्चय किया कि व्यवस्थापिका सभा-द्वारा सबसे पहले एक्सचेज की नई दर पास करा ली जाय, फिर और विषयो को हाथ मे लिया जाय। यह जानी हुई बात थी कि व्यवस्थापिका सभा मे जनता के प्रतिनिधियो की ओर से इस प्रस्ताव का घोर-से-घोर विरोध होगा। इसलिए सरकार ने भी अपनी पूरी शक्ति लगा कर १८ पेस को पास कराने की तैयारी शुरू कर दी।

२७ और २८ मार्च १९२७ को परिषद् मे इस विषय पर वाद-विवाद हुआ। अर्थ-सदस्य सर बेसिल ब्लैकेट ने इसका श्रीगणेश करते हुए उन परिणामो का एक बडा ही भयकर चित्र खीचा, जो १८ की जगह १६ पेस के ग्रहण से उपस्थित होनेवाले थे। उनके कहने का साराश यह था कि अगर एक्सचेज की दर १६ पेस कर दी जायगी तो दाम चढेगे, और दाम चढने से चारो ओर बडी अशाति पैदा हो जायगी। मजूरो के तथा ऐसे लोगो के हक मे, जिनकी आमदनी बधी या निश्चित है, इस प्रकार की महगी बहुत ही बुरी चीज होगी।

वास्तव मे दाम बढने की कोई सभावना नही थी, क्योकि जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, १८ पेस के कारण दाम या मजूरी अभी यथेष्ट परिमाण मे गिरी नही थी। अगर रेट उस समय १६ पेस कर दी जाती तो अवस्था मे विशेष अन्तर पड़ने का कोई कारण नही था। गिरने के बजाय दाम जहा थे, प्राय वही बने रहते। उठने की बात तो विभीषिका-मात्र थी, जिसका

उद्देश था कुछ लोगो को डर दिखा कर उनकी सहानुभूति प्राप्त कर लेना। सर पुरुषोत्तमदास ने इस दलील का जवाब देते हुए अपने वक्तव्य मे बहुत ही ठीक लिखा था कि —

"हमारे साथियो ने जो दलील पेश की है उसमे देखने की बात तो आखिर यही है कि जो चीजे यहा पैदा या सर्फ होती है उनके दामो मे १६ पेस दर के कारण कितनी वृद्धि होगी। हमारे साथियो का कहना है कि दामो का मिलान १८ पेस की दर से बहुत कुछ हो चुका है—अर्थात् दाम उस हद तक गिर चुके है, इसलिए अगर दर १६ पेस कर दी गई तो दामो मे पूरे १२॥ प्रतिशत की वृद्धि होगी। पर मै इसे नही मानता। मै यह दिखा चुका हू कि दामो का मिलान अभी बहुत कुछ होना बाकी है, बल्कि यह कहा जा सकता है कि जो होना चाहिए उसका अधिकाश अभी नही हुआ है—अर्थात् दाम अभी गिरे नही, गिरनेवाले है। ऐसी हालत मे अगर दर १६ पेस कर दी गई तो आर्थिक स्थिति मे जो उलट-फेर होगा वह बहुत ही तुच्छ या नगण्य होगा और उससे हानि भी होगी तो बहुत ही कम लोगो की। पर अगर दर १८ पेस हुई तो घोर आर्थिक विपर्य्यय हुए विना न रहेगा। उस विपर्य्यय का अभी आरम्भ ही हुआ है, उसके बुरे-से-बुरे फल तो फलने ही को है।"

परिषद् मे उस समय लोक-पक्ष तीन दलो या पार्टियो मे विभक्त था। एक तो स्वराज्य पार्टी थी, जिसके नेता पडित मोतीलाल नेहरू थे, दूसरी नैशनलिस्ट पार्टी, जिसके नेता प० मदनमोहन मालवीय थे, और तीसरी इडिपेण्डेट (स्वतत्र) पार्टी, जिसके नेता मि० जिन्ना थे। १८ पेस की दर का सभी ने विरोध किया। लोक-पक्ष की ओर से पहला भाषण प० मदन-मोहन मालवीय का हुआ। वह इस विषय के इतिहास से पूरी तरह अभिज्ञ थे और १८९३ से ही देखते आ रहे थे कि सरकार की करेन्सी और एक्सचेज-सम्बन्धी नीति इस देश के लिए कितनी अनिष्टकर थी। उन्होने अपने भाषण मे इस दलील की धज्जिया उडा दी कि १८ पेसवाली दर पूरी तरह जम चुकी थी, उसे उखाडने से बहुत लोगो को गहरी हानि होने का डर था —

"अर्थ-सदस्य ने कहा है कि यह दर प्राय दो साल से कायम है। उनका कहना है कि खुदा के वास्ते अब इस दर को कोई हाथ न लगावे। वह इस बात

की विस्मृति-सी दिखाते है कि हम लोगो ने १९२४ मे ही एक्सचेज को स्थिर कर देने का आग्रह किया था। हम लोगो का प्रस्ताव था कि एक्सचेज १६ पेस कर दिया जाय—यह उन्हे स्वीकार क्यो न हुआ ? उस समय तो उन्हे इतना भी स्वीकार न हुआ कि रायल (शाही) कमीशन-द्वारा इस विषय पर विचार कराया जाय। वाद मे उन्होने इसे स्वीकार भी किया तो लोकमत का निरादर-सा करते हुए। कमीशन के मेम्वरो की नामावली प्रकाशित होते ही हम लोग समझ गए थे कि फैसला वही होनेवाला है जो सरकार को मजूर है। हम लोगो को इस बात का निश्चय हो गया था कि उसका निर्णय १८ पेस के ही पक्ष मे होनेवाला है।"

इसके वाद जो वहस हुई उसमे खास हिस्सा लेनेवाले सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, श्रीयुत घनश्यामदास विडला, मि० जिन्ना, मि० जमनादास मेहता और सर विक्टर सैसून थे—जो सव-के-सव १६ पेस के पक्षपाती थे। दो-एक अगरेज मेम्वरो ने भी इसी पक्ष का समर्थन किया। वडी सरगर्मी मे वहस हुई और १८ पेस के पक्ष मे जो दलीले दी गई थी उनकी वडी छीछा-लेदर की गई। वोटो के लिए काफी खीचातानी रही और सरकार ने सचमुच अपनी पूरी ताकत लगा दी। अन्त मे जब वोट लिए गए तब सरकार के पक्ष मे आए ६८ और विपक्ष मे ६५—अर्थात् तीन वोटो से सरकार की जीत रही, और १८ पेस कायम रह गया।

जो विधान पास हुआ उसके द्वारा व्यवस्था यह हुई कि सरकार को कोई जितना सोना चाहे २१≡)१० तोले के हिसाव से वेच सकता था। सोने को वम्वई टकसाल मे पहुचाना पडता और कोई भी पासा ४० तोले से कम का न हो सकता था। नोटो या रुपयो के वदले सरकार उसी दर से वम्वई मे सोना—या वह चाहती तो लन्दन मे स्टर्लिंग—दे सकती थी। पर १,०६५ तोले से कम सोना न मिल सकता था। स्टर्लिंग देने के लिए सरका[illegible] की ओर से $१७\frac{२९}{६४}$ पेस की दर मुकर्रर हुई—वम्वई से लन्दन [illegible] भेजने मे जो खर्च पडता उसे १८ पेस से काट कर। सॉवरेन लेने-दे[illegible] कोई वाध्य न रहा, पर सरकार २१≡)१० तोला के हिसाव से (अर्थात् १३।-)४ फी सॉवरेन) उन्हे लेने को वाध्य कर दी गई।

सरकार ने अपनी जीत की बड़ी खुशिया मनाई। पर १६ पेंस के पक्ष मे पडनेवाले वोट प्रजा-द्वारा निर्वाचित मेम्बरो के थे, और १८ पेंस के पक्ष मे पडनेवाले प्राय सारे वोट ऐसे मेम्बरो के थे जो सरकार-द्वारा मनोनीत हो कर परिषद् मे आए थे। अगर परिषद् मे सिर्फ प्रजा के प्रतिनिधि होते तो दर १६ पेंस ही होती। इसलिए सरकार की जीत जीत नही, हार थी।

सरकार की ओर से प्रजापक्ष को हराने के लिए कैसी चाले चली गई थी इसपर प० मोतीलाल नेहरू ने वही परिषद् मे कुछ प्रकाश डाला था —

"वोटो के लिए दोनो ओर से जो कैन्वेसिग हुई है उसके सम्बन्ध मे बहुत कुछ कहा गया है। मै यह नही कहता कि कैन्वेसिग होनी ही नही चाहिए, पर इतना मै जरूर कहूगा कि कैन्वेसिग दो प्रकार की हो सकती है—जायज तरीकेवाली, और नाजायज तरीकेवाली। किस प्रकार की कैन्वेसिग हुई है इस सम्बन्ध मे यहा एक घटना का उल्लेख कर देना चाहता हू। काग्रेस की ओर से मि० रफी अहमद किदवाई असिस्टैण्ट ह्विप नियुक्त है। एक रोज उन्हे अपने किसी रिश्तेदार का भेजा हुआ तार मिला कि "खबर मिली है कि आपके वालिद सख्त बीमार है। मै लखीमपुर जा रहा हू। आप भी वहा पहली ट्रेन से पहुचिए—सरदार हुसैन।" तार मिलते ही मि० रफी अहमद ने अपने वालिद को तार दिया और दर्याफ्त किया कि आपकी तबीयत कैसी है? वहा से जवाब आया कि "बिलकुल ठीक है। यह तार क्यो?" मि० सरदार हुसैन मि० रफी अहमद के रिश्तेदार जरूर है, पर वह उस तार के विषय मे कुछ भी नही जानते जो उनकी ओर से भेजा गया था। मेरे लिए न तो यह सभव है, और न आसान कि मै भेजनेवाले का पता लगा सकू, पर यह बताने की आवश्यकता नही कि वह तार किस दल की ओर से भेजा गया था। मै आशा करता हू कि ऐसे तरीको से होनेवाली जीत कोई अभिमान की वस्तु नही समझी जायगी।"

परिषद् मे ही दूसरे मेबर ने इससे भी नाजायज कार्रवाई का जिक्र करते हुए कहा था कि—"जो-जो तरीके काम मे लाए गए थे उन सबपर प्रकाश पडे तो सभ्य ससार चकित और स्तम्भित हुए बिना न रहेगा।"

७

इतिहास की पुनरावृत्ति

रेट कायम कर देना एक बात है, उसे टिकाना और। इस देश मे जब से स्वयसिद्ध मुद्रा नाम की कोई चीज नही रही और करेन्सी की मिकदार सरकार की मर्जी पर रह गई, तब से—जैसा कि पहले कहा जा चुका है—सरकार के लिए कोई भी दर कायम करना और उसे टिकाना सम्भव हो गया। पर यह सिद्धान्त की बात है। व्यवहार मे सरकार की शक्ति और उसके साधन परिमित है, इसलिए सब कुछ उसीकी मर्जी से नही हो सकता। पहले-पहल जब उसने १६ पेस की दर चलानी चाही थी तब उसे इसके लिए कई साल ठहरना पडा था। करेन्सी की मात्रा कम करते-करते वह सफलता के पास पहुची थी। फिर जब वह उसी दर को बराबर के लिए २ शिलिग करने चली तब उसे इस देश के करोडो रुपए लुटा देने पर भी कामयाबी नही हुई और अन्त मे उसे यह प्रयास छोड देना पडा। अब दर १८ पेस कायम कर दी गई, पर इसका यह अर्थ नही कि विधान बनते ही इस दर मे आप-ही-आप स्थायित्व आ गया। जब आर्थिक स्थिति इसके अनुकूल नही थी—अर्थात् जब रुपए की असली कीमत बाजार मे १६ पेस के लगभग थी तब उसके बदले १८ पेस आसानी से कैसे मिल सकता था? हा, उसी पुराने अस्त्र का फिर उपयोग करके—करेन्सी का सकोच करके—सरकार ऐसी स्थिति अवश्य पैदा कर सकती थी कि बाजार को रुपए की नई कीमत स्वीकार करनी पडे। और इस अध्याय मे हम देखेगे कि उसने सचमुच यही किया। १८ पेस दर को टिकाने के लिए सरकार ने फिर उन्ही कृत्रिम उपायो का अवलम्बन किया और जहा तक करेन्सी का सम्बन्ध है, देश को भूखो मार कर उससे रुपए की नई कीमत मजूर करा ली। जो कुछ हुआ वह, और ही पैमाने पर सही, इस देश मे पहले भी हो चुका था।

नई दर के विरोधियो ने सरकार को काफी चेतावनी दे दी थी कि

इसके परिणाम भयकर होनेवाले थे। देश की दृष्टि से यह वहुत अच्छा होता, अगर वे सच्चे भविष्यवक्ता न निकलते और नई दर से इतना अनर्थ न होता। पर उसके भाग्य मे कुछ और ही वदा था, इस कारण नई दर का आधिपत्य आसानी से स्थापित न हो सका और भारतवासियो को इसकी वेदी पर अपने हित का काफी वलिदान करना पडा। विरोधियो की भविष्यवाणी सच्ची साबित हुई, और यह दर अत्यन्त हानिकर। १९२८ को छोड प्राय हर साल एक्सचेज की कमजोरी वनी रही और इसमे वल लाने के लिए सरकार ने हमारा क्या-क्या अनिष्ट नही किया? हमारा जो धन सोने के रूप मे सचित था वह उडा दिया गया— हमारे ऊपर जो कर्ज का वोझ था वह और भी भारी कर दिया गया– हमारे एक्सपोर्ट व्यवसाय और हमारे उद्योग-धन्धो को प्रवल आघात पहुचाया गया और हमारे करोडो किसानो की दशा और भी दीन-हीन कर दी गई।

दर की कमजोरी साल-व-साल वनी रहने के कारण सरकार के लिए भारत-सचिव की माग* पूरी करना, हुडियो के जरिए उनके पास रुपए भेजना असम्भव-सा हो गया, क्योकि जिस हद तक स्टर्लिंग की माग वढती उस हद तक रुपए की कीमत गिरती—अर्थात् एक्सचेज-दर और भी नीचे आ-जाती। इसलिए वाजार मे न जाकर या तो सरकार ने भारत-सचिव को करेन्सी रिजर्व से रुपया उठा लेने दिया, या भारत-सचिव ने उसकी ओर से लन्दन मे कर्ज ले-लेकर अपना काम चलाया। भारत-सचिव के पास कव कितना भेजने की वात थी और कितना वाजार की मार्फत भेजा जा सका, यह नीचे के अको से जाहिर होगा —

---

* पहले तो भारत-सचिव लन्दन में भारत-सरकार के नाम हुण्डियां बेचा करते—अर्थात् स्टर्लिंग लेकर भारत-सरकार से रुपए दिला देते। पर १९२३–२४ से इस प्रणाली में परिवर्तन होने लगा और कुछ समय बाद भारत-सचिव-द्वारा इन हुण्डियों की बिक्री बिलकुल बन्द हो गई। अब भारत-सरकार यहीं टेण्डर मंगाती और यहां रुपए देकर लन्दन में स्टर्लिंग खरीद लेती।

लाख पौंड स्टर्लिंग

	बजट के अनुसार	जो रकम भेजी जा सकी
१९२७—२८	३५५	२८३
१९२८—२९	३६०	३०८
१९२९—३०	३५२	१५२
१९३०—३१	३४५	५४
	१,४१२	७९७

पिछले दोनो साल हालत बडी ही नाजुक रही। १९३०–३१ मे कुल ५,३९५,००० पौंड स्टर्लिंग खरीदा जा सका। प्राय ५७ लाख पौंड स्टर्लिंग सरकार को बेचना भी पडा। १९ नवम्बर १९३० को सरकार के पास स्टर्लिंग बेचनेवालो की ओर से कोई टेण्डर आया ही नही, जिसका नतीजा यह हुआ कि कुछ समय के लिए सरकार बाजार से ही हट गई। १९३१–३२ मे एक्सचेज की कमजोरी इतनी बनी रही कि सरकार कुछ भी स्टर्लिंग न खरीद सकी। उसके रुपए को दबाकर बैठ जाने पर भी रुपए की कीमत जैसी-की-तैसी ही रही।

जब उलटी हुण्डिया बेची गई थी तब भारतवर्ष के सचित सुवर्ण तथा स्टर्लिंग धन को लुटा देने मे सरकार को तनिक भी सकोच नही हुआ था। ३१ मार्च १९१९ को जितने नोट चलन मे थे उनके सैकडे ६५ ९ भाग की पुश्ती रिजर्व मे ऐसे सुवर्ण तथा स्टर्लिंग धन-द्वारा होती थी। एक साल बाद यह परिमाण घट कर १९.६ रह गया था– क्योकि पहले जहा प्राय ११५ करोड (१६ पेस की रेट से) था वहा अब कुल ३२ करोड (२४ पेस की दर से) रह गया था। उलटी हुण्डियो की बिक्री के प्रारम्भ और अन्त के बीच प्राय ७७ करोड का सोना और स्टर्लिंग हवा हो गया। इसके बाद जो समय आया उसमे फिर कुछ सचय हुआ और ३१ मार्च १९२६ को नोटो का सैकडे २६ ५ भाग रिजर्व मे सोने-स्टर्लिंग के रूप मे था। यह रकम थी प्राय ५१ करोड (२४ पेस की रेट से) अर्थात् प्राय २२ करोड (१८ पेस की रेट से प्राय ३० करोड) सोना और प्राय २९ करोड (१८ पेस की रेट से प्राय ३८।।। करोड) स्टर्लिंग।

नई दर का दौरदौरा शुरू होने पर यह धन भी धीरे-धीरे जाता रहा। २२ जून १९३१ को समाप्त होनेवाले सप्ताह मे स्टर्लिंग तो सब-का-सब गायब हो चुका था और सोना कुल १८ करोड रह गया था। जब करेन्सी रिजर्व से स्टर्लिंग सिक्यूरिटीज जाती रही तब भारत-सचिव गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व से सोना ले-लेकर काम चलाने लगे। लन्दन मे इस रिजर्व से जो सोना उठाया जाता उसके मद्दे रिजर्व की भारतीय शाखा मे रुपए दाखिल कर दिए जाते।

उधर सोने और स्टर्लिंग का—और अब दोनो समान थे—यह हाल रहा, इधर सरकार ने रुपए गलाकर बाजार मे चादी बेचनी शुरू कर दी। हिल्टन यग कमीशन ने यह सिफारिश जरूर की थी कि करेन्सी रिजर्व मे चादी इतनी ज्यादा नही रहनी चाहिए—उसका परिमाण घटा देना चाहिए—पर उस कमीशन की ख्वाहिश तो यह थी कि चादी की जगह रिजर्व में सोना रखा जाय। सरकार ने रुपए गला-गला कर बाजार मे चादी तो बेच दी, पर रिक्त स्थान की पूर्ति सोने से नही की। चादी की बिक्री १९२७ में ही शुरू हुई थी। तब से १९३०–३१ के अन्त तक १० करोड औस से ज्यादा चादी सरकार-द्वारा बेची जा चुकी थी। चादी का दाम यो ही गिर रहा था। इस बिक्री से बाजार और भी मन्दा रहने लगा। उधर सरकार को रिजर्व के रुपए गलाकर बेचने से करोडो का घाटा रहा, और सब से दुख की बात यह हुई कि चादी की जगह सोना नही रखा गया।

रिजर्व का सोना और चादी इस प्रकार उडाकर या तो नोटो का चलन ही घटा दिया गया या जहा रुपए थे वहा कोरा कागज रख दिया गया। भारतीय वाणिज्य-व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करनेवाली महासभा (जिसको प्राय फेडरेशन कहते है) सरकार की इस नीति का बार-बार विरोध करती गई। उसका कहना था—और बहुत ठीक कहना था—कि सोने का परिमाण घटते-घटते बेहद कम हो चला था, और अगर यही क्रम रहा तो नोटो की पुश्ती नाम की कोई चीज ही न रह जायगी। १४ फरवरी १९३० को फेडरेशन के प्रस्ताव के उत्तर मे तत्कालीन अर्थ-सदस्य सर जॉर्ज शुस्टर ने कहा कि "परिस्थिति इतनी खराब नही कही जा सकती, क्योकि हमारे

पास जनवरी के अन्त मे प्राय ८८ करोड का सोना या सोने की सिक्यूरिटीज थी। चलन मे जितने नोट है उनका यह प्राय आधा होता है। बैक ऑव् इगलैण्ड के पास तो सोने का परिमाण ८ जनवरी को इससे कम ही था—अर्थात् नोटो के सैकडे ३६ भाग की ही पुश्ती सोने से होती थी।"

हमारे अर्थ-सदस्य ने जानबूझ कर ऐसी बात कही जो असत्य थी। जनवरी १९३० के अन्त मे पेपर करेन्सी रिजर्व मे सोना और सोने की सिक्यूरिटीज मिलाकर कुल प्राय ३५ करोड था। इससे स्पष्ट है कि गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व के सोने को शामिल करके ही उन्होने सोना ८८ करोड़ रुपए का बताया था। पर गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व कागज के नोटो की पुश्ती के लिए तो था नही। वह तो चादी के नोटो अर्थात् रुपयो की पुश्ती के लिए था। असलियत यह थी कि गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व रुपयो की दृष्टि से ही काफी नही था। उस समय करेन्सी रिजर्व के रुपयो को छोड चलन में बाकी रुपए प्राय २०० करोड थे। सोने मे इनकी कीमत प्राय ५० करोड थी। गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व का सोना बेचने पर भी रुपयो की पुश्ती के लिए प्राय १०० करोड की कमी थी। इस सम्बन्ध मे यह भी ध्यान मे रखने की बात है कि चादी की जो कीमत यहा ली गई है वह उस समय की बाजार-दर के अनुसार है। अगर इतनी चादी कभी बाजार मे बिकने को आती तो दर और भी गिरती और उसकी कीमत कम हो जाती। कुछ भी हो, कागज के नोटो के प्रसग मे गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व के सोने की बात करना लोगो को भ्रमान्ध करने की चेष्टामात्र थी।

भारत-सचिव को अपना काम चलाने के लिए न सिर्फ करेन्सी रिजर्व के धन पर हाथ फेरना पडा, बल्कि उन्हे लन्दन मे कर्ज भी काफी लेना पडा। मई १९२३ से १९२७ के अन्त तक स्टर्लिंग मे हमे कोई कर्ज लेना नही पडा था। पर इसके बाद तो स्थिति इतनी बिगडी कि सरकार के लिए लन्दन मे कर्ज लेना अनिवार्य-सा हो गया। बजट मे व्यवस्था न होते हुए भी कर्ज लेना पडता, या सरकार का तखमीना कुछ होता, और असलियत कुछ और ही होती।

स्टर्लिंग में कर्ज—लाख पौंड

	बजट के अनुसार	असलियत
१९२७—२८	कुछ नही	७५
१९२८—२९	,,	१००
१९२९—३०	५२½	१०५
१९३०—३१	६०	३१०
	११२½	५९०

मीमासा-भाग के लेखक श्रीयुक्त बिडला जी ने १८ पेंस दर पास होने से पहले, परिषद् मे यह आशका प्रकट की थी कि बिना लन्दन मे इस प्रकार कर्ज लिए इस दर को टिकाना असम्भव होगा और उन्होने पूछा था कि —

"इस बात की क्या गारण्टी हो सकती है कि १८ पेंस की दर को ठहराने के लिए सरकार को इगलैण्ड मे बहुत बडा कर्जदार न बनना पडेगा? और अगर उसने कर्ज लिए तो ब्याज का देनदार कौन होगा? क्या स्टर्लिंग मे जो कर्ज लिए जावेगे उनका ब्याज चुकाने के लिए इस देश के कर-दाताओ से पैसा वसूल न किया जायगा, और क्या इस कारण उनका बोझ कही-से-कही भारी न हो चलेगा?"

इस बीच मे सरकार की देनदारी किस प्रकार बढी यह नीचे की तालिका से जाहिर होगा —

करोड रुपए

भारतवर्ष मे —	३१मार्च१९२४	३१मार्च१९२७	३१मार्च१९३१
कर्ज	३५८.८१	३७४.४४	४१७.८५
ट्रेजरी बिल जो लोगो के हाथ मे थे	२ १२		५५ ३८
पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक की देनदारी	२४.७९	२९ ५१	३७.०८
कैश सर्टिफिकेट	८.४२	२६ ६८	३८ ४४
दूसरी देनदारी	९२.८२	१२३.०८	१०६.२०
भारतवर्ष मे सारी देनदारी	४८६.९६	५५३ ७१	६५४ ९५

	करोड रुपए		
	३१मार्च१९२४	३१मार्च१९२७	३१मार्च१९३१
इगलैंड मे —			
कर्ज और दूसरी देनदारी १८ पेंस की रेट से	४३२.०४	४५२ ४८	५१७ ०१
भारतवर्ष और इगलैंड को मिलाकर	९१९ ००	१,००६ १९	१,१७१ ९६

ऊपर ट्रेजरी बिलो का जिक्र है। १९३०–३१ मे सरकार की इस रूप मे देनदारी ५५ करोड से ऊपर थी। इन बिलो के द्वारा कुछ महीनो के लिए कर्ज लेना और इस प्रकार बाजार से रुपए को यथासम्भव खीच लेना अब सरकार की मुद्रा-नीति का एक मुख्य भाग बन गया। जुलाई १९२७ मे सरकार ने कुछ कर्ज लेना चाहा, पर उसे यथेष्ट सफलता नही हुई। अगस्त मे उसने ट्रेजरी बिल निकाल कर ऊचे ब्याज पर रुपया लेना शुरू किया। साख गिर जाने के कारण सरकार को यह ऊचा ब्याज देना पडता था। बैंको को डिपॉजिट के लिए जो ब्याज देना पडता उससे प्राय १ प्रतिशत अधिक सरकार को ऐसे कर्ज के लिए देना पडता था। पर एक्सचेज-दर को टिकाने के लिए करेन्सी का सकोच करना सरकार के लिए इतना आवश्यक था कि वह इन ट्रेजरी बिलो के जरिए बाजार से रुपया खीचती ही गई। इधर करेन्सी का कब कितना विस्तार या सकोच हुआ यह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा। इसमे + विस्तार का और – सकोच का सूचक है।

	लाख रुपए
१ जनवरी १९२० से ३१ मार्च १९२१ तक	– ३८,४८
१९२१—२२	– ३,८०
१९२२—२३	– ९,६०
१९२३—२४	+ १८,१५
१९२४—२५	+ १,६०
१९२५—२६	+ १,००

१९२६—२७	– २८,७७
१९२७—२८	– ४,१०
१९२८—२९	+ १,९०
१९२९—३०	– ३२,४१
१९३०—३१	– ३८,६४

इस प्रकार १ जनवरी १९२० और ३१ मार्च १९३१ के बीच करेन्सी प्राय १३३ करोड कम हो चली। देश की जनसख्या और उसकी आवश्यकताए बढ रही थी। इसलिए करेन्सी का बढना भी आवश्यक था। पर बढना दरकिनार, जो करेन्सी थी उसमे भी इतनी कमी कर दी गई। प्रथम महासमर से पूर्व, सर्वसाधारण की भूख मिटाने के लिए सरकार ने हर साल प्राय २२॥ करोड करेन्सी दी थी। महासमर के समय उसे इसकी जगह हर साल प्राय ५० करोड देना पडा था। (इस ५० करोड मे सॉवरेन शामिल नही है, क्योंकि वे इस समय करेन्सी का काम नही कर रहे थे)। देश की आवश्यकताए तो महासमर के समय से भी बढ गई थी, पर यह भी मान लिया जाय कि स्थिति वही थी जो महासमर से पूर्व, तो भी करेन्सी मे हर साल २२॥ करोड रुपए की वृद्धि होनी चाहिए थी। इसके विपरीत हुई हर साल प्राय १२ करोड रुपए की कमी या ह्रास। कोई आश्चर्य नही कि इस अनावृष्टि के कारण एक भयकर दुष्काल उपस्थित हो गया—जल के अभाव से जो गति पेड-पौधो की होती है वही रुपए के अभाव से वाणिज्य-व्यापार और उद्योग-धन्धो की होने लगी। १८९३ और १८९८ के बीच का इतिहास अपने-आप को दोहराने लगा।

ब्याज की दर यहा और देशो के मुकाबिले कितनी ऊची थी यह नीचे दिखाया गया है—

	दिसम्बर के अन्त मे बैंक-रेट (फी सदी)			
	(१९२७)	(१९२८)	(१९२९)	(१९३०)
लन्दन	४½	४½	५	३
न्यूयार्क	३½	५	४½	२
एम्स्टर्डम	४½	४½	४½	३

बर्न	३½	३½	२½	२½
कलकत्ता	७	७	७	६

२० जून १९३१ को दरे इस प्रकार थी —

लन्दन	२½	फीसदी
न्यूयार्क	१½	"
एम्स्टर्डम	२	"
बर्न	२	"
कलकत्ता	६	"

१९२९ मे इम्पीरियल बैंक के विरोध करने पर भी सरकारी आदेश से बैंक-रेट ७ से ८ प्रतिशत कर दी गई थी। परिषद् मे इस विषय पर प्रश्न किए गए तो अर्थ-सदस्य ने कहा कि सरकार ने जो कुछ किया, सोच-समझ कर किया और उसकी जिम्मेवारी मेरे ऊपर है।

१८९३ के बाद भी सरकारी नीति ने इस देश मे ऐसी ही स्थिति पैदा कर दी थी। उस नीति का उद्देश था रुपए की तगी करके उसका मूल्य १६ पेस कर देना। जो तगी इस बार पैदा की गई थी उसका उद्देश था रुपए के मूल्य को १८ पेस पर ठहराना। फौलर कमेटी के सामने सरकारी नीति के समर्थको ने कहा था कि इधर एक्सचेज मे स्थिरता का अभाव रहा है, इसलिए विलायतवालो ने अपनी बहुत कुछ रकम यहा से उठा ली है — बैंको के पास उधार देने के लिए अब उतना रुपया-पैसा नही रहा है और इसी कारण बाजार मे ऐसी तगी है—अर्थात् इस तगी का सरकार के रुपए न ढालने से कोई सम्बन्ध नही था। दूसरे गवाहो ने इस तर्क का खण्डन करते हुए कहा था कि "बात ऐसी नही है। एक्सचेज की स्थिरता से ही किसी देश मे बाहर से पूजी नही आ सकती। पूजी तो तब आती है जब उसका लाभदायक उपयोग हो सकता है, और जहा ऐसी स्थिति होती है वहा एक्सचेज की अस्थिरता भी पूजी के आने को नही रोक सकती। एक्सचेंज-दर गिरते रहने पर भी बाहर से करोडो रुपए आकर यहा के वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योग-धधो मे लग चुके थे। उधर इगलैण्ड और आयरलैण्ड के बीच का एक्सचेज स्थिर होते हुए भी इगलैण्ड से आयरलैण्ड मे जाकर बहुत

कम पैसा लगा था, क्योंकि आयरलैण्ड मे उसके लाभदायक उपयोग के लिए वहुत कम गुजाइश थी। वैंको के पास उधार देने लायक रकम और करेन्सी—इनमे अन्तर था तो इतना ही, जितना टोस्ट और रोटी मे होता है। पर जैसे विना रोटी के टोस्ट असम्भव है वैसे ही विना नई करेन्सी मिले वैंको के लिए उधार देते जाना असम्भव था।"

मि० कैम्पवेल ने—जो वाद फौलर कमेटी के मेम्वर हुए थे—१८९३ मे ही यह चेतावनी दी थी —

"अगर एक्सचेज को टिकाने की चेष्टा की गई तो इसका नतीजा यह जरूर हो सकता है कि वाहरवाले अपनी रकम यहा से उठा ले। एक्सचेज की दर १६ पेंस कर देने की तैयारी हो रही है। ऐसी हालत मे ऐसे लोगो का यह तर्क हो सकता है कि दर इससे ऊँची तो होगी नही, पर सम्भव है कि गिर कर नीची हो जाय, इसलिए वेहतर है कि हम दर गिरने से पहले ही अपनी रकम भारतवर्ष से उठा ले।"

सरकार की नई मुद्रा-नीति से यहा के व्यापार और उद्योग-धधो को जवर्दस्त आघात पहुँचा, और ऐसी अवस्था मे वाहर के धन का कुछ हद तक यहा से उठ जाना अनिवार्य था। पर रुपए के जिस अभाव की शिकायत देश के कोने-कोने से सुनने मे आई और जिसके कारण कितने ही वडे व्यापारी भी तग-तवाह हो गए उसका मूल कारण तो यही था कि सरकार की नीति भयकर गिरावट की हो रही थी और लोगो को नई करेन्सी मिल नही रही थी।

१९२७ के वाद भी वाजार मे रुपए की जो तगी हुई उसका कारण सरकार की ओर से यही वताया गया कि राजनैतिक आन्दोलन से घवरा कर या चिन्तित होकर वाहरवाले अपना पैसा यहा से धीरे-धीरे उठा रहे थे। पैसा उठने का वास्तविक कारण और ही था। लोगो को यह विश्वास नही था कि १८ पेंस की दर अधिक काल तक टिक सकेगी। इसलिए उन्होने नुकसान से वचने के लिए इस दर के रहते अपना पैसा उठा लिया। कुछ लोग इस विचार से भी उठा ले गए कि जव दर गिरेगी तव पैसा वापस लायेगे और इस प्रकार कुछ धन कमा लेगे। पर वाजार की जो वुरी हालत हो

रही थी उसकी तह मे फिर सरकार की वही गिरावट-नीति थी। फर्क था तो इतना ही कि इस वार उस नीति का रूप कही उग्र था—और करेन्सी की वृद्धि ही नही रोक दी गई थी, बल्कि चलन से करेन्सी बहुत मिकदार मे उठा ली गई थी।

१९२३–२४ से १९२५–२६ तक हर साल इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट प्राय ८८ करोड अधिक हुआ, पर बाद के तीनो साल इतने अच्छे न रह सके और एक्सपोर्ट हर साल ४७ करोड ही अधिक रहा। १९२९–३० मे यह आधिक्य बढ कर प्राय ५३ करोड हो गया था, पर एक्सपोर्ट को कम होते देर न लगी और १९३०–३१ मे वह इम्पोर्ट से प्राय ३७॥ करोड ही अधिक रहा।

जिस समय एक्सचेज-दर २४ पेंस की गई थी उस समय उसके पक्ष-पातियो ने जोर देकर कहा था कि ससार मे दाम गिरनेवाले नही, बल्कि और ऊपर चढनेवाले है। बात कुछ और ही हुई, और दाम काफी नीचे गिर पडे। १९२७ मे जब दर १८ पेंस की जा रही थी तब उसके विरोधियो ने कहा था कि ससार मे दाम चढने की तो कोई आशा की नही जा सकती, पर दाम गिरने की आशका जरूर की जा सकती है। और अगर सचमुच ऐसा हुआ—अर्थात् चीजो के सोने मे दाम गिरे—और रुपए की एक्सचेज-दर १८ पेंस रही, तो यहा के किसानो को इन दोनो पाटो की चक्की मे पिसना पडेगा। पर सरकार की ओर से उनका मजाक उडाया गया और कहा गया कि ससार मे दाम गिरने का कोई कारण नजर नही आता—हमे यह मान ही लेना होगा कि दाम स्थिर बने रहेगे। काश कि ऐसा ही होता!

श्री बिडला जी बराबर यह कहते जाते थे कि सरकार को अपना घर सभालना चाहिए—अर्थात् अपने खर्च को घटा कर दिवालिया-पन से बचना चाहिए। ७ मार्च १९२८ को उनके एक भाषण मे हम यह चेतावनी पाते है —

"जो आफत हमारे ऊपर आ पहुची है उसके बा मे भी मै कुछ कहना चाहता हू। पाच साल मे लगातार फसल अ होती आई है। इससे मुल्क मे खुशहाली होनी चाहिए थी। पर हम देखते क्या है? परिषद् के बहुत से मेम्बरो को मालूम होगा कि देश की क्रय-शक्ति बहुत ही कम हो गई

है। कपडे के लिए—चाहे वह स्वदेशी हो या विदेशी—बाजार मे माग बहुत ही कम है। और पाच साल पहले से लोग आज हर तरह ज्यादा गरीब है। आखिर फसल अच्छी होते रहने पर भी यह गरीबी क्यो ? इसका सीधा-सादा जवाब यह है कि करो या टैक्सो के बोझ से मुल्क का दम घुट रहा है। अगर स्थिति को सुधारना है तो सरकार को चाहिए कि अपना खर्च घटावे। जो बीमारी है उसका और इलाज हो ही नही सकता। खर्च मे कहा कितनी कमी होनी चाहिए, इस विषय पर विचार करने के लिए दूसरी* कमेटी बैठनी चाहिए। परिषद् का कर्तव्य है कि इस सारे प्रश्न पर ध्यानपूर्वक विचार करे।"

पर सरकार की ओर से कहा जाता कि न कोई बीमार है न किसी इलाज की जरूरत है। हमारे अर्थ-सदस्य सर् जॉर्ज शुस्टर उन दिनो श्री बिडला जी को निराशावादी कह कर उनका मजाक-सा उडाते और यही कहते जाते कि अनिष्ट की आशका का ऐसा कोई कारण है ही नही !

पर आशावादियो की आशा पूरी न हो सकी। बाद जब बीमारी बहुत बढ गई और सर जॉर्ज शुस्टर के लिए भी अपना असली भाव दबाए रखना असभव हो गया तब वह और ही राग अलापने लगे और सबसे सहानुभूति और सहायता का अनुरोध करने लगे। अब उनका कहना था कि "नाव मझधार मे है, इसे किनारे लगाने की कोशिश मे आप सब मेरा साथ दीजिए।"

पर यह सब होते हुए भी सरकार अपनी नीति का परित्याग करने को तैयार नही थी। सर जॉर्ज शुस्टर को लोगो की सहानुभूति या सहायता की आवश्यकता वही तक थी जहा तक नए टैक्सो का ताल्लुक था। आरभ मे जहा सरकार की ओर से यह कहा जाता कि बीमारी है ही नही वहा अब यह कहा जाने लगा कि अगर अपना बोझ भारी करके मुल्क करोडो रुपए नही जुटाता तो उसकी जान बचने की नही। भारत-सरकार को १९२७-२८ मे दो करोड २१ लाख, १९२८-२९ मे एक करोड छ लाख और १९२९-

---

* ऐसी एक कमेटी १९२२-२३ में बैठी थी।

० मे १ करोड ५६ लाख टोटा रहा। १९३०–३१ मे हालत ज्यादा गडी और पाच करोड से ऊपर नए टैक्स लगने पर भी जहा ८६ लाख वत की आशा की गई थी वहा प्राय १३॥ करोड टोटा रहा।

सरकार ने अपने खर्च को कुछ हद तक घटाया। कर्मचारियो के तन मे १० प्रतिशत की कटौती* भी की, पर परिस्थिति काबू मे लाई गई गेपत करदाताओ का बोझ भारी करके। तीन साल मे प्राय ४२ करोड । कर-वृद्धि हुई—१९३०-३१ के बजट-द्वारा पाच करोड, १९३१-३२ बजट-द्वारा १५ करोड, और बाद के सप्लीमेंटरी बजट-द्वारा २२ रोड की।

आरम्भ मे ही निराशावादियो की चेतावनी पर ध्यान दिया जाता यह नौबत न आती। निराशावादी ही यथार्थवादी थे।

---

* १९३३-३४ के बजट-द्वारा यह कटौती १० से ५ प्रतिशत कर गई और १९३५-३६ के बजट-द्वारा बिलकुल उठा दी गई।

की मार

ऊपर कहा जा चुका है कि इगलैण्ड १९२५ मे गोल्ड स्टैण्डर्ड पर लौट आया। आगे हम देखेंगे कि १९३१ मे वह गोल्ड स्टैण्डर्ड से हट गया। सोने के इस पुनर्ग्रहण और परित्याग के बीच दामो के इतिहास मे एक ऐसे अध्याय का आरम्भ हो चुका था जो ससारमात्र के लिए दारुण-दु ख-पूर्ण था और जिसकी समाप्ति बरसो तक होनेवाली नही थी। हमारा अभिप्राय सितम्बर १९२९ मे आरम्भ होनेवाली मन्दी से है।

पहले महासमर के बाद भी दाम भहरा पडे थे, पर १९२२ मे वे एक सतह पर पहुँच कर रुक-से गए और १९२९ तक प्राय वही बने रहे। इगलैण्ड मे यह सतह लडाई के पहले की सतह से प्राय ५० प्रतिशत ऊँची थी, पर इसका कारण यह नही कि सोने का उत्पादन इस बीच मे इसी अनुपात से बढ गया था। असलियत यह है कि जहा १९१० से १९१४ तक खानो से कुल सोना ४७०,०००,००० पौड का निकला था वहा १९१५ से १९१९ तक कुल सोना ४३०,०००,००० पौड का निकला। सोने का उत्पादन कम होते हुए भी दाम इतने ऊँचे क्योकर हो सके ? इसका उत्तर यह है कि लडाई के दिनो मे सोना चलन से निकल कर रिजर्व बैंको की तिजोरियो मे जा पहुँचा जिसका नतीजा यह हुआ कि नोटो का परिमाण कही-से-कही बढ गया। उदाहरणार्थ—इगलैण्ड मे लडाई से पहले सब मिला कर १५८,०००,००० पौण्ड का सोना था—प्राय १२३,०००,००० पौण्ड चलन मे, बाकी बैंक आव् इगलैण्ड के कोष मे। जब चलन का सोना भी उसके कोष मे आकर केन्द्रीभूत हो गया तब उसके लिए उस सोने के आधार पर पहले की अपेक्षा कही अधिक नोटो का प्रसार करना सम्भव हो गया।

उधर अमेरिका मे बाहर से इतना सोना आया कि १९१४ मे वहा जो स्टॉक था वह १९१९ मे दूना हो चला। वहा सोने का चलन भी बना रहा। सोने का उत्पादन कम होते हुए भी दामो के उस ऊँचे सतह पर कायम रहने का रहस्य यही है कि अमेरिका मे तो सोने की यो ही बहुतायत हो चली, और दूसरे देशो मे सोना चलन से निकल कर रिजर्व बैंको की तिजो-रियो मे भर गया। सोने और नोटो के बीच जो अनुपात पहले था वह अब न रहा—अर्थात् नोटो की पुश्ती के लिए अब पहले की अपेक्षा कम सोना आवश्यक हो चला। सोना केन्द्रीभूत हो गया, अनुपात मे हेर-फेर कर दिए गए—नोटो का प्रसार बढ गया, दामो की सतह ऊँची हो चली।

लडाई की मुसीबत ने इगलैण्ड तथा कई अन्य देशो को गोल्ड स्टैण्डर्ड से अलग कर दिया था। अब जरा अच्छे दिन आए और लोगो को यह दीखने लगा कि सोने की ओर से कोई खतरा नही है, तब उन देशो मे लोक-मत का झुकाव गोल्ड स्टैण्डर्ड को फिर अपना लेने के पक्ष मे होने लगा। अमेरिका मे गोल्ड स्टैण्डर्ड बना हुआ था—वहा का डॉलर एक निर्दिष्ट मात्रा के सोने का प्रतिनिधि था, नोट देकर कोई भी उसके बदले उतना सोना पा सकता था और उसका जैसा उपयोग चाहता, कर सकता था। ऐसी हालत मे इगलैण्ड-जैसे देश के लिए गोल्ड स्टैण्डर्ड पर वापिस आने का व्यावहारिक अर्थ था पौण्ड को डॉलर के साथ बाध देना—अर्थात् डॉलर या सोने मे पौण्ड की कीमत को तरल या चचल न छोड कर उसे स्थिर, निश्चित, निश्चल कर देना।

पर कीमत बाधी जाय तो किस दर से? निर्ख पुराना हो या नया? जब पहले इगलैण्ड और अमेरिका दोनो गोल्ड स्टैण्डर्ड पर थे तब एक पौण्ड ४ ८६ डॉलर की बराबरी करता था। वहा १९२५ मे सरकार ने यह निर्णय किया कि अब आगे से पौण्ड के बदले बे-रोक-टोक सोना मिल सकेगा और निर्ख वही पुराना (अर्थात् १ पौण्ड = ४ ८६ डॉलर) होगा। पर इस निर्णय के विरोधी भी थे जिनका कहना था कि पौण्ड का मूल्य इतना ऊँचा नही होना चाहिए—इससे निर्यात (एक्सपोर्ट) व्यापार को धक्का लगेगा और उद्योग-धधो की गहरी हानि होगी।

इगलैण्ड की देखा-देखी कई और देश गोल्ड स्टैण्डर्ड पर आ गए—जैसे इटली, फ्रास, बेल्जियम, जेकोस्लोवाकिया आदि । पर उन्होने निर्ख पुराना न रख कर नया कायम किया। मसलन फ्रास ने अपनी मुद्रा का नया मूल्य (सोने मे) पुराने १०० की जगह २०.३ ही निश्चित किया ।

प्रत्येक देश की मुद्रा के पुराने सुवर्ण-मूल्य को १०० मान ले तो उसके मुकाबिले उसका नया मूल्य क्या था, यह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा —

इगलैण्ड	१००
इटली	२७.३
फ्रास	२०.३
जेकोस्लोवाकिया	१४.६
बेल्जियम	१४.५
फिनलैण्ड	१३.०
यूगोस्लाविया	९.१
ग्रीस	६.७
पोर्टुगाल	४.१
बल्गेरिया	३.७
रूमानिया	३.१

भारतवर्ष भी इगलैण्ड के बाद गोल्ड स्टैण्डर्ड पर आ गया, पर उसने जो कुछ किया—या यो कहिए कि उससे जो कुछ कराया गया वह दुनिया के पर्दे पर बे-मिसाल था। इगलैण्ड ने १०० की जगह १०० रखा, पर और देशो से उसका अनुकरण न बन पडा। प्रत्येक ने अपनी मुद्रा को सोने से तो जोड दिया, पर उसका मूल्य कही-से-कही घटा कर। हम भारतवासी ही ससार भर म तीसमार खा निकले जिन्हे १०० की जगह १०८ से भी सन्तोष न हुआ और जिन्होने अपन रुपए का मूल्य १६ पेस की जगह १८ पेस अर्थात् १०० की जगह ११२॥ करके दम लिया। पर हम भारतवासियो ने क्या किया? हम तो इगलैण्ड के हाथ की बेजबान—बेबस कठपुतली ठहरे !

१९२२ मे पौड और डॉलर के बीच एक्सचेज की दर १ पौड = ४ २५ डॉलर थी। उस समय इगलैण्ड मे थोक दाम अमेरिका से प्राय १५ प्रतिशत ऊचे थे। अगर यह मान लेने का यथेष्ट कारण होता कि अब आगे दोनो देशो मे दामो की गति समान रहेगी तो एक्सचेज की इसी रेट को स्थायी कर देना उपयुक्त होता। पर इसके खिलाफ यह दलील थी कि आदर्श तो यही हो सकता है कि पौड फिर अपने असली स्वरूप को प्राप्त कर ले—अर्थात् ४ ८६ डॉलर तक पहुच जाय। कारण कि जब तक पौड वहा तक नही पहुच जाता तब तक लन्दन की साख फिर पूरी तरह नही जम सकती और वह फिर एक बार ससार का आर्थिक केन्द्र नही बन सकता। लुप्त गौरव को फिर से प्राप्त करने के उद्देश से ही वहा की सरकार ने १९२५ मे पौड को ४ ८६ डॉलर पर पहुचा कर उसका यही मूल्य स्थिर कर दिया, यद्यपि इगलैण्ड को इसके बाद यह अनुभव होने लगा कि यह जल्दबाजी हो गई—उसे पौड को इस तरह सोने की जजीर से जकडबन्द नही करना चाहिए था।

१९२५ मे लक्षणो से यह प्रतीत होता था कि अमेरिका मे दाम उठने-वाले है, पर वहा उसके बाद दाम उठने के बजाय गिरने लगे। बाकी दुनिया मे भी दामो का झुकाव गिरने की ही ओर था।

इगलैण्ड अगर औरो की तरह अपने दामो को गिरा सकता तो उसके लिए चिन्ता की कोई बात नही थी, पर वह ऐसा करने मे असमर्थ था। कारण यह कि वहा मजदूरी मे कमी करना जरा टेढी खीर थी। कल-कारखानेवालो का कहना था कि विदेशो मे दाम गिर रहे है, हमारे सामने उस प्रतियोगिता का मुकाबिला करने के दो ही उपाय है—या तो एक्सचेज-रेट नीची कर दी जाय या हमे भी उसी हद तक दाम गिराने दिया जाय। पर दोनो मे एक भी सभव न हो सका। न तो सरकार ने रेट गिराई, न मजदूरो ने अपनी औसत मजदूरी मे कोई खास कमी होने दी। कल-कारखानेवाले चीखते-चिल्लाते रहे—लाखो आदमी बेकार बने रहे।

जो सोना अमेरिका जाता वह वहा तिजोरियो मे बन्द कर प्राय निष्क्रिय

कर दिया जाता—सोने की वृद्धि के हिसाब से नोटो का प्रसार बढाया नही जाता। इस कारण अमेरिका के दामो की सतह जितनी ऊची हो सकती थी, नही थी। और जिन देशो से खिच कर सोना अमेरिका जा रहा था वहा गिरावट की नीति से काम लेना आवश्यक हो गया था, इसलिए वहा दाम धीरे-धीरे गिरने लगे थे। इगलैण्ड की देखा-देखी कई देश गोल्ड स्टैण्डर्ड पर आ गए—जिसका अर्थ यह हुआ कि अपने-अपने कोष मे रखने के लिए वे सोने के खरीदार बन गए। उधर सोने के उत्पादन को देखते हुए कुछ विशेषज्ञ यह कहने लगे कि वह ससार की बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए यथेष्ट नही था। मन्दी सोने के अभाव या कमी के ही कारण पैदा हुई, यह तो नही कहा जा सकता, पर इतना जरूर है कि उसमे इसका भी हाथ था। दामो की घटा-बढी को मिटाकर साम्यावस्था मे लाने का जो काम सोना कभी किया करता था वह अब उससे नही हो रहा था और जहा तक दामो पर असर डालने का सवाल था, वह उन्हे नीचे दबा रहा था।

गोल्ड स्टैण्डर्ड या सुवर्णमान की प्रतिष्ठा तो ससार मे फिर से हो गई, पर न तो उसका पुराना रूप ही लौट सका, न उसे वह पुराना वातावरण ही मिल सका। कई देशो मे यह व्यवस्था कर दी गई कि सोना सिक्के के रूप मे न मिल कर सिल या पासे के रूप मे ही मिल सकेगा। इसका उद्देश था सोने को चलन मे जाने से रोकना और उसका उपयोग यथासभव अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के लिए ही होने देना। महासमर से पहले गोल्ड स्टैण्डर्ड, एक्सचेज की रेटो को ही टिकाने मे समर्थ न था, विभिन्न देशो मे दामो को भी प्राय अपनी-अपनी जगह कायम रखता था। अगर किसी देश मे दाम अपेक्षाकृत ऊपर चढते तो वहा का माल दूसरो को महगा पडता, इसलिए वहा खरीदारी कम हो जाती और वहा की स्थिति से फायदा उठाने के लिए दूसरे देशवाले वहा अपना माल विशेष रूप से भेजने लगते। नतीजा यह होता कि वहा बाहर से माल ज्यादा आने लगता और वहा से निकल कर सोना बाहर जाने लगता। सोना कम होते ही बैक व्याज की दर ऊची कर देती और द्रव्य महगा होते ही दाम गिरने लगते। अगर कही दाम अपेक्षाकृत गिरने लगते तो वहा गोल्ड स्टैण्डर्ड इसके विपरीत काम

करता, अर्थात् वहा से माल बाहर जाकर बिकने लगता—वहा सोना बाहर से आने लगता—सोने की वृद्धि होने पर ब्याज की दर गिरती और द्रव्य सस्ता होते ही दाम चढने लगते। इस तरह की हरकतो से क्षुब्धसरोवर मे फिर शाति आ जाती—वैषम्य का स्थान साम्य ले लेता—बिगडी बाते अनतिविलम्ब सुधर जाती।

पर अब वह जमाना नही रह गया था। गोल्ड स्टैण्डर्ड से सम्बन्ध रखनेवाला खेल तो खेला जा रहा था, पर उसके पुराने नियमो की पाबन्दी करने को अब कोई भी देश तैयार नही था। पहले जब एक देश का माल दूसरे देश मे जाकर बिकता तब उसे ऐसे अवरोधो या रुकावटो का सामना करना नही पडता जैसे अब खडे हो चले थे। एक्सचेज-सम्बन्धी परिस्थिति का ऊपर उल्लेख हो चुका है। किसीकी रेट ऊची थी (जैसे इगलैण्ड की), किसीकी बेहद ऊची (जैसे भारतवर्ष की)—और किसीकी बेहद नीची (जैसे फ्रासादि देशो की)। पर व्यापार के मार्ग मे और भी बडी कठिनाइया थी। जिस समतल या प्राय समतल भूमि पर उसे चलने का अभ्यास था वह ऊबड-खाबड ही नही हो चली थी, उसमे कही खाइया खुद गई थी, कही ऊची दीवारे खडी कर दी गई थी।

अक्सर इसके लिए राष्ट्रीयता दोषी ठहराई जाती है और कहा जाता है कि जिन देशो ने ऐसे उपायो का अवलम्बन किया उन्होने दूसरो के साथ अपना भी नुकसान किया। पर जिन्होने खाइया खोदी या दीवारे खडी की उन्होने दूसरो के आक्रमण से अपनी-अपनी जान बचाने के लिए ऐसा किया। ससार से सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता अभी दूर—बहुत दूर थी। बडे राष्ट्र छोटे राष्ट्रो को दोष देते है, पर क्या उनका अपना दिल पाक-साफ था और क्या वे रात-दिन इन्हे हडप जाने की फिक्र मे नही रहते थे? भारतवर्ष की ही बात लीजिए। कभी-कभी उसको भी इसलिए भला-बुरा कहा जाता है कि उसने टैरिफ की दीवार ऊची कर दी—अर्थात् बाहर से आनेवाले माल पर शुल्क बढा दिया। पर क्या भारतवर्ष अपने कटु अनुभव को कटुतर होने देता और विदेशी कल-कारखानो की प्रतियोगिता-द्वारा अपने कल-कारखानो के नष्ट होने का दृश्य देखता रहता? अगर उसने वह दीवार ऊची

की तो उस आक्रमण से अपने-आप को बचाने के लिए—अपनी हस्ती कायम रखने के लिए। "रोना है तो इसीका, कोई नही किसीका, दुनिया है और मतलब, मतलब है और अपना"—जहा सारे ससार का यह हाल हो वहा आत्मरक्षा के आर्थिक उपायो का अवलम्बन करनेवाले देश या राष्ट्र को कोई दोषी क्योकर ठहरा सकता है ? दोष था तो सबका, बल्कि यह कहना चाहिए कि दोष उनका था जो अपने बल का दुरुपयोग कर निर्बल को सताते आए थे और जो आज भी अन्तर्राष्ट्रीयता की वेदी पर अपने तुच्छ-से-तुच्छ स्वार्थ का भी बलिदान करने को तैयार नही थे।

पर यह तो विषयान्तर-सा हुआ जा रहा है। हम यह कहने जा रहे थे कि स्थिति बहुत कुछ बदल गई थी और गोल्ड स्टैण्डर्ड के लिए पुरानी रीति से तारतम्य करना-कराना अब असम्भव-सा हो रहा था। पहले तो ऐसा होता कि किसी देश मे अधिक सोना आने पर द्रव्य सस्ता हो जाता, दाम चढ जाते, वहा बाहर से जिन्स या माल आकर बिकने लगता, फिर इसके बदले सोना बाहर चला जाता और जो वैषम्य उपस्थित हो गया था वह मिट जाता। पर अब यह होने लगा कि जिसके पास सोना पहुचता वह उसे दबा कर बैठ जाता और उस सोने का दामो पर जो असर पड़ना चाहिए था, पडने नही देता। न दाम बढे, न वहा बाहर से जिन्से विशेष रूप से आकर्षित हो सकी। इसपर भी तुर्रा यह कि बाहर के माल पर ड्यूटी इतनी ऊची कर दी गई कि साधारण अवस्था मे जितना आ सकता था उतना भी न आ सका। जो सोना दबाए बैठा था वह अगर माल लेता जाता तो उसका सोना विदेशो मे फैल जाता और दामो को ऊपर उठाने मे सहायक होता। पर उसने जो नीति ग्रहण की उसका अर्थ यह हुआ कि वह सोना लेगा, पर उसे छोडेगा नही। गोल्ड स्टैण्डर्ड का खेल पहले इस ढग से नही खेला जाता था।

इस सिलसिले मे कुछ और बातो का उल्लेख आवश्यक है। जर्मनी पर हर्जाने का इतना भारी बोझ लाद दिया गया था कि उसकी कमर टूट-सी गई। पर वास्तव मे विजित अपने साथ विजेता को भी ले डूबा। इंगलैण्ड खुद अमेरिका का बहुत बडा कर्जदार हो रहा था, पर अमेरिका

उससे माल मे भुगतान लेने को तैयार नही था। अमेरिका की तरह फ्रास भी साहूकार वन गया था, पर उसकी भी नीति यही हो रही थी कि कर्जदारो मे जहा तक हो सके सोने मे ही भुगतान लिया जाय, बल्कि उसने अपनी मुद्रा की कीमत घटाकर अपने निर्यात-व्यापार को उत्तेजन देना और दूसरो के क्षेत्र पर आक्रमण करना भी शुरू कर दिया था। प्राय सबकी नीति यही हो रही थी— अपना माल अधिक-से-अधिक बेचना, दूसरो का माल कम-से-कम खरीदना। ऐसी स्थिति मे वह तारतम्य कैसे हो सकता था जिस पर ससार का आर्थिक स्वास्थ्य निर्भर था ?

बला जब तक टाली जा सकती थी, टाली गई। अमेरिका और फ्रास ने दूसरे देशो को कर्ज दे-देकर परिस्थिति को सम्हालने की चेष्टा की। इससे प्राय दो साल—१९२६ से १९२८ तक—सुकाल-सा बना रहा। उत्पादन की वृद्धि हुई, सुख-शान्ति विराजमान् रही। पर यह अवस्था स्थायी नही थी। रोग जड से तो गया नही था, केवल उसका उभडना कुछ समय के लिए रुक गया था।

कुछ ही समय बाद न्यूयार्क के शेयर-बाजार मे सट्टा ऐसे जोर-शोर से चला कि अमेरिका के ब्याज उपजानेवालो के लिए, दूसरे देशो को देने के बजाय अपने घर के सटोरियो को कर्ज देना कही अधिक लाभदायक प्रतीत होने लगा। फ्रास ने भी दूसरे देशो को कर्ज देने से हाथ खीच लिया। इससे इन देशो की मुसीबत और भी बढ गई। वहा दाम तेजी मे गिरने लगे। उन देशो की दशा विशेष शोचनीय हो चली जो कच्चा माल—मसलन चीनी, रबर, कहवा—पैदा करनेवाले थे। १९२९ मे अमेरिका मे शेयरो के सट्टे ने और भी जोर पकडा। इसका नतीजा यह हुआ कि बाहर से आकर्षित होकर बहुत कुछ पैसा अमेरिका पहुंचने लगा। दूसरे देश अपने-अपने बचाव के लिए तरह-तरह की तरकीबे करने लगे। इगलैण्ड ने अपनी बैंक-रेट अर्थात् ब्याज की दर ६॥ प्रतिशत कर दी। इसके फलस्वरूप वहा दाम और भी नीचे गिरे। आखिर अमेरिका भी मन्दी की हवा के झोके से कब तक बच सकता था ? वहा के शेयर-बाजार मे जो बेहद तेजी आ गई थी वह कुछ ही समय बाद जाती रही और प्रतिक्रियास्वरूप दामो का गिरना शुरू

हो गया। मन्दी की घटा उत्तरोत्तर घनघोर होती गई और थोड़े ही समय मे उसने आकाश-मात्र को आच्छादित कर लिया ।

दाम गिरने मे उद्योग-धधो को जवर्दस्त धक्का पहुँचा। इगलैण्ड आदि देशो मे वेकारी वढ चली । कई देशो ने अपनी-अपनी टैरिफ (आयात-सम्वन्धी शुल्क) की दीवार और भी ऊँची करके आत्मरक्षा करने का प्रयत्न किया। पर जहा सभी आयात को रोकने की ऐसी चेष्टा कर रहे थे वहा निर्यात का कम हो जाना अनिवार्य था, इसलिए अन्त मे प्राय प्रत्येक देश की दशा और भी खराव हो गई। १९३१ के आरम्भ मे स्थिति कुछ सुधरती-सी नजर आने लगी , पर मई का महीना आते-आते वह चादनी जाती रही और रात पहले से भी अँधेरी हो चली ।

नई आफत की घटा ऑस्टिया की ओर से आई । वहा के उद्योग-धधो के साथ जो सबसे वडी वैक सम्वद्ध थी उसका दिवाला निकल गया। जिन चीजो की जमानत पर उसने दूसरो को कर्ज दे रखा था उनकी कीमत गिर जाने से पावने की अपेक्षा देना अधिक हो गया और अन्त मे बेक को टाट उलट देना पडा। इससे वडी घवराहट फैली और दूसरे देशो मे भी लोग वैको से अपने-अपने डिपॉजिट उठाने लगे। जर्मनी ने जुलाई मे अपनी बैको को वन्द कर दिया और ऐसे कठोर नियन्त्रण लगा दिए कि दूसरे देशो की जो रकम वहा जमा थी उसको उठा कर कोई बाहर न ले जा सके। जर्मनी को इगलैण्ड ने बहुत कुछ कर्ज दे रखा था , इसलिए ऐसी स्थिति होते ही बाहरवाले इगलैण्ड से अपनी-अपनी रकम हटाने या खैचने लगे। इगलैण्ड, अमेरिका और फ्रास से कर्ज ले-ले कर भुगतान करता गया, पर जव इसमे भी सोने के स्रोत का प्रवाह वन्द नही हुआ और उसकी स्थिति भयकर हो चली तब सितम्वर मे उसने गोल्ड स्टैण्डर्ड को स्थगित कर अपने स्टर्लिंग को सोने के वन्धन से मुक्त कर दिया। उसकी देखा-देखी और देशो ने भी ऐसा ही किया। इने-गिने देश गोल्ड स्टैण्डर्ड पर रह गए, पर वहा एक्सचेज-सम्बन्धी ऐसे नियन्त्रण हो चले कि लोगो के लिए पहले की तरह भुगतान करना या सोना वाहर भेजना असम्भव हो गया।

यो तो यह मन्दी सब को तबाह करनेवाली थी, मगर खास कर उन देशो को, जो कृषि-प्रधान थे। कल-पुरजो से बननेवाली चीजो के दाम उस हद तक नही गिरे जिस हद तक खेतो की उपज के। एक तो खेती-बारी करने-वाले, कल-कारखानेवालो की अपेक्षा, कही कम चुस्त-चालाक होते है। फिर, यह धधा ऐसा है कि इसकी नीति-रीति मे समयानुकूल परिवर्तन या तो होता ही नही, या थोडा-बहुत होता भी है तो बडी देर और मुश्किल से। अन्न की माग कम हो जाने पर भी किसान करे तो क्या ? न तो वह अन्न उपजाना छोडकर दूसरे धधे मे लग सकता है, न वह कोई सगठन या समझौता करके उत्पादन को ही कम कर सकता है। इधर दुनिया मे काश्तकारी बहुत बढ गई है। अर्जेण्टाइन, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया—जैसे देशो मे खेती बहुत बडे पैमाने पर होने लगी है और अन्न का निर्यात उनके आर्थिक अस्तित्व का मुख्य आधार बन गया है। खेती का विस्तार ही नही बढा है, उसकी गहराई भी बढ गई है—अर्थात् अग्रगामी देशो मे खेती वैज्ञानिक ढग से होने लगी है और इस कारण भूमि की उत्पादन-शक्ति कही-से-कही बढ चली है। भारतवर्ष-जैसे देश मे लोगो को भरपेट मोटा अन्न भी नही मिलता, इसलिए यहा वह दिल्ली दूर है जहा पहुँच जाने पर अन्न की माग तृप्त हो सकती है। पर समृद्धिशाली देशो मे और बात है। वहा लोगो को भरपेट अन्न मिल रहा है। इसलिए अन्न की माग परिमित हो गई है, बल्कि भोजन मे अन्न का स्थान कुछ हद तक मास-मछली, फल-मूल इत्यादि ने ले लिया है, इसलिए अन्न की खपत कम हो गई है। अमेरिका का उदाहरण देते है। वहा १८८९ मे फी शख्स पीछे २४४ पौण्ड गेहूँ का आटा लगा था। पर १९२९ मे यह मात्रा घट कर १७५ पौण्ड रह गई थी। ऐसी स्थिति मे दाम गिरने के कारण, कृषि-जीवी लोगो को उन लोगो की अपेक्षा विशेष क्षति-ग्रस्त होना पडा जो तैयार माल बनानेवाले थे या अपनी जीविका के लिए उसपर निर्भर थे। एक ओर अन्न की पैदावार बढ रही थी, दूसरी ओर उसकी खपत कम हो रही थी। भारतवर्ष—जैसे देशो मे अन्न की वास्तविक कमी थी, पर वहा के लोग इतने दीन-हीन थे कि ऐसी सस्ती मे भी उन्हे पेट भर अन्न मिलना असम्भव था।

मन्दी के कारण दाम कहा तक गिरे यह नीचे के सूचक अंको से जाहिर होगा —

(थोक दाम)

	कलकत्ता	इगलैण्ड
	जुलाई १९१४ = १००	१९१३ = १००
१९२९ सितम्बर	१४३	१३५.८
१९३० ,,	१११	११५.५
१९३१ ,,	९१	९९.२
१९३२ ,,	९१	१०२.१
१९३३ ,,	८८	१०३.०

पर जिन वस्तुओ के दाम ऊपर लिए गए है उनमे निर्यात और आयात दोनो ही शामिल है। अगर उनका पृथक्करण किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि जिस हद तक निर्यात (अर्थात् यहा से बाहर जानेवाली) वस्तुओ के दाम गिरे उस हद तक आयात (अर्थात् बाहर से यहा आनेवाली) वस्तुओ के नही। इन सूचक अको को देखिए —

कलकत्ता (१९१४ = १००)

	निर्यात वस्तुओ के दाम	आयात वस्तुओ के दाम
१९२९ सितम्बर	१३३	१५०
१९३१ दिसम्बर	८१	१२४
१९३२ ,,	६९	११५
१९३३ ,,	७३	११२

पर इन अको से भी परिस्थिति की भीषणता का पूरा पता नही चलता। निर्यात वस्तुओ मे कुछ ऐसी है जिनके उत्पादन का व्यवसाय विशेष रूप से सगठित है। मन्दी की मार इनपर वैसी नही पडी जैसी साधारण कृषि-व्यवसाय पर। चाय का उदाहरण देते है। यो तो इस देश की पैदावार में यह भी शामिल है और करोडो रुपए की चाय यहा से बाहर जाती है, पर यह व्यवसाय प्रधानत विदेशियो के हाथ मे है और चाय उपजानेवाले धान या पाट उपजानेवालो से कही अधिक शिक्षित, सगठित और शक्ति-

शाली है। ऐसी स्थिति मे उन्होने जिस तरह अपनी रक्षा कर ली उस तरह दूसरो के लिए करना असम्भव था। चाय के व्यवसायियो और भारत-सरकार के सहयोग से उसका उत्पादन परिमित कर दिया गया, जिससे दामो का गिरना रुक गया और कुछ समय वाद दाम चढने भी लगे। १९१४ (= १००) के आधार पर १९२९ सितम्बर मे चाय के दाम १२९ थे, मई १९३३ मे ७४ और मई १९३४ मे १४७ थे। पर यह खुशनसीबी उन चीजो को हासिल नही हो सकती थी जिन्हे उपजाने मे यहा के किसानो का हाथ है और जिनपर उनका अस्तित्व निर्भर है। नीचे के सूचक अको से यह स्पष्ट है—

जुलाई १९१४ = १००

	सितम्बर १९२९	मई १९३३	मई १९३४
चावल	१२४	६०	६५
गेहू	१३५	८९	७२
तेलहन	१७५	७२	९२
पाट	९०	५०	३७
कपास	१४६	८४	७१

दामो के गिरने के कारण किसानो की आय कही-से-कही कम हो गई। नीचे दिए गए अको से इसपर प्रकाश पडता है। तालिका मे, किसानो को मिलनेवाले दामो के आधार पर, यह दिखाया गया है कि प्रत्येक प्रान्त की खेती की खास पैदावार की कीमत पर मन्दी का क्या असर पडा—

(लाख रुपए)

	१९२८—२९	१९३२—३३
मद्रास	१,८०,७८	९९,३३
वम्वई	१,२०,५२	८३,८६
वगाल	२,३२,५९	९०,५४
संयुक्त प्रान्त	१,४०,५२	९१,०१
पजाव	७६,७८	४८,५३

बिहार-उडीसा	१,३५,१७	५६,५५
मध्य प्रान्त	६८,७७	३५,४०
	९,५५,१३	५,०५,२२

अर्थात् जहा १९२८–२९ मे इन प्रान्तो की खेती की खास पैदावार की कीमत प्राय ९॥ अरब रुपए कूती गई थी वहा १९३२–३३ मे वह प्राय. ५ अरब रुपए ही कूती जा सकी। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि किसान को जहा मन्दी आरम्भ होने से पहले १) मिलता था वहा उसे अब सिर्फ ॥) मिल रहा था। पर उसकी देनदारी प्राय ज्यो-की-त्यो खडी थी—लगान, कर, न्याज इनमे किसी प्रकार की कमी नही हुई थी। कर्ज के बोझ से यहा के किसान यो ही दबे हुए थे– अब गल्ले की सस्ती के कारण उस बोझ का दबाव इतना बढ गया कि उनके लिए सास लेना भी कठिन हो गया। यहा यह ध्यान मे रखने की बात है कि भारतवर्ष मे एक्सचेज की रेट ऊची होने के कारण दाम पहले से ही नीचे थे। किसान को जहा १५ रुपए (१६ पेस की दर से) मिलना चाहिए था वहा उसे प्राय १३।-। (१८ पेस की दर से) ही मिल रहा था। और उत्पादको की भी यही स्थिति थी। मन्दी ने आकर व्यथित की व्यथा और भी बढा दी—उसका दु ख असह्य कर दिया। हमारे किसान और अन्य उत्पादक दोनो ओर से मारे गए। यह इस देश की दुरवस्था की असाधारणता थी।

बिडला जी अपने एक तत्कालीन लेख* मे इस मन्दी के सम्बन्ध मे लिखते है—

"वर्तमान आर्थिक सकट अनजान लोगो के लिए एक अजीव पहेली है। इसके पहले भी आर्थिक सकट आते थे, किन्तु उनका जन्म किसी प्रकार के दैवी-मानुषी प्रकोप, महामारी, अग्नि-प्रलय, जल-प्रलय, अनावृष्टि, भूकम्प, राजविप्लव ऐसे-ऐसे कारणो से होता था। कारण मिट जाने पर स्थिति सुधर जाती थी। उस समय रेल-तार न होने के कारण दुनिया आज की तरह छोटी न थी, स्थानीय कष्ट अपनी सीमा के भीतर ही कष्ट-

---

* 'पानी में भी मीन पियासी' ("बिखरे विचार", पृ० १४९)

प्रद होते थे। किन्तु आज के आर्थिक सकट का ढग कुछ अनोखा है। न महामारी है, न प्लेग है, न राजविप्लव है, न अनावृष्टि या अतिवृष्टि है, न अग्नि-प्रलय है, भूकम्प तो अभी हाल मे ही हुआ है। फिर भी चारो ओर से तवाही की आवाज आती है। खेत धान्य से भरे हुए है, किन्तु पेट खाली है। माल बेचनेवाले लालायित है, गोदाम ठसाठस भरे हुए है, इधर लेनेवाले चीजो के लिए तरस रहे है। चीजे सस्ती है, किन्तु गाठ मे दाम नही। सामने हलवे से भरी थाली रखी है और पेट मे भूख है, परन्तु हाथ बधे है और होठ सी दिए गए है। ऐसी ही आज की हालत है। पुराने जमाने मे जब फसल की बहुतायत होती थी और दाम मन्दे होते थे तब उसे लोग सुकाल कहते थे। आज भी चीजो की बहुतायत है, दाम भी मन्दे है, तो भी सुकाल नही, दुष्काल है। अमेरिका मे "चीजे कम पैदा करो"--इसकी धूम है। यहा भी "पाट कम बोओ", "गेहू कम बोओ"--ऐसी सलाह देनेवालो की कमी नही। जहा सुभिक्ष की चाह थी, वहा दुर्भिक्ष मे मुक्ति सूझती है। कल-कारखानेवालो ने तो पैदाइश कम करके अपनी स्थिति सुधार ली है। उदाहरणार्थ, चाय और चटकलवालो ने ऐसा किया है और कोयलेवाले करने की तैयारी मे है। किसानो मे इतना एका नही कि इस तरह बधेज के साथ पैदाइश घटा ले, तो भी वे कुछ इसी तरह की फिक्र मे है। क्या अजब जमाना है! जहा बहुतायत के लिए लोग तरसते थे, वहा बहुतायत के मारे लोग परेशान है।"

और यह परेशानी अभी कई साल तक रहनेवाली थी।

९

स्टर्लिंग से गंठबन्धन

पाठको को स्मरण होगा कि हिल्टन यग कमीशन ने रुपए को सोने का प्रतीक बनाने का प्रस्ताव किया था। सरकारी विधान ने रुपए को सोने और स्टर्लिंग का प्रतीक बना दिया। १९२७ मे जो ऐक्ट पास हुआ उसमे यह व्यवस्था थी कि सरकार सोने के बदले रुपया दे, और रुपए के बदले सोना अथवा स्टर्लिंग। व्यवहार मे वह सोने के बदले रुपए देती थी, और रुपए के बदले स्टर्लिंग। इगलैण्ड मे उन दिनो स्टर्लिंग के नोट सोने के प्रतीक थे। इसलिए स्टर्लिंग के रास्ते भी रुपया सोने पर ही पहुच जाता था।

१८९३ मे चादी की टकसाल बन्द करने के समय कहा गया था कि रुपया सोने का प्रतीक होगा। हमको वचन दिया गया था कि यहा विशुद्ध गोल्ड स्टैण्डर्ड (सुवर्ण-मान) की स्थापना होगी। पर गोल्ड स्टैण्डर्ड की जगह गोल्ड एक्स्चेज स्टैण्डर्ड स्थापित किया गया। हिल्टन यग कमीशन की सिफारिश हुई कि गोल्ड एक्स्चेज की जगह गोल्ड बुलियन (धात्वात्मक) स्टैण्डर्ड की प्रतिष्ठा की जाय, पर जो विधान बना उसने इस देश को कुछ और ही स्टैण्डर्ड दिया। यह एक गगा-जमुनी चीज थी जिसमे सोने से स्टर्लिंग की प्रधानता थी और स्टर्लिंग सोने का प्रतीक था, इसलिए कहना चाहिए कि यहा वही पुराना गोल्ड एक्स्चेज स्टैण्डर्ड, कुछ हेरफेर के साथ, काम कर रहा था। हा, लक्ष्य यही था कि धातु के रूप मे ही सही, यहा विशुद्ध गोल्ड स्टैण्डर्ड की स्थापना की जाय।

१९२७ मे यहा मुद्रा-सबधी जो व्यवस्था की गई वह १ अप्रैल (१९२७) से १९ सितम्बर १९३१ तक चली। २० सितम्बर को यह घोषित किया गया कि इगलैंड मे मूल्य का मान अब सोना न रह गया था—अर्थात् वहा से गोल्ड स्टैण्डर्ड उठ चुका था। २१ दिसम्बर को यहा बडे लाट ने एक

फर्मान निकाल कर रुपयो के बदले सरकार के सोना या स्टर्लिंग देने की व्यवस्था उठा दी। इसका अर्थ यही हो सकता था कि सरकार रुपए को न सोने से सम्बद्ध रखना चाहती थी, न स्टर्लिंग से—वह रुपए के मूल्य को हर तरह के बन्धन से मुक्त कर देना चाहती थी। पर उसी दिन लन्दन मे भारत-सचिव ने यह ऐलान किया कि रुपए का मूल्य १८ पेस स्टर्लिंग रहेगा। श्रीयुत घनश्यामदास जी बिडला, जो उस समय लन्दन मे थे, अपनी एक पुस्तक* मे लिखते है—"इगलैण्ड ने आखिर गोल्ड स्टैण्डर्ड छोड दिया। भारतवर्ष सोने से तो हट गया पर स्टर्लिंग से वह अभी तक बधा हुआ है। शुस्टर ने शिमले मे कुछ कहा, और होर ने फेडरल कमेटी मे कुछ। जान-बूझ कर यहावालो ने पीछे बेईमानी की है।"

इस पुस्तक के पूर्वार्द्ध मे लिखा है कि प्रतीक और स्वयसिद्ध मुद्रा का तलाक हो जाने पर "प्रतीक की कीमत कटी पतग की तरह हो जाती है और जैसे हवा के झोको के बल पर पतग गिरती है या उठती है उसी तरह प्रतीक की कीमत भी चलन की फुलावट की कमी-बेशी के आधार पर झिलोरे खाती रहती है।" मान लीजिए कि रुपए का तलाक जहा सोने से हो गया था वहा स्टर्लिंग से भी हो जाता। उस हालत मे रुपए की गति उसी कटी पतग-सी होती। उसका विनिमय-मूल्य इस बात पर निर्भर करता कि चलन मे उसकी मिकदार क्या थी—उसके लिए माग कैसी थी—यहा इस देश मे वह कितनी क्रय-शक्ति अथवा मूल्य रखता था। कटी पतग पर आदमी का कोई बस नही रह जाता, क्योकि हवा आदमी का हुक्म माननेवाली नही है, पर चलन मे फुलावट या गिरावट करके—या यो कहिए कि उसका विस्तार या सकोच करके—रुपए की कीमत घटाई-बढाई जा सकती थी। सोने या स्टर्लिंग का प्रतीक न रहने पर भी रुपए की अपनी कीमत हो सकती थी और उस कीमत का रुपए की चादी की कीमत से ऊपर रहना भी सभव था।

पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अधिकारियो ने एक बार रुपए को स्वतत्र कर फिर कुछ ही घटो बाद अपना विचार बदल दिया और उसका

---

* 'डायरी के कुछ पन्ने"

स्टर्लिंग से गठबन्धन कर दिया। २४ सितम्बर को वडे लाट ने एक नया फर्मान निकाल कर २१ सितम्बर के फर्मान को मन्सूख कर दिया—कानूनन परिस्थिति फिर वही हो चली जो २१ सितम्बर से पहले थी। हा, रुपए के बदले स्टर्लिंग मिलना पहले से जरूर मुश्किल कर दिया गया। अब स्टर्लिंग सर्वसाधारण को नही, बल्कि कुछ खास बैंको को ही मिल सकता था। रेट वही पुरानी रही—एक रुपए के १७$\frac{2}{3}\frac{5}{8}$ पेस। इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई कि किस प्रकार का देना चुकाने के लिए स्टर्लिंग मिल सकता था। रुपया अब स्टर्लिंग का प्रतीक हो गया, इसलिए सोने मे उसकी कीमत वही हो सकती थी जो स्टर्लिंग की। अगस्त १९३१ के अन्त मे यहा सोने का दाम २१॥।~)। तोला था—यह दिसम्बर १९३१ मे २९=) हो चला था। आने वाले दिनो मे यह दाम और भी ऊचा होने वाला था। रुपया अब स्टर्लिंग से बधा हुआ था, इसलिए सोने के मुकावले जिस हद तक स्टर्लिंग गिरता उसी हद तक रुपए को भी गिरना पडता। उसकी अपनी कोई हस्ती नही थी।

भारतवर्ष मे इस समय लोगो की आर्थिक अवस्था शोचनीय थी। इधर सरकार की जो मुद्रा-नीति चली आ रही थी उसके भयकर फल अब प्रत्यक्ष होने लगे थे। मन्दी के कारण दाम यो ही नीचे थे, पर इस देश मे ऊँचे एक्सचेज ने दामो को और भी नीचे गिरा दिया था और गाव मे रुपए का भीषण दुष्काल उपस्थित कर दिया था। ऐसे समय मे जब सोने की कीमत (रुपयो मे) ऊँची हो चली तब लोगो को इसका सहारा-सा मिल गया और वे सुनारो के हाथ अपना जेवर इत्यादि बेच कर अपना काम चलाने लगे। पर यह सोना उन सुनारो के पास कव तक टिक सकता था? थोडे ही समय मे इस देश से सोना विदेश जाने लगा और कुछ ही महीनो के अन्दर प्राय ५० करोड का सोना विदेश चला गया। इस सोने के वदले मिलनेवाले स्टर्लिंग की वहुतायत हो जाने से, स्टर्लिंग की विक्री पर किसी प्रकार का नियन्त्रण रखना अब अनावश्यक हो गया और ३१ जनवरी १९३२ के बाद उसकी विक्री वे-रोक-टोक होने लगी।

रुपए का स्टर्लिंग से गठबन्धन भारत-सचिव के दवाव से किया गया।

लन्दन मे उस समय गोलमेज परिषद् के सिलसिले मे जो थोडे से भारतीय नेता या प्रतिनिधि मौजूद थे उन्होने वहा सरकारी नीति का घोर विरोध किया और भारत-सचिव को महात्मा गाधी के सन्तोष के लिए इस विषय पर कुछ कहने-सुनने को मजबूर किया ।

श्री बिडला जी अपनी "डायरी"* मे प्रसगवश लिखते है —

"आज (६ अक्तूबर १९३१) शाम को इण्डिया ऑफिस मे सर हेनरी स्ट्रॉकोश के साथ दगल हुआ। सभापति का आसन पहले तो भारत-सचिव सर सैमुएल होर ने ग्रहण किया, पर मन्त्रिमण्डल की मीटिंग थी, इसलिए सर रेजिनल्ड मैण्ट को अपना पद देकर कुछ ही मिनट बाद चलता बना। और बहुत से लोग उपस्थित थे—गाधीजी, सर पुरुषोत्तमदास, मि० जिन्ना, सर मानिकजी, सर फिरोजशाह सेठना, के० टी० शाह, प्रो० जोशी, रगास्वामी अयगार इत्यादि। गाधीजी प्राय ७ बजे कार्यवश उठकर चले गए। ५॥ बजे से कार्रवाई आरम्भ हुई। सरकार की ओर से सर हेनरी स्ट्रॉकोश ने वक्ता का काम किया, और अपनी ओर से मैंने। ब्लैकेट भी मौजूद था, पर कुछ बोला नही ।

"स्ट्रॉकोश ने पहले तो ससार की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराया, फिर भारतवर्ष की बाते करने लगा। उसकी सबसे बडी दलील यही थी कि अगर एक्सचेज १–६ स्टर्लिंग पर न बाध दिया गया होता तो न जाने लुढकते-लुढकते कहा जाकर दम लेता और न जाने सरकार को कहा तक नोट छपाकर अपना काम चलाना पडता। मैंने जब पूछा कि आखिर ठहराने के लिए तुम्हारे पास साधन क्या है ? तब उससे कोई उत्तर न बन पडा। उसने अधिकाश समय मेरी उन दलीलो का जवाब देने मे लगाया जो मैंने Monetary Reform (मुद्रा-सम्बन्धी सुधार) नाम की पुस्तिका में पेश की हैं। मैंने कहा कि मै बात-बात पर बहस करने को तैयार हूँ, पर मै यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि उस पुस्तिका मे मैंने जो मत प्रकट किया है वह मेरा अपना है, भारतीय व्यापारीवर्ग का नही। यहा जो लोग आए है

---

* "डायरी के कुछ पन्ने", पृष्ठ ६७ और ६९ ।

वे भारत-सरकार की नीति के विषय मे कुछ कहने-सुनने आए है, इसलिए उस विषय को छोड कर मेरी * पुस्तिका की समालोचना मे समय लगाना उनके साथ अन्याय करना है। फिर भी स्ट्रॉकोश ने अपना विचार न बदला।

"खैर, अच्छी बहस हुई। मैने लिखा था कि एक्सचेज की दर उठाने का वास्तविक उद्देश अग्रेज सिविलियन और व्यवसायी को लाभ पहुँचाना था। यह बात इन लोगो को खूब चुभी और स्ट्रॉकोश कहने लगा कि इसे किस तरह प्रमाणित कर सकते हो ? सर पुरुषोत्तमदास ने कहा कि यह किस्सा तो लम्बा-चौडा है और इसे सुनने-सुनाने के लिए समय चाहिए। खाने-पीने का वक्त हो रहा था, लोगो को अपने-अपने काम से जाना था, इसलिए चर्चा स्थगित की गई।

---

*इस पुस्तिका का विषय है दामो की घटा-बढी को रोकने–रुपए की क्रयशक्ति को बराबर समान रखने की वाछनीयता और उसका उपाय।

रुपए के दो प्रकार के मूल्य है—एक तो देश के भीतर का, दूसरा देश के बाहर का। देश के भीतर के मूल्य का अर्थ है इसकी विभिन्न वस्तु-सम्बन्धी क्रय-शक्ति। देश के बाहर के मूल्य का अर्थ है विदेशी मुद्रा—जैसे पौंड, स्टर्लिंग से विनिमय की दर या भाव। अब तक अधिकारियो का लक्ष्य इसके बाहरी मूल्य को स्थिर रखने की ओर रहा है। १६, २४ या १८ पेंस, जब जो ठीक जचा इसका मूल्य कर दिया और एक्सचेंज को वहीं टिका दिया। पर इसके बाहरी मूल्य के प्रश्न से कही अधिक महत्व-पूर्ण प्रश्न है इसके देशान्तर्गत मूल्य का। यह मूल्य अब तक अबाधित गति से घटता-बढता रहा है—जब रुपए का मूल्य घटा तब दाम चढ गए (जैसे १८९६ और १९१४ के बीच) और जब रुपए का मूल्य बढ़ा तब दाम गिर गए (जैसे कुछ दिन पहले की मन्दी के जमाने में)। लेखक ने इस घटा-बढी को रोकने की वांछनीयता पर भारतवर्ष की दृष्टि से विचार किया है और दिखाया है कि इस विषय में Irving Fisher आदि विद्वानो के सिद्धान्तो को, हेर-फेर के साथ, कैसे व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में, मीमासा-भाग का अन्तिम अध्याय द्रष्टव्य है।

"मुझे ऐसा जान पडा कि स्ट्रॉकोश अपने विषय का बडा पडित है, पर बेईमान नही है। इसलिए सम्भव है या तो इसकी चर्चा ही न हो, या ब्लैकेट* जैसे आदमी को सरकारी पक्ष के समर्थन का काम सौंपा जाय। स्ट्रॉकोश अच्छी तरह जानता है कि सरकार की ओर से पेश करने लायक कोई जोरदार दलील नही है। वह करे तो क्या ? बोला कि तुमने बार-बार कहा है कि हमारा सोना उडा दिया। वास्तव मे सरकार ने उडाया नही; हिन्दुस्तान की जो जिम्मेदारी थी उसे पूरा किया। मैंने पूछा, इगलैण्ड की भी तो जिम्मेदारी थी— यहा क्या किया ? उसने कहा— मगर इगलैण्ड हिन्दुस्तान-जैसा दूसरो का देनदार नही है। मैंने उत्तर दिया— मै इसे मानता हू, पर दो बाते है। इगलैण्ड वैसे देनदार न हो, पर यहा एक्सपोर्ट से इम्पोर्ट ज्यादा है। हमारा देश देनदार है, पर वह इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट ज्यादा करता है, यह तुम्हे न भूलना चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान मे रखने की बात है कि हम अपने उद्योग-धन्धो की उन्नति कर, अपनी उत्पादन-शक्ति बढा कर ही अपना देना चुका सकते है। फिर

---

* वास्तव में ब्लैकेट के इस विषय पर अपने स्वतत्र विचार थे जो उसने अपनी Planned Money (व्यवस्थित मुद्रा) नामक पुस्तक में प्रकट किए हैं। पुस्तक-लेखक के विचार में मन्दी के कारण भारतवर्ष-जैसे देशो के सामने बडी गहन समस्या उपस्थित हो गई थी और साधारणत. सबकी, पर विशेषत. उनकी दृष्टि से, दामो का उठना बहुत जरूरी था। वह लिखता है —

"भारतवर्ष की परिस्थिति इस देश से भी खराब है। वहां की पैदा-वार के दाम गिर जाने से, कर्ज का बोझ—चाहे कर्ज देश के भीतर लिया गया हो चाहे बाहर—बेहद भारी हो चला है। भारतवर्ष अधिक काल तक उस बोझ को लेकर न चल सकेगा। अगर दाम न बढे तो कर्ज, लगान, मजूरी, किराया, महसूल-जैसी निर्दिष्ट रकमो में कमी किए बिना काम चलने का नहीं। पर जो भारतवर्ष की स्थिति से परिचित है उन्हे इस प्रकार की कमी होने की संभावना हास्यास्पद जचेगी। सबकी

हमारी नीति कौन-सी होनी चाहिए—उद्योग-धन्धो को वढानेवाली या उनका सत्यानास करनेवाली ? स्ट्रॉकोश फिर निरुत्तर रह गया।"

३० अक्तूबर को फिर इस सम्बन्ध मे श्रीबिडला जी लिखते है—

"कल इडिया ऑफिस मे एक्सचेज के सम्बन्ध मे फिर कान्फरेन्स बैठी। ब्लैकेट और स्ट्रॉकोश दोनो ही मौजूद थे। अपनी ओर से सर पुरुषोत्तमदास, गाधीजी, अध्यापक शाह, जोशी और मै था। छोटी सभा होने के कारण इसे विशेष सफलता प्राप्त हुई। लोगो ने दिल खोलकर बाते की। स्ट्रॉकोश ने वही पुराना राग अलापना शुरू किया पर ब्लैकेट ने बडी खूबी से उसे निरुत्तर-सा कर दिया। ब्लैकेट ने कहा कि हिन्दुस्तान के लिए इस समय चीजो का दाम वढना वहुत हितकर है और मै चाहता हू कि वहा दाम ४० फी सदी तक वढ चले। हा, वह यह न वता सका कि दाम कैसे वढाया जाय। मैने कहा कि रुपए को फिलहाल अपनी राह जाने दो और

रजामंदी से ऐसी कमी हो सके, यह असभव है। नतीजा यही निकलता है कि पाश्चात्य देशो में चाहे जो हो, भारतवर्ष में तो अगर दाम न बढ सके तो सामाजिक और राजनैतिक विध्वंस हुए बिना न रहेगा।

"अकेले भारतवर्ष की ऐसी स्थिति नही है। ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर और बाहर ऐसे कई देश होगे जिनकी कठिनाइयां भारतवर्ष की-सी ही होगी। ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के उदाहरण दिए जा सकते हैं। इन देशो ने अपनी-अपनी मुद्रा की कीमत घटाकर कठिनाइयो का सामना करने की चेष्टा की है। जैसे इंगलैंड ने गोल्ड स्टैण्डर्ड का परित्याग कर और सोने के मुकाबिले स्टर्लिंग की कीमत गिराकर मन्दी की मार से वचने की कोशिश की, वैसे ही इन देशो ने स्टर्लिंग के मुकाबिले अपनी मुद्राओ की कीमत गिराकर आत्म-रक्षा का प्रयत्न किया है।
.... अगर स्टर्लिंग में दाम न उठ सके और उन्हे स्टर्लिंग में कर्ज देनेवालो ने कर्ज की रकम को घटाना मजूर न किया तो उनके लिए टाट उलट देने के सिवाय और कोई चारा न रहेगा।"

जब रिजर्व में काफी सोना इकट्ठा हो जाय तब एक शिलिंग पर इसे बाध दो। वह इससे सहमत न हो सका।"

इस बीच मे १६ अक्तूबर को भी एक कान्फरेन्स बैठ चुकी थी और उसम सारे विषय की काफी आलोचना हो चुकी थी। इन अवसरो पर स्टर्लिंग से गठबन्धन के पक्ष-विपक्ष मे जो कुछ कहा गया उसका साराश यह था—

सर हेनरी स्ट्रॉकोश —

"भारतवर्ष के सामने तीन मार्ग थे, और वह इनमें से किसी एक का अवलम्बन कर सकता था। वह रुपए को सोने से सम्बद्ध रख सकता था, या उसका सम्बन्ध स्टर्लिंग से जोड सकता था, या उसे अपनी राह जाने के लिए स्वतन्त्र छोड सकता था। इधर कुछ वर्षो से सोने मे दाम बराबर गिरते आ रहे थे और कर्जदारो का बोझ बेहद भारी हो चला था। जिनका पैसा लदन मे जमा था वे उसे यहा से उठाने लगे, और लदन ने जिनको पैसा उधार दे रखा था उन्होने प्राय टाट उलट दिया। इगलैण्ड के लिए अपनी मुद्रा को सोने का प्रतीक बनाए रखना असम्भव हो गया और उसने अन्त मे सुवर्णमान—गोल्ड स्टैण्डर्ड का परित्याग कर दिया। ऐसी अवस्था मे भारतवर्ष क्योकर सोने से सम्बद्ध रह सकता था ? पर प्रश्न यह था कि रुपए को वह स्टर्लिंग से सम्बद्ध करे या उसे स्वतन्त्र छोड दे ? स्वतन्त्र छोड देने का अर्थ है—उसका मूल्य बाधने के लिए किसी प्रकार का हस्त-क्षेप न करना। पर उस हालत मे रुपए का मूल्य गिरे बिना न रह सकता था और गिरते-गिरते वह उसकी चादी के मूल्य के बराबर हो जाता। इससे बहुत अनर्थ होने की सम्भावना थी। एक तो कोई किसीको कर्ज देना मजूर न करता। कारण कि जब रुपए की कीमत गिर रही है तब सम्भव है कि आज कोई जितना देगा उसे ५० प्रतिशत कम कुछ दिनो बाद वापस मिलेगा। दूसरी बात यह है कि रुपए की कीमत गिरने से दामो मे तेजी आ जाती और इससे बहुत-से लोगो को नुकसान उठाना पडता। तीसरी यह कि भारत-सरकार लन्दन भेजने के लिए जितने रुपए की बजट मे व्यवस्था करती उतने से काम न चलता—हर साल उससे कही अधिक रुपया उसे

जुटाना पडता। समस्या हल करने के लिए उसे नोट छापने पडते। पर इसका नतीजा यह होता कि दाम और भी वढते—अर्थात रुपए की कीमत और भी गिरती, और ज्यो-ज्यो दवा की जाती त्यो-त्यो मर्ज वढता ही जाता। इसलिए भारत-सरकार को यहा से यही सलाह देना मुनासिव समझा गया कि वह रुपए को स्टर्लिंग से सम्वद्ध कर दे। पूछा जा सकता है कि जव इगलैण्ड ने स्टर्लिंग को स्वतन्त्र छोड दिया है तव भारतवर्ष रुपए को क्यो न स्वतन्त्र छोड दे? इसका उत्तर यह है कि इगलैण्ड, भारतवर्ष की तरह, देनदार मुल्क नही। वह पावनेदार है—इसलिए यहा स्टर्लिंग को स्वतन्त्र छोड देने से वह खतरा नही जो भारतवर्ष मे रुपए को स्वतन्त्र छोड देने से हो सकता है। भारतवर्ष ने इगलैण्ड से वहुत कुछ कर्ज ले रखा है, उसे हर साल यहा करीव ३॥ करोड स्टर्लिंग खर्च करना पडता है, उसके विदेशी व्यापार का वहुत वडा अश ब्रिटिश साम्राज्य के साथ है—ऐसी अवस्था मे, उसके हित की दृष्टि से, स्टर्लिंग से सम्वद्ध रहना ही उसके लिए वाछनीय है।"

श्रीघनश्यामदास विडला —

"यह सच है कि भारतवर्ष के लिए रुपए को सोने से सम्वद्ध रखना असम्भव था। आखिर सम्वद्ध रखने का अर्थ तो यही है कि अगर कोई रुपए के वदले सोना मागे तो सरकार उसे दे सके। पर यहा तो सरकार अपना सोना खो चुकी थी—सोने मे रुपए की कीमत ऊँची रखने की नीति को सफल वनाने के लिए वह रिजर्व के सोने से ही हाथ धो चुकी थी—फिर जव सोना पास न हो तव रुपए को उससे सम्वद्ध रखने का अर्थ ही क्या? पर हम लोगो का कहना है कि जव रुपया सोने का प्रतीक न रहा तव उसे स्टर्लिंग का भी प्रतीक न रहना चाहिए था। आज रिजर्व में सरकार के पास स्टर्लिंग भी कहा है? जहा किसी समय प्राय ६८ करोड रुपए का सोना (या स्टर्लिंग) था वहा इस समय सिर्फ ४ या ५ करोड का सोना वच गया है, और स्टर्लिंग नही के वरावर है। फलत १८ पेंस स्टर्लिंग पर रुपए का विनिमय-मूल्य टिकाने के लिए सरकार को या तो रुपए गला-गला कर वाजार मे चादी वेचनी पड़ेगी—जिससे चादी वेहद सस्ती हो

जायगी—या इगलैण्ड मे कर्ज लेना पडेगा, जिससे हमारी देनदारी और भी बढ जायगी। सर हेनरी स्ट्रॉकोश को भय है कि अगर रुपया स्वतन्त्र छोड दिया गया तो उसकी कीमत गिरते-गिरते उसकी चादी की कीमत (प्राय ६ या ७ पेस) के आस-पास पहुँच जायगी। मै नही समझता कि रुपए की कीमत यहा तक गिर सकती है, पर अगर रुपए की असली कीमत सचमुच ६ पेस है तो कृत्रिम रीति से वह १८ पेस पर कब तक टिकाई जा सकती है ? लोग सरकार को रुपए देना शुरू कर देगे और बदले मे स्टर्लिंग मागेगे। सरकार कुछ हद तक यह माग पूरी करेगी और फिर कह देगी कि "अब हम और स्टर्लिंग नही दे सकते।" पर तब तक हमारा बचा-खुचा स्टर्लिंग-धन स्वाहा हो जायगा और हमारे नोट बिना किसी प्रकार की पुश्ती के रह जायगे। इगलेण्ड के पास १६०,०००,००० पौण्ड स्टर्लिंग सोना था। ज्योही यह घट कर १३३,०००,००० पौण्ड स्टर्लिंग हो चला, इगलैण्ड ने सुवर्णमान—गोल्ड स्टैण्डर्ड का परित्याग कर दिया और स्टर्लिंग को बिलकुल स्वतन्त्र कर दिया। पर भारतवर्ष मे सर्वस्व खोकर भी सरकार उसका अनुकरण करना अनुचित समझती है और रुपए का स्टर्लिंग से गठबन्धन कर देती है—और कहा जाता है कि अगर रुपया इस प्रकार आबद्ध न रहा तो भारतवर्ष रसातल को पहुँच जायगा! सर हेनरी स्ट्रॉकोश ने भारतवर्ष की देनदारी का जिक्र करते हुए फरमाया कि इगलैण्ड के लिए जो वस्तु अमृत है वही भारतवर्ष के लिए विष हो सकती है। हम भारतवासी इस विषय मे उनके कथन की सत्यता स्वीकार नही कर सकते। भारतवर्ष देनदार है तो उसकी आर्थिक नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे उसकी देनदारी घटे। देनदारी तभी घट सकती है जब उसकी उत्पादन-शक्ति और उसका निर्यात-व्यापार बढे। पर इसके लिए यह आवश्यक है कि वहा चीजो के दाम ऊँचे हो—और दाम उठाने का, मौजूदा हालत मे, एकमात्र उपाय है एक्सचेंज को गिरा देना। कहा गया है कि रुपया जब गिरने लगेगा तब अपनी चादी की कीमत के पास पहुँच कर ही रुकेगा। इस सम्बन्ध मे मेरे दो निवेदन है। एक तो यह कि भारतवर्ष देनदार भले ही हो पर साधारणत वह इम्पोर्ट (आयात) से एक्सपोर्ट (निर्यात)

ज्यादा करता है। दूसरा यह कि चलन मे जितने सिक्के या नोट है सब-के-सब, विनिमय के लिए, कभी उपस्थित नही किए जा सकते। अगर रुपए के सिक्को की तादाद दो अरब मान ली जाय और नोटो की डेढ अरब, तो सब मिला कर साढे तीन अरब हुए। इनमे से अगर डेढ अरब भी स्टर्लिंग से विनिमय के लिए उपस्थित किए जाय तो देश मे रुपए की बेहद तगी हो जायगी—जिसका अर्थ यह हुआ कि रुपए की कीमत बढ जायगी। इन दो कारणो से, मै नही समझता कि किसी भी हालत मे रुपया ११ पेंस या १२ पेंस (सोना) से नीचे गिर सकता है। पर दाम बढाने के लिए—जिससे किसानो और दूसरे उत्पादको का भला हो और जो मन्दी चली आ रही है उससे उनका दम घुटने न पाए—रुपए की कीमत का गिरना जरूरी है। कहा गया है कि दामो की स्थिरता वाञ्छनीय है। पर कौन-से दामो की ? इतना तो सभी स्वीकार करते है कि आज के दाम बहुत नीचे है और अगर हम इन्हे ज्यो-के-त्यो रहने देते है तो हम करोडो किसानो के हित की हत्या करते है। भारतवर्ष मे न्याय का तकाजा यह है कि दाम १०० से उठा कर १५० कर दिए जाय—और उस हद तक एक्सचेज को गिरने दिया जाय। इसीलिए हम लोगो का कहना है कि रुपए को स्टर्लिंग से बाध कर, और दामो का उस हद तक उठना असम्भव कर, सरकार ने हमारे देश के साथ घोर अन्याय किया है।"

सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास —

"रुपए को स्टर्लिंग का प्रतीक कर दिया गया, पर केवल इसी अर्थ मे कि उसकी कीमत १८ पेंस से नीचे नही जा सकती। ऊपर के लिए कोई रुकावट नही है, क्योकि सरकार ने यह जिम्मेवारी नही ली है कि १८ पेंस स्टर्लिंग बेचनेवाले को वह एक रुपया दे दे। १९२७ वाले विधान मे सरकार पर यह जिम्मेवारी रखी गई थी कि अगर कोई सोना बेचना चाहे तो सरकार उसे १८ पेंस = १ रुपए की दर से खरीदने को बाध्य होगी। उस परिस्थिति मे कोई अन्तर नही पडा है, जिसका अर्थ यह होता है कि अगर कोई सरकार के हाथ अपना सोना बेचना चाहता है तो उसे उसी पुराने भाव से बेचना पडेगा। पुराना भाव था प्राय २१॥।-) तोला। आज का बाजार-

भाव २५) से भी अधिक है। इस समय बम्बई मे गावो से काफी सोना आ रहा है। लोग इतने विपन्न है कि उनके पास जो कुछ सोना है उसे बेचकर अपना काम चला रहे है। पर सरकार इस सोने का दाम इतना कम देने को तैयार है कि व्यापारी इसे उसके पास नही ले जा सकते। लेहाजा सारा सोना भारतवर्ष से वाहर जा रहा है। सरकार की इस नीति से जनता का असन्तुष्ट होना स्वाभाविक है। कहा जाता है कि भारतवर्ष ऋणी देश है, उसने इगलैण्ड से वहुत कुछ कर्ज ले रखा है, इसलिए एक्सचेज गिराना उसके लिए हितकर नही हो सकता। पर ऑस्ट्रेलिया का उदाहरण हम लोगो के सामने है। भारतवर्ष की अपेक्षा वडा ऋणी होते हुए भी उसने अपना एक्सचेज गिरा दिया। किसानो की दृष्टि से भारतवर्ष की दशा ऑस्ट्रेलिया से कही खराब है। गेहूँ का १।-) मन विकना एक ऐसी बात है जिसे पिछले ८० साल के इतिहास मे हम अभूतपूर्व कह सकते है। सरकार को इसमे क्या आपत्ति हो सकती है कि वतौर एक प्रयोग के, कुछ महीनो के लिए ही सही, रुपए को इस वन्धन से मुक्त कर दे और देखे कि इससे दाम चढते है या नही और किसानो का कुछ भला होता है या नही ? इस समय तो उन्हे वाजार या मडी मे जो दाम मिलता है वह बैलगाडी का भाडा चुकाने के लिए भी काफी नही होता। एक घटना की खुद मुझे जानकारी है, जहा किसान वाजार मे गन्ना बेचने लाए और दाम सुनकर इतने निराश हुए कि गन्ने को बेचने के वजाय गायो और भैसो को समर्पित कर अपने घर लौट गए।"

पर इस शास्त्रार्थ से परिस्थिति मे तनिक भी अन्तर न पडा और रुपए—स्टर्लिंग का गठबन्धन ज्यो-का-त्यो बना रहा।

यह तो हुई लन्दन की वात। यहा भारतवर्ष मे उस समय व्यवस्थापिका परिषद् का अधिवेशन हो रहा था। वहा सदस्यो ने २१ सितम्बर को एक बात सुनी, २२ को दूसरी। भारत-सचिव द्वारा किए जानेवाले हस्तक्षेप और स्टर्लिंग-गठबन्धन का प्रतिवाद करने के लिए सर कावसजी जहागीर ने परिषद् मे "काम स्थगित करानेवाला" प्रस्ताव लाना चाहा, पर वडे लाट ने एक खास आदेश से इसे रोक दिया। २६ सितम्बर

को मि० (अब सर) षण्मुखम् चेट्टी ने निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया.—

"चूकि इस बात का डर है कि मौजूदा हालत मे रुपए का-स्टर्लिंग से गठबन्धन कर देना भारत के लिए अत्यन्त अहितकर होगा,

"और चूकि भारत-सरकार के रुपए का विनिमय-मूल्य १८ पेंस रखने के कारण इस देश की कृषि और उद्योग-धन्धो की गहरी हानि हुई है और करेन्सी-कोष मे जो सोना या सोने के तुल्य समझे जाने लायक धन था वह प्राय साफ हो चुका है,

"और चूकि इस बात का भी डर है कि भारत-सरकार के रुपए का स्टर्लिंग से गठजोडा कर देने और इस सम्बन्ध मे कुछ खास जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेने के कारण, उस सोने या धन की और भी बरबादी होगी, और इससे इस देश की विशेष आर्थिक क्षति होगी;

"इस परिषद् की राय है कि भारत-सरकार को फौरन इस उद्देश से कुछ खास कार्रवाई करनी चाहिए कि हमारे करेन्सी तथा गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्वो या कोषो मे जो सोना या स्टर्लिंग जमा है वह किसी भी हालत मे आज की अपेक्षा कम न होने पावे,

"और इस परिषद् की यह भी राय है कि इस देश की भलाई के लिए भारत-सरकार को चाहिए कि वह रुपए के बदले सोना या स्टर्लिंग देने की कोई जिम्मेवारी अपने ऊपर न रहने दे और एतद्विषयक विधान मे जो सशोधन आवश्यक हो, कर दे। अगर सरकार को यह मजूर न हो तो वह तब तक कोई जिम्मेवारी अपने ऊपर न ले जब तक ब्रिटिश सरकार से उसे लम्बी मुद्दत के लिए, मुनासिब शर्तों पर, काफी बडी रकम लन्दन मे तत्काल कर्ज नही मिल जाती।

"अर्थ-सदस्य ने उस दिन यह सूचित किया कि वह अतिरिक्त कर लगाने के लिए परिषद् मे दूसरा राजस्व बिल पेश करनेवाले है। इस सम्बन्ध मे परिषद् का कहना है कि इसके सदस्यो को काफी नोटिस दिए बिना कर-सम्बन्धी कोई नया प्रस्ताव यहा पेश नही होना चाहिए और इस अधिवेशन मे तो ऐसा प्रस्ताव हर्गिज नही होना चाहिए।"

प्रस्ताव के पक्ष मे आए ६४ वोट, और विपक्ष मे ४० । पर बहुमत से पास होने पर भी प्रस्ताव स्थिति मे कोई अन्तर डालनेवाला न था। उस समय के भारत-सचिव ने ही एक अवसर पर कहा था कि कुत्ते भूकते रहते है, कारवा आगे बढता जाता है ! प्रजा पर इधर करो का बोझ काफी भारी हो चला था। वह और भी भारी कर दिया गया। इसी अधिवेशन मे नए प्रस्ताव-द्वारा प्राय २५ करोड रुपए की कर-वृद्धि कर, हमारे शासको का कारवा अपने मार्ग पर अग्रसर हुआ !

१०

गंठबन्धन के बाद

इगलैड के बाद और कई देशो ने भी गोल्ड स्टैण्डर्ड का परित्याग कर दिया। वास्तव मे यह कोई अन्ध अनुकरण नही था—सब मजबूर होकर सोने को तलाक देने लगे थे। सोने से बधे रहते है तो दाम ऊचे हो नही सकते, और जो देश अपनी मुद्रा की कीमत सोने के मुकाबिले गिरा देता है वह प्रतियोगिता मे अपना माल सस्ता बेचने की क्षमता पा जाता है— यह विचार कर कई देशो ने अपने-अपने प्रतीक को सोने के बन्धन से मुक्त कर दिया। अमेरिका भी १९३३ मे सोने से हट गया, यद्यपि कुछ समय बाद वह अपने डॉलर की कीमत घटाकर गोल्ड स्टैण्डर्ड पर वापस आ गया। सोने मे डॉलर की कीमत जहा १'०० थी वहा अब घटाकर ६० कर दी गई।

सोने के बन्धन से प्रतीक-मुद्राओ को मुक्त करने और इनका मूल्य गिराने का रहस्य क्या था, यह इस प्रकार समझाया जा सकता है—

मान लीजिए, इगलैण्ड और अमेरिका दोनो गोल्ड स्टैण्डर्ड पर है और १ पौड=४८६ डॉलर—यह एक्सचेज-रेट है। यह भी मान लीजिए कि किसी चीज का पडता इगलैण्ड मे १ पौड है और अमेरिका में ४८६ डॉलर।

इगलैण्ड ने गोल्ड स्टैण्डर्ड को छोड दिया और सोने के मुकाबिले पौड की कीमत घट गई। अमेरिका गोल्ड स्टैण्डर्ड पर कायम है, इसलिए एक्सचेज-रेट मे फर्क पड गया और जहा पहले १ पौड के ४८६ डॉलर होते थे वहा अब (उदाहरणार्थ) ३७४ ही होने लगे।

अमेरिका मे उस वस्तु का दाम वही ४८६ डॉलर है जो पहले था। इसलिए इगलैण्ड का व्यवसायी अगर अपना माल अमेरिका भेजता है

तो वहा उसका दाम ४ ८६ डॉलर उठता है। नई एक्सचेज-रेट (३ ७४ डॉलर = १ पौड) से यह रकम इगलैण्ड मे २६ शिलिंग होती है।

वहा पहले पडता था २० शिलिग का। अब यह कुछ ऊचा हो चला होगा। पर स्पष्ट है कि जब तक पडता २६ शिलिंग नही हो जाता तब तक इगलैण्ड के व्यवसायी को नई एक्सचेज-रेट के कारण विशेष लाभ रहेगा और वह प्रतियोगिता मे अमेरिका के व्यवसायी को पछाडता जायगा।

मान लीजिए इगलैण्ड मे अब पडता २३ शिलिंग हो चला है। अगर अमेरिका का माल वहा जाकर बिकता है तो उसका दाम २३ शिलिंग उठता है और नई एक्सचेज-रेट से २३ शिलिग के प्राय ४ ३० डॉलर होते है। चूकि अमेरिका का पडता ४ ८६ डॉलर का है, वहा का माल इगलैड जाकर न बिक सकेगा। प्रत्युत इगलैण्ड का माल अब विशेष रूप से अमेरिका जाने लगेगा। वहा का पडता २३ शिलिग है। अमेरिका मे दाम ४ ८६ डॉलर है, जिसके २६ शिलिंग होते है। ऐसी अवस्था मे इगलैण्डवाले वहा अपना माल ४ ८६ डॉलर से कम मे बेच कर भी नफे मे ही रहेगें। अगर उन्होने ४ ६८ डॉलर मे ही बेचा तो भी उन्हे तो प्राय २५ शिलिंग मिल गए और अमेरिका के कल-कारखानेवालो का व्यवसाय चौपट हो गया।

पर ऐसी स्थिति मे अगर अमेरिका भी गोल्ड स्टैण्डर्ड का परित्याग कर दे और सोने के मुकाबिले अपनी मुद्रा की कीमत उसी हद तक गिरा दे (जिस हद तक इगलैण्ड गिरा चुका है) तो (और सब बाते समान होते हुए) एक्सचेज-रेट फिर वही १ पौड = ४ ८६ डॉलर हो चलेगी और ऐसी साम्यावस्था होने पर विशेष लाभ या हानि का प्रश्न ही न रहेगा। हा, अगर अमेरिका सोने के मुकाबिले अपने प्रतीक की कीमत, इगलैण्ड से भी अधिक गिरा दे, तो साम्य की जगह फिर वैषम्य उपस्थित हो जायगा और गगा उलटी दिशा मे बहने लगेगी—अर्थात् प्रतियोगिता मे अब अमेरिका इगलैण्ड को दबाने लगेगा।

इने-गिने देशो को छोड प्राय सभी गोल्ड स्टैण्डर्ड से अलग हो गए। १९३४ मे केवल आधे दर्जन देश गोल्ड स्टैण्डर्ड पर रह गए थे। इन्हे विदेशी

प्रतियोगिता-रूपी आक्रमण से अपने-आपको बचाने के लिए तरह-तरह के उपायो का अवलम्बन करना पडा। जकात या टैरिफ की दीवारे और भी ऊची कर दी गई---विनिमय के व्यवसाय को इस प्रकार से नियंत्रित कर दिया गया कि वाहर से कम-से-कम माल आ सके। जो देश गोल्ड स्टैण्डर्ड छोड चुके थे वे इसका जवाब दिए विना कव रह सकते थे ? नतीजा यह हुआ कि व्यापार के क्षेत्र मे प्राय सभी देश ऐसी लडाई लडने लग गए जैसी इससे पहले कभी देखी या सुनी नही गई थी। प्रत्येक देश अपनी रण-नीति को सफल बनाने के लिए विभिन्न अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग करने लगा। इगलैड वहुत वडे अरसे से इस सिद्धात का प्रतिपादक चला आ रहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मार्ग मे किसी भी देश को किसी भी हालत मे जकात या शुल्क-रूपी अवरोध खडा करना नही चाहिए। पर अब कावे मे ही कुफ्र सुनाई देने लगा ! अपने उद्योग-धन्धो की जान खतरे मे देख इगलैण्ड ने उस पुराने सिद्धान्त को ताक पर रख दिया और अब "स्वतन्त्र व्यापार" (Free Trade) से "सरक्षण" (Protection) का हिमायती बन गया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे स्वतन्त्रता या स्वच्छन्दता नाम की अब कोई चीज ही नही रह गई---कदम-कदम पर प्रतिवन्ध, नियन्त्रण, अटकाव नजर आने लगे। वार-प्रहार, घात-प्रतिघात करते-करते जब दो देश थक जाते तब आपस मे समझौता या इकरार-नामा करके यह तय कर लेते कि कौन किससे कितना माल लिया करेगा। पर इस प्रकार का समझौता भी व्यापार के क्षेत्र को सकुचित ही करनेवाला होता। आश्चर्य नही कि सारे ससार के व्यापार की मालियत जहा १९२९ मे १०० थी वहा १९३३ मे प्राय ३३ ही रह गई थी।

तुलनात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि गोल्ड स्टैण्डर्ड पर रह जानेवाले देशो की अपेक्षा उससे अलग हो जानेवाले देश अच्छे रहे। इन देशो मे दामो की अधोमुख गति कुछ समय के बाद रुक गई और वे ऊपर चढने लगे। १९२९ से १९३२ तक के अध्याय का नाम अगर 'अन्धकार' रखा जाय तो १९३३ से १९३७ तक के अध्याय को 'अरुणोदय' कहा जा सकता है। पर यह इगलैण्ड और अमेरिका-जैसे देशो के ही सम्बन्ध

मे। यहा भारतवर्ष मे तो अन्धकार बना ही रहा— कहना चाहिए कि १९३२ के बाद वह और भी घनघोर हो चला। नीचे के 'सूचक अक' यही जाहिर करते है।

जिन्सो के थोक दाम

	भारतवर्ष (कलकत्ता)	इगलैण्ड	अमेरिका
१९२९	१००	१००	१००
१९३०	८२	८८	९१
१९३१	६८	७७	७७
१९३२	६५	७५	६८
१९३३	६२	७५	६९
१९३४	६३	७७	७९
१९३५	६५	७८	८४
१९३६	६५	८३	८५
१९३७	७२	९५	९१
१९३८	६८	८९	८२

१९३७ मे जो सुधार दिखाई देता है वह अमेरिका मे तेजी की एक लहर के आने का नतीजा था। पर वह स्थायी न हो सका और दाम फिर गिर पडे। खासकर भारतवर्ष का यह हाल हुआ कि 'चार दिना की चादनी, फिर अन्धियारी रात!' १९३८ मे हम फिर वही जा पहुचे जहा १९३१ मे थे।

जब इगलैण्ड गोल्ड स्टैण्डर्ड पर था तब वहा एक औस खालिस सोने का दाम प्राय ८५ शिलिंग होता था। पर स्टर्लिंग और सोने का सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने पर वह दाम ऊचा हो चला, अर्थात् सोना स्टर्लिंग मे पहले की अपेक्षा महगा बिकने लगा। कई साल तक यह दाम १४० शिलिग के आस-पास या उससे भी ऊपर रहा। इसके दो खास नतीजे हुए। नोट-प्रसारक बैको के पास जो सोना था उसकी कीमत बढ जाने से, उनके लिए उसके आधार पर और भी नोट जारी कर देना सम्भव हो गया। इससे चीजो के दाम ऊपर उठाने मे सहायता मिली। उधर सोने की खानो के

मालिको का मुनाफा बढ गया और इसके फलस्वरूप सोने का उत्पादन अधिकाधिक होने लगा। १९२९ से १९३७ तक ससार मे सोने का उत्पादन इस प्रकार हुआ —

	टन
१९२९	६००
१९३०	६३९
१९३१	६२५
१९३२	६७८
१९३३	७०७
१९३४	७५६
१९३५	८२४
१९३६	९२१
१९३७	९९०

चूकि रुपया स्टर्लिग से सम्बद्ध था, यहा भी सोना पहले से महगा रहने लगा। अगस्त १९३१ के अन्त मे—जब भारतवर्ष गोल्ड स्टैण्डर्ड पर था—यहा सोने का दाम २१।।।~)। था। उसके वाद इस दाम मे जो वृद्धि हुई वह नीचे की तालिका मे दिखाई गई है। साथ ही स्टर्लिग मे भी सोने की कीमत दे दी गई है —

सोने का ऊचे से ऊचा दाम

		लन्दन मे (प्रति औंस)*			वम्बई मे (प्रति तोला)
		पौ०	शि०	पै०	रु० आ० पा०
अप्रेल	१९३३	६	२	६	३०—०—०
,,	१९३४	७	५	८।।	३६–१२—०
,,	१९३८	७	०	१।।	३५—०—०
,,	१९३९	७	८	६।।	३७—१—३

पिछले अध्याय मे कहा जा चुका है कि १९३१ मे एक असाधारण वात यह हुई कि यहा से सोने की रपतनी होने लगी। आत्मरक्षा का

*१ औंस = ४८० ग्रेन, १ तोला = १८० ग्रेन, अर्थात् ३ औंस = ८ तोला

और कोई उपाय न देख कर विपन्न भारतवर्ष ने अपना सोना बेचना आरम्भ कर दिया और चूकि भारत-सरकार इस सोने की खरीदार नही थी, यह सोना विदेश जाने लगा। भारतवर्ष से इधर कब कितना सोना बाहर गया है यह नीचे के अको से स्पष्ट होगा —

साल	रुपए (लाख)
१९३१–३२	५७,९७
१९३२–३३	६५,५२
१९३३–३४	५७,०५
१९३४–३५	५२,५४
१९३५–३६	३७,३५
१९३६–३७	२७,८४
१९३७–३८	१६,३३
१९३८–३९	२३,२६
१९३९–४०	४४,६४
	३,८२,५० लाख रुपए

आम तौर से यह देश बराबर सोने का खरीदार रहा है। इस बीसवी सदी के आरम्भ के ३० वर्षो मे यहा प्राय ७ अरब रुपए का सोना बाहर से आया था। इन ९ वर्षो में उसमे से प्राय ४ अरब का सोना बाहर चला गया। किसीने ठीक ही कहा था कि जितना सोना हमने इन वर्षो मे खो दिया उतना तैमूरलग और नादिरशाह भी यहा से लूट कर न ले गए होगे।

इस बात के लिए हमारे नेताओ और प्रजा-प्रतिनिधियो की ओर से काफी कोशिश की गई कि सोने की इतने बडे पैमाने पर रफ्तनी न हो और सरकार या रिजर्व बैक इस सोने को खरीदकर नोटो की पुश्ती के लिए यही रखती जाय, पर कुछ भी नतीजा न निकला। सरकार की ओर से बराबर यही जवाब दिया गया कि खरीद-बिक्री या व्यापार की दृष्टि से जैसी और चीजे है, वैसा सोना है, फिर जब दूसरी चीजो के लिए कोई रुकावट नही है तब सोने के लिए ही क्यो हो ? हमारे देश मे अगर राष्ट्रीय

सरकार होती तो ऐसी बात मुह से न निकालती और सोना सचित करने का जो यह सुअवसर उपस्थित हुआ था उसे हाथ से न जाने देती।

सोने के सम्बन्ध में हमारे शासक हमको तो अनासक्ति और त्याग का उपदेश देते जाते थे और स्वय अपने देश मे सोने से चिपटे जाते थे—बल्कि यथासभव उसका परिमाण बढाते जाते थे। बैंक आव् इगलैंड के पास जहा १९३१ मे सब मिलाकर १२५,४०१,६२८ पौंड का सोना था वहा १९३७ मे वह रकम ३२६,४०६,६२५ पौंड हो चली थी। 'हमको लिखि-लिखि योग पठावत आपु करत रजधानी'।

सोने की इस रफ्तनी की असलियत क्या थी, यह दिखाने के लिए हम परिषद् मे किए हुए एक अगरेज सदस्य के भाषण से कुछ अश उद्धृत करते हैं।

मार्च १९३३ को व्यवस्थापिका परिषद् मे बजट की आलोचना करते हुए सर लेस्ली हडसन ने कहा था —

"पूरव बगाल के किसानो की अवस्था अत्यन्त दयनीय है। १९३१ मे नदियो की बाढ के कारण उनकी कर्जदारी बेहद बढ़ गई। १९३२ मे फसल अच्छी जरूर हुई,पर दाम इतने नीचे थे कि किसान अपने कर्ज न चुका सके। जीवन-निर्वाह के लिए उन्हे अपने पीतल के बर्तन और मकानो मे लगी हुई लोहे की चादरे-जैसी चीजे भी बेच देनी पडी। पहले तो उन्होने अपने सोने-चादी के जेवर बेच डाले, फिर जब इससे भी पूरा न पडा तब उन्होने और मालमता बेचना शुरु कर दिया। पीतल और अल्मूमीनियम के बर्तन बिक गए, उनकी जगह मिट्टी के बर्तनो ने ले ली। पर किसानो की मुसीबत की कहानी यही समाप्त नही होती। अब वे अपनी झोपडियो की भी आहुति देने लग गए है। और तो उनके पास कुछ है नही—उन झोपडियो मे लगी हुई लकडी या लोहे की जो कीमत उन्हे मिल सकती है वही अब उनका एकमात्र अवलम्ब रह गई है।

"हमारे अर्थ-सदस्य ने सोने के निर्यात के सम्बन्ध मे जो यह कहा है कि उसीकी बदौलत हमारी रक्षा हो सकी है—हम इस बवडर मे उड जाने से बच गए है, यह सच है, पर सोना क्यो बिका या बिकता जा रहा है, इसका जो उत्तर हमारे अर्थ-सदस्य ने दिया है मै उसे ठीक नही मानता।

उनका कहना है कि लोगो का जो पू जी-पल्ला सोने के रूप मे था अब वे उसे दूसरा रूप देने लगे है। असलियत कुछ और ही है। कम-से-कम इस बात मे उतनी सचाई नही जितनी हमारे अर्थ-सदस्य समझते है। बाहर जाने वाले सोने का बहुत बडा हिस्सा सुख या समृद्धि नही बल्कि दु ख या दारिद्र्य का सूचक है—अर्थात् उसे बेचनेवाले ऐसे लोग है जिन्होने अपने धन या पू जी को दूसरा रूप देने के लिए ऐसा नही किया है, बल्कि जिन्हे अपनी रोजमर्रा की जरूरते पूरी करने के लिए—चावल, आटा, दाल, नमक खरीदने के लिए—अपना सचित सुवर्ण बेच देना पडा है।"

यहा कुछ चादी के भी सम्बन्ध मे कहने की जरूरत है।

अगस्त १९३१ मे—जब इगलैण्ड गोल्ड स्टैण्डर्ड पर था—लन्दन मे चादी का दाम (फी स्टैण्डर्ड औस) १३ पेस के आसपास था। सितम्बर मे, इगलैण्ड के गोल्ड स्टैण्डर्ड से हट जाने पर, यह दाम प्राय १९ पेस हो चला। भारतवर्ष मे इधर दाम इस प्रकार रहा—

			१०० तोले का
			रु० आ०
मार्च	१९३१-३२	(औसत)	५६–२ ५/१७
"	१९३२-३३	"	५६–२ १/३ ७/०
"	१९३३-३४	"	५६–३ २/३०
"	१९३४-३५	"	६५–२
"	१९३५-३६	"	४९–३ २/३ १/२
"	१९३६-३७	"	५३–० २/३ ०/१
"	१९३७-३८	"	५०–१५ २/३ ३/४
"	१९३८-३९	"	५२–१५ ८/३८

लन्दन मे १२ जून १९३३ को आर्थिक विषयो पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के लिए एक काफ्रेंस बैठी। इसमे ६४ राष्ट्र सम्मिलित हुए। पर कोई समझौना न हो सका। सबसे गहरा मतभेद मुद्रा-सम्बन्धी प्रश्न पर हुआ और काफ्रेस निष्फल साबित हुई। हा, उसमें चादी के सम्बन्ध मे एक समझौता ऐसे

देशो के बीच जरूर हुआ जो या तो चादी के उत्पादक थे या जिनके पास काफी परिमाण मे चादी इकट्ठी थी।

पर चादी के बाजार पर इस समझौते का कोई खास असर न पडा। लोग पहले से ही यह धारणा किए बैठे थे कि इस प्रकार का कोई समझौता होकर ही रहेगा। इसलिए दाम जहा तक उठ सकते थे पहले ही उठ चुके थे।

इस समझौते या इकरारनामे की मीयाद १९३७ के अन्त मे पूरी हो गई।

भारत-सरकार ने इधर भी बराबर चादी बेचना जारी रखा। चलन से रुपए खीच कर गला दिए जाते और उनकी चादी बेच दी जाती। १९३१–३२ और १९३९–४० के बीच सरकार-द्वारा बाहर भेजी जानेवाली चादी २० करोड औंस से ऊपर थी। चलन मे चादी के रुपयो का स्थान या तो नोटो ने ले लिया या वह खाली रहा।

१९३१–३२ और १९३८–३९ के बीच, चलन मे जानेवाले रुपयो का जोड ५७,४५ लाख बैठता है, और चलन से निकल आनेवाले रुपयो का जोड ५४,४४ लाख। प्यासे को किस हद तक पानी मिल सका, इस सम्बन्ध मे और कुछ लिखने की आवश्यकता नही।

इस देश मे जिन्सो के आयात से निर्यात अधिक होता रहा है। वास्तव मे हम उसी आधिक्य के रूप मे अपनी देनदारी* चुकाते आए हैं। १९२४–२५ से १९२८–२९ तक उस आधिक्य का औसत ११० करोड

---

* "भारतवर्ष अपनी जिन्सो के निर्यात से जिन्सो के आयात का ही दाम नहीं चुकाता, कुछ ऐसे आयात का भी दाम चुकाता है जो अदृश्य रूप से हुआ करता है। इस अदृश्य आयात में इगलैण्ड को Home Charges तथा अन्य रूप में जानेवाली रकमें शामिल है। इनका जोड हर साल प्रायः ८० करोड रुपए बैठता है।"—

भारतीय व्यापारी महासभा (फेडरेशन) के दशम अधिवेशन के अध्यक्ष श्रीयुत देवीप्रसाद खेतान का भाषण (अप्रेल, १९३७)।

रुपए से अधिक पडा था। पर १९३२–३३ मे वह घटकर केवल ३ करोड रुपए के लगभग रह गया था। उसके बाद स्थिति कुछ सुधरी, पर यथेष्ट रूप से नही। अगर इन वर्षों मे सोने का निर्यात सहायक न होता तो अदृश्य रूप से होनेवाले आयात का दाम हमसे न चुकता और हमारी देनदारी और भी बढ जाती।

अपने देश के किसानो की दीनता-हीनता का कर्जदारी से खास सम्बन्ध है। १९२८-२९ मे कुछ विशेषज्ञ जाच-पडताल के बाद इस नतीजे पर पहुचे थे कि सारे भारतवर्ष के किसानो का कुल कर्ज ९ अरब रुपए के करीब था। भिन्न-भिन्न प्रातो मे यह इस प्रकार विभक्त था —

	सारा कर्ज (करोड रुपए)
मद्रास	१५०
बम्बई	८१
बगाल	१००
सयुक्त प्रात	१२४
मध्य प्रात	३६
पजाब	१३५
बिहार-उडीसा	१५५
आसाम	२२
केन्द्रीय इलाका	१८
बर्मा	६०
ब्रिटिश भारत	८८१ करोड

देशी रियासतो के किसानो का कर्ज इसके अलावा था।

अब देखिए मन्दी का इस कर्जदारी पर क्या असर पडा। गल्ले के दामो में प्राय ५० प्रतिशत कमी हो जाने से कर्जदारो का बोझ यो ही दूना हो गया। कारण यह कि जो १० मन अनाज बेचकर कर्जदारी से छुटकारा पा सकता था उसे अब २० मन जुटाना पडता था। अगर यह मान लिया जाय कि ऐसी

मन्दी के समय मे किसान न तो असल अदा कर सकते थे, न सूद; तो हमारे अर्थशास्त्रियो का यह तखमीना सही समझा जा सकता है कि जो बोझ १९२९ मे ९ अरब रुपए था वह १९३३ मे २२ अरब रुपए के बराबर हो चला था।

दामो को बढाना और उसके द्वारा किसानो या कर्जदारो की रक्षा करना भारत-सरकार की नीति के प्रतिकूल था। उधर असन्तोप और अशाति की वृद्धि के कारण परिस्थिति भयकर होती जा रही थी। इस कारण प्रातीय सरकारो के लिए चुपचाप बैठे रहना भी असभव था। उन्होने इधर कुछ ऐसे कानून बनाए जिनका उद्देश था साहूकार के पावने की रकम को कम कराके कर्जदार को इमदाद पहुचाना। कुछ हद तक सरकारी लगान मे भी छूट दी गई। पर इन उपायो से किसानो का कष्ट कहा तक दूर हो सकता था? उनकी वास्तविक सहायता या रक्षा का उपाय था ऐसी नीति का अवलम्वन जो दामो को ऊपर चढा सके या कम-से-कम उन्हे नीचे गिरने से रोक सके। पर हमारी सरकार की नीति तो उन्हे नीचे की ही दिशा मे ढकेलनेवाली थी—उससे यहा के किसानो की भलाई की आशा कैसे की जा सकती थी? दामो की मन्दी और हमारी सरकार की एक्सचेज-नीति, चक्की के इन दोनो पाटो के बीच पडकर हमारे किसान तग-तबाह हो गए।

दिसम्बर १९३३ मे जव रिजर्व बैक से सम्वन्ध रखनेवाला बिल परिषद् मे विचाराधीन था, वहा इस बात की चेष्टा की गई कि एक्सचेज-रेट को स्थायी रूप से १८ पेस न करके इस प्रश्न पर पुनर्विचार की गुजाइश रहने दी जाय। बिल मे यह व्यवस्था थी कि जब रिजर्व बैक स्थापित हो जाय—और इसमे अभी कुछ देर थी—वह प्राय १८ पेस की रेट से स्टर्लिंग खरीदने और बेचने को बाध्य हो।

१९२७ के विधान मे स्टर्लिंग खरीदने की सरकार पर कोई जिम्मेवारी नही थी—जिम्मेवारी २१≡) १० तोला के भाव से (खालिस) सोना खरीदने की थी। बाजार में १९३१ के बाद सोने का भाव इससे कही ऊँचा हो रहा था, इसलिए सरकार की वह जिम्मेवारी अब कोई अर्थ नही रखती थी। अब सरकार अपने ऊपर स्थायी रूप से सोने की

जगह स्टर्लिंग खरीदने की जिम्मेवारी लेने जा रही थी। उसकी ओर से यह कहा जा चुका था कि कानूनन जो स्थिति इस समय है उसमे किसी प्रकार का परिवर्तन करना हमे अभीष्ट नही। परिषद् मे पूछा गया कि अगर बात ऐसी ही है तो स्टर्लिंग खरीदने की जिम्मेवारी आप अपने ऊपर क्यो लेने जा रहे है ? खैर, यह तो एक विधि-विषयक छोटी-सी बात हुई। विशेष आपत्तिजनक बात तो यह थी कि सरकार भविष्य के लिए स्टर्लिंग खरीदने या बेचने की दर अभी मुकर्रर करने जा रही थी। गैर-सरकारी मेम्बरो ने सरकार की इस कार्रवाई का घोर विरोध किया और उनकी ओर से इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले कई सशोधन पेश किए गए। उनमे एक सशोधन इस आशय का था कि एक्सचेज-रेट अभी निश्चित न की जाय—सारे प्रश्न का निर्णय भविष्य के लिए छोड दिया जाय। रिजर्व बैंक की स्थापना मे अभी देर थी, इसलिए उसके द्वारा सोने या स्टर्लिंग की खरीद-बिक्री का प्रश्न अभी कुछ काल तक उठनेवाला नही था। फिर भी सरकार इसी समय दर को निश्चित कर देने पर तुली हुई थी और उसने जो चाहा, कर दिया। इस प्रश्न से सम्बन्ध रखनेवाला एक भी सशोधन परिषद्-द्वारा स्वीकृत न हो सका, और रिजर्व बैंक-द्वारा स्टर्लिंग की खरीद-बिक्री के लिए १८ पेंस की रेट निर्धारित हो गई।

दिसम्बर १९३८ मे श्रीसुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता मे काग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया—

"जब से रुपए की दर १८ पेंस मुकर्रर कर दी गई तब से यहा का व्यवसायी-वर्ग और यहा की सार्वजनिक सस्थाए इसका विरोध करती आ रही है। उनकी माग यह रही है कि चूकि हुण्डी की यह दर, आर्थिक दृष्टि से, भारतवर्ष के लिए अहितकर है, इसमे रद्दोबदल होना जरूरी है। भारत-सरकार इस लोकमत की उपेक्षा करती आई है। ६ जून (१९३८) को उसने इस विषय पर एक वक्तव्य निकाल कर कहा कि वह हुण्डी की दर मे कोई भी हेर-फेर करना नही चाहती और दलील यह पेश की कि हेर-फेर करने से परिस्थिति इतनी डावाडोल और अनिश्चित हो जायगी कि लोगो को लाभ के बदले हानि उठानी पडेगी।

"समिति की राय मे १८ पेस की दर से यहा के किसानो की गहरी हानि हुई है। इसने उनकी पैदावार की कीमत गिरा दी है और बाहर से आनेवाले माल को नाजायज फायदा पहुचाया है।

"कार्यकारिणी समिति का विश्वास है कि अगर व्यापार की यही हालत बनी रही तो यह दर आगे टिकनेवाली नही है। पिछले ७ वर्षो मे यह सिर्फ सोने के बडे पैमाने पर निर्यात के कारण ही टिक सकी है। उस निर्यात से देश की बडी क्षति हुई है। अब इसको आगे टिकाने के लिए गिरावट के सिवा और कोई रास्ता नजर नही आता। भारतवर्ष के पास सोने और स्टर्लिंग के रूप मे जो सम्पत्ति बच गई है उसको बरबाद करके ही हुण्डी की यह दर कायम रखी जा सकती है। जो स्टर्लिंग था वह पहले भी बहुत कुछ स्वाहा हो चुका है, अगर भारत-सरकार ने इस दर को टिकाने के प्रयत्न से मुह न मोडा तो बचा-खुचा स्टर्लिंग भी जाता रहेगा। कार्यकारिणी की दृष्टि मे ऐसी सम्भावना अत्यन्त चिन्ताजनक है।

"परिस्थिति को देखते हुए कार्यकारिणी इस नतीजे पर पहुची है कि देश की भलाई इसी मे है कि हुण्डी की दर को टिकाने का प्रयत्न छोड दिया जाय और सरकार इसे शीघ्रातिशीघ्र १६ पेस कर देने की दिशा मे अग्रसर हो।"

पर सरकार का उस दिशा मे अग्रसर होना एक असभव-सी बात थी। ऊची दर कायम की गई थी इगलैण्डके हित की दृष्टिसे, और जब तक इगलैण्ड का यहा आधिपत्य था तब तक यहा की सरकार की नीति मे वैसे परिवर्तन की आशा दुराशा-मात्र थी। कार्यकारिणी के प्रस्ताव का उसकी ओर से जो उत्तर दिया गया उसमे एक बार फिर वही पुराना झूठ दोहराया गया कि हुण्डी की दर गिरने से किसानो का लाभ नही बल्कि हानि है।

बडे पैमाने पर सोने की रफ्तनी से इतना जरूर हुआ कि १८ पेस की दर टिकाने मे सरकार को किसी कठिनाई का सामना करना नही पडा। हमारा सोना गया, रेट अपनी जगह बनी रही।

११

रिजर्व बैंक की स्थापना

१९३१ के वाद की घटनाओ मे यहा रिजर्व बैंक की स्थापना महत्व-पूर्ण स्थान रखती है।

इस प्रकार की बैंक से सम्बन्ध रखनेवाला प्रस्ताव प्राय सौ वरस पुराना वताया जाता है। १८३६ मे कुछ अगरेज व्यापारियो ने ईस्ट इडिया कम्पनी के सचालको के सामने यह प्रस्ताव रखा था कि भारतवर्ष में एक ऐसी वडी बैंक स्थापित की जाय जिसमे साधन और शक्ति यथेष्ट रूप से केन्द्रीभूत हो और जिसका यहा के सराफा-वाजार पर पूरा आधि-पत्य हो। पर यह प्रस्ताव ही रहा। १८६७ मे फिर इस विषय की कुछ चर्चा हुई—तीनो प्रेसिडेसी बैंको को सम्मिलित कर एक अखिल भारतीय बैंक कर देने की सलाह सरकार को दी गई, पर कुछ नतीजा न निकला। इसके वाद भी दो-एक मौको पर यह प्रश्न सरकार के सामने लाया गया, पर इससे परिस्थिति मे कुछ भी अन्तर न पडा। चेम्बरलेन-कमीशन के सदस्य अध्यापक (वर्त्तमान लॉर्ड) केन्स ने, दूसरे सदस्य सर अर्नेस्ट केवल के सहयोग से, इस सम्बन्ध मे एक स्कीम तैयार की, पर महासमर छिड जाने के कारण इसपर विचार भी न हो सका। शान्ति स्थापित हो जाने पर फिर ऐसी केन्द्रीय बैंक के प्रश्न की ओर लोगो का ध्यान गया और इस बार यह दीखने लगा कि कुछ-न-कुछ होके ही रहेगा। सफलता की दृष्टि से उस समय सबसे व्यावहारिक उपाय यही समझा गया कि तीनो प्रेसिडेसी बैंको का एकीकरण कर दिया जाय। अन्त मे इसी एकीकरण से इम्पीरियल बैंक की सृष्टि हुई। इससे सम्बन्ध रखनेवाला विधान सितम्बर १९२० मे स्वीकृत हुआ और २७ जनवरी १९२१ से अमल मे लाया गया।

पर अभीप्ट-सिद्धि न हो सकी। इम्पीरियल बैंक मे उन सब बातो का समावेश न था जो किसी देश या राष्ट्र की नीति को क्रियात्मक रूप देनेवाली सबसे प्रधान बैंक मे होनी चाहिए। उसमे कई दोष नजर आने लगे। इम्पीरियल बैंक न तो सरकारी बैंक थी, न यथार्थत सार्वजनिक। वह कुछ शेयरहोल्डरो के हाथ की चीज थी जिसमे अगरेजो का प्राधान्य था—जिसकी नीति-रीति भारतीय वाणिज्य-व्यवसाय की दृष्टि से पूर्णत सन्तोषजनक नही कही जा सकती थी। जो बैंक सर्वोपरि हो—जो वास्तव मे इस व्यवसाय-चक्र की धुरी का काम करे—उसे ऐसा काम-काज नही करना चाहिए जिससे और बैंको की प्रतियोगिता हो। पर इम्पीरियल बैंक पर इस प्रकार का कोई नियत्रण नही था—व्यवसाय के क्षेत्र मे वह प्राय और बैंको के ही समान थी, जिसका अर्थ होता है कि जो उनसे प्रतियोगिता करती थी उसी पर उनके सरक्षण की जिम्मेवारी थी। सेण्ट्रल अर्थात् केन्द्रीय बैंक को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह कुल सरकारी रोकड रखे और नोटो के प्रसार का प्रबन्ध करे। इम्पीरियल बैंक को कुल रोकड रखने का अधिकार प्राप्त नही था—उदाहरणार्थ, गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व सरकार अपने हाथ मे ही रखती थी। नोटो के प्रसार का काम भी उसे नही सौपा गया था, इसलिए पेपर करेन्सी रिजर्व भी उसके दायरे से बाहर था। कुछ ही समय बाद यह सिफारिश की जाने लगी कि भारतवर्ष मे एक ऐसी नई बैंक स्थापित की जाय जो विशुद्ध सेण्ट्रल या रिजर्व (निधि) बैंक का काम करे—जिसपर करेन्सी और एक्सचेज-सम्बन्धी पूरी जिम्मेवारी हो—और जिसे यह जिम्मेवारी पूरी करने के लिए सरकार से विशेष अधिकार प्राप्त हो। हिल्टन यग कमीशन की यह एक खास सिफारिश थी—यद्यपि १९३४ से पहले रिजर्व बैंक-सम्बन्धी विधान न बन सका।

सरकार की ओर से जो मसविदा १९२७ में पेश किया गया वह व्यवस्थापिका परिषद् को आपत्तिजनक जचा—खास कर इसलिए कि उसके अनुसार रिजर्व बैंक सरकारी बैंक न हो कर, शेयर-होल्डरो की बैंक होती और उसके डाइरेक्टरो अथवा सचालको की नियुक्ति उस प्रकार न होती जो भारतीय हित की दृष्टि से वाछनीय कहा जा सकता था। सरकार अन्त

मे इस बातपर राजी हो गई कि रिजर्व बैंक शेयर-होल्डरो की बैंक न होकर सरकारी बैंक हो, पर डाइरेक्टरो की नियुक्ति के प्रश्न पर एक राय न हो सकी। अर्थ-सदस्य ने एक दूसरा मसविदा परिषद् के सामने रखा और कुछ लोगो को ऐसा दीखने लगा कि इसके आधार पर समझौता हो जायगा। पर भारत-सचिव को समझौते की बात मजूर नही थी, और उन्होने भारत-सरकार को उस दिशा मे आगे बढने से रोक दिया। अर्थ-सदस्य को परिषद् मे यह कहना पडा कि डाइरेक्टरो के प्रश्न पर घोर मतभेद होने के कारण सरकार इस अधिवेशन मे प्रस्तुत बिल पर और कुछ विचार करना-कराना मुनासिब नही समझती।

कुछ ही समय बाद उसकी ओर से दूसरा बिल प्रकाशित किया गया। इसमे कितनी ही नई बाते थी, पर बैंक को सरकारी बैंक बनाने की व्यवस्था नही थी। इस विषय मे सरकार को उसी पुराने पहलू पर लौट जाना पडा था कि बैंक शेयर-होल्डरो की हो। साथ ही, यह भी व्यवस्था थी कि व्यवस्थापिका परिषद् या सभा के सदस्य इस बैंक के डाइरेक्टर न हो सकेगे। पर परिषद् के अध्यक्ष ने अर्थ-सदस्य को यह बिल विचारार्थ उपस्थित करने की अनुमति नही दी। कारण यह था कि न तो इन्होने पुराने बिल को बाकायदा वापस लिया था, न अभी इतना समय बीत पाया था कि वह बिल निरस्त या निर्जीव समझा जाय। विवश होकर अर्थ-सदस्य को सरकार की ओर से फिर उसी पुराने बिल को विचारार्थ उपस्थित करना पडा। पर ऐसा करते ही पुराना विरोध फिर जोर-शोर के साथ उठ खडा हुआ और सरकार को प्रत्यक्ष हो चला कि जो वह चाहती थी वह न हो सकेगा। लेहाजा १० फरवरी १९२८ को उसकी ओर से यह कहकर कि परिषद् के रुख को देखते हुए इस दिशा मे और आगे बढने से कोई लाभ नजर नही आता—इस विषय की चर्चा यही समाप्त कर दी गई।

१९३१ मे सेण्ट्रल बैंकिग इनक्वायरी कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उसमें इस बात पर जोर दिया गया था कि रिजर्व बैंक यथाशीघ्र स्थापित की जाय। फिर लन्दन की राउण्ड टेबल कान्फरेस (गोलमेज परिषद्) की फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी ने भी प्राय यही सिफारिश दोहराई। १९३३

मे राजनैतिक सुधारो के सम्बन्ध मे, सरकारी की ओर से एक बयान निकला। उसमे कहा गया था कि केन्द्र मे अर्थ-विभाग-सम्बन्धी जिम्मेवारी भारत-वासियो को सौप देने की दृष्टि से रिजर्व बैक का होना अनिवार्य है—और वह रिजर्व बैक ऐसी होनी चाहिए जिसपर किसी प्रकार का राजनैतिक दबाव न पड सके। इस विषय पर फिर से विचार करने के लिए एक कमेटी बैठी। इसकी रिपोर्ट अगस्त १९३३ मे निकली और इसकी सिफारिशो के आधार पर रिजर्व बैक-सम्बन्धी तीसरा बिल ८ सितम्बर को दोनो व्यवस्थापिका सभाओ मे पेश किया गया। इसपर विचार होता गया और इतिहास की पुनरावृत्ति की नौबत नही पहुची। कुछ हेर-फेर के साथ इस बिल ने अन्त मे विधान का रूप धारण किया और ६ मार्च १९३४ को इसे बडे लाट की स्वीकृति मिल गई। १ अप्रैल १९३५ को रिजर्व बैक की स्थापना हुई।

रिजर्व बैक शेयर-होल्डरो की बैक है। इसकी पूजी है पाच करोड रुपए, और प्रत्येक शेयर सौ रुपए का है। कुछ शेयर भारत-सरकार इसलिए अपने हाथ मे रखती है कि अगर कोई शख्स सेण्ट्रल बोर्ड का डाइरेक्टर चुना जाय और उसके पास कम-से-कम उतने शेयर न हो जितने डाइरेक्टर के पास होने चाहिए, तो सरकार इन शेयरो मे से कुछ उसके हाथ बेच कर उसकी कमी पूरी कर दे। शेयर-होल्डर अलग-अलग प्रातो या प्रदेशो मे विभक्त है। और प्रत्येक प्रात या प्रदेश का अपना खास रजिस्टर है। ये रजिस्टर बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास मे रखे जाते है। इस बात के लिए खास विधान है कि रिजर्व बैक के शेयर-होल्डर वही हो सकते है जो भारतवर्ष (या बर्मा*) के निवासी है या जो ब्रिटिश प्रजा की परिभाषा के अन्तर्गत है। व्यक्तियो के साथ कम्पनियो को भी शेयर-होल्डर होने का हक हासिल है।

---

* १ली अप्रेल १९३७ से बर्मा भारतवर्ष से अलग कर दिया गया। इसके क्या कारण थे यह बताना यहा अप्रासगिक होगा। पर राजनैतिक पृथक्करण के बावजूद भी रुपए का स्थान वहा पूर्ववत् ही बना रहा। निर्णय यह हुआ कि मुद्रा-सम्बन्धी व्यवस्था की दृष्टि से दोनो देश एक

मूल-विधान मे सशोधन करके अब यह व्यवस्था कर दी गई है कि बीस हजार रुपए से अधिक का कोई भी शेयर-होल्डर नही माना जा सकता। बैंक की पूजी, सेण्ट्रल बोर्ड की सिफारिश और व्यवस्थापिका सभाओ की सिफारिश से घटाई-बढाई जा सकती है। सेण्ट्रल बोर्ड के लिए जरूरी है कि सिफारिश करने से पहले भारत-सरकार की अनुमति प्राप्त कर ले। पूजी के अलावा बैंक के पास पाच करोड का रिजर्व भी है। शेयर-होल्डरो को जो डिविडेड या मुनाफा मिल सकता है वह सरकार द्वारा ३॥ प्रतिशत नियत है। उतना दे देने पर बचत होने की सूरत मे उसका एक हिस्सा शेयर-होल्डरो को मिलेगा और बाकी सरकार ले लेगी।

बैंक का सचालन और प्रबन्ध डाइरेक्टरो के सेण्ट्रल बोर्ड-द्वारा होता है। इसके १६ सदस्य होते है, यथा (क) एक गवर्नर और दो डिप्टी गवर्नर, जो भारत-सरकार द्वारा नियुक्त होते है, (ख) चार डाइरेक्टर, जिन्हे भारत-सरकार मनोनीत करती है, (ग) आठ डाइरेक्टर, जो शेयर-होल्डरो का प्रतिनिधित्व करते है—बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली की ओर से छ और मद्रास तथा रगून की ओर से दो, (घ) एक सरकारी अफसर, जिसे भारत-सरकार मनोनीत करती है। सेण्ट्रल बोर्ड के अलावा पाच लोकल बोर्ड है—प्रत्येक प्रात या प्रदेश के लिए एक। इन लोकल बोर्डो के कुछ सदस्य शेयर-होल्डरो द्वारा निर्वाचित होते है, और कुछ सेण्ट्रल बोर्ड-द्वारा मनोनीत। लोकल बोर्डो का काम है सेण्ट्रल बोर्ड को सलाह देना और जो जिम्मेवारी उसके द्वारा सौपी जाय उसे पूरा करना।

बैंक का सर्वोच्च पदाधिकारी या कर्मचारी उसका गवर्नर है जो सेंट्रल बोर्ड का अध्यक्ष भी है। गवर्नर और डिप्टी गवर्नर भारत-सरकार-द्वारा

ही क्षेत्र समझे जायेंगे और व्यवस्थापक का पद भारतवर्ष की रिजर्व बैंक को प्राप्त होगा।

बर्मा पर जापान का आधिपत्य हो जाने से पहले एक रजिस्टर रंगून में भी रखा जाता था। इस समय बर्मा की मुद्राप्रणाली जापान के अधीनस्थ और देशो की-सी हो चली है।

प्राय पाच साल के लिए नियुक्त होते है। बैंक का हेड ऑफिस—जिसे सेण्ट्रल ऑफिस कहते है—बम्बई मे है, और इसके कई विभाग है। गवर्नर को कुछ समय कलकत्ते मे भी बिताना पडता है।

रिजर्व बैंक का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत है, पर मोटे तौर पर वह दो हिस्सो मे बाटा जा सकता है। नोटो के प्रसार का काम अब सरकार स्वय नही करती, उसने इसे रिजर्व बैंक को सौप दिया है। नोट-प्रसार-विभाग को रिजर्व बैंक का अत्यन्त महत्वपूर्ण अग समझना चाहिए। इसका दूसरा बडा अग या विभाग बैंकिंग व्यवसाय से सम्बन्ध रखता है। एक का हिसाब-किताब दूसरे से बिलकुल अलग रहता है। बैंक को अपने इन दोनो विभागो का तलपट प्रति सप्ताह सरकार के पास भेजना पडता है और वह कुछ पत्रो मे प्रकाशित भी होता है। ३१ दिसबर १९४३ का तलपट इस प्रकार था—

नोट-प्रसार-विभाग

	रुपया
बैंकिंग-विभाग मे नोट	९,५९,७२,०००
चलन मे नोट	८४०,८०,१६,०००
जोड	८५०,३९,८८,०००

नोटो की पुश्ती करनेवाली चीजे—

(क) सोना और सोने के सिक्के—

(१) भारतवर्ष मे	४४,४१,४३,०००*
(२) भारतवर्ष के बाहर	....

*रिजर्व में इतना ही सोना बरसो से चला आ रहा है। नोट-प्रसार के लिए अभी तक वही पुरानी दर मुकर्रर है—अर्थात् १ तोला सोना = २१≡)१०

स्टर्लिग मे अदा होनेवाली	
सिक्यूरिटीज या सरकारी कागज	७३४,८३,९६,०००
	७७९,२५,३९,०००
(ख) रुपए	१२,८१,८४,०००
रुपए मे अदा होनेवाली	
सिक्यूरिटीज या सरकारी कागज	५८,३२,६५,०००
जोड	८५०,३९,८८,०००

बैंकिग विभाग

देनदारी—	
पूंजी	५,००,००,०००
रिजर्व फण्ड	५,००,००,०००
डिपॉजिट	
(क) सरकारी	
(१) भारत-सरकार	१३,८७,४०,०००
(२) बर्मा-सरकार	५०,७८,०००
(३) दूसरी सरकारी रकमे	९,८९,८२,०००
(ख) बैंको के	९०,१७,३९,०००
(ग) दूसरो के	७,१६,५७,०००
चुकनेवाले बिल	३,३७,८७,०००
दूसरी देनदारी	६,८१,२८,०००
जोड	१४१,८१,११,०००
सम्पत्ति—	
नोट	९,५९,७२,०००
रुपए	१७,९३,०००
रेजगारी	१,६०,०००
हुडिया—जो खरीदी या डिस्कूट की गई	
(क) देशी	....

(ख) विदेशी	....
(ग) सरकारी ट्रेजरी विल	३,२५,०००
रोकड जो विदेशो मे है	१२०,६०,००,०००
सरकार को दिया गया कर्ज	२६,००,०००
दूसरो को दिए गए कर्ज	१८,७५,०००
जो रकम शेयरो मे या और चीजो मे लगी हुई है	७,६८,५३,०००
दूसरी सम्पत्ति	३,२५,३३,०००
	१४१,८१,११,०००

नोट-प्रसार का जो काम पहले सरकार खुद किया करती थी वह अब रिजर्व वैक के जिम्मे है। हा, वैक-द्वारा निकाले गए नोटो के भुगतान की गारण्टी सरकार ने दे रखी है। इस काम के सुचारु रूप से सम्पादन के लिए भारतवर्ष छ सर्कलो मे विभक्त है, यथा—कलकत्ता, कानपुर, लाहौर, वम्वई, कराची और मद्रास।

ऊपर नोट-प्रसार विभाग का जो तलपट दिया गया है उसमे नोट-सम्वन्धी देनदारी ८ अरव ५० करोड ३९ लाख ८८ हजार रुपए की दिखाई गई है—अर्थात् उस तारीख को इतने रुपए के नोट खडे थे और इनमें से प्राय॰ साढे नौ करोड के नोट वैक के अपने वैकिग-विभाग मे थे। जब चलन मे नोटो का परिमाण वताया जाता है तव ऐसे नोटो को छोड कर। हा, सरकारी खजाने मे या दूसरी वैको के पास जो नोट होते है वे शामिल कर लिए जाते है।

नोटो की पुश्ती के लिए वैक के रिजर्व या कोष मे जो धन है उसमें सबसे पहली चीज है सोना। इस समय जो कुछ सोना है वह इसी देश में है, अन्यत्र नही। पुश्ती के लिए जहा सोना प्राय ४४॥ करोड का था वहा स्टर्लिंग सिक्यूरिटीज थी प्राय॰ ७३५ करोड की। इधर लडाई छिडने के वाद भारत-सरकार ने एक रुपए के नोट जारी किए है। ये नोट भी तलपट के "रुपए" मे शामिल है—अर्थात् कुछ हद तक नोटो की पुश्ती नोटो से ही की जा रही है।

वर्तमान अवस्था मे मुद्रा-सम्बन्धी विस्तार या सकोच करने का उपाय है नोटो का परिमाण बढा या घटा देना—और यह इस प्रकार किया जा सकता है :—

अगर पुश्ती के लिए रुपए (जिनमे एक रुपए के नोट भी शामिल हैं), सोना या किसी प्रकार की सिक्यूरिटीज (कागज) बढा दी जायँ और दूसरी ओर उतने नोट जारी कर दिए जायँ, तो यह मुद्रा-सम्वन्धी विस्तार होगा। जब रिजर्व बैंक को ऐसा विस्तार करना होता है तब वह अपने बैंकिग-विभाग से सिक्यूरिटीज को उठा कर नोट-प्रसार-विभाग मे डाल देती है और उसके मद्दे नोट जारी करके बैकिग-विभाग को दे देती है। इसके लिए यह भी किया जा सकता है कि नए ट्रेजरी बिल निकाल दिए जायँ और उनके मद्दे नोट जारी कर दिए जायँ। ये ट्रेजरी बिल बैंक की तिजोरियो मे पडे रहेगे और जो नोट जारी होगे उनकी पुश्ती करेगे। जब मुद्रा-सम्बन्धी सकोच करना होता है तब बैंक नोट-प्रसार-विभाग से सिक्यूरिटीज को उठाकर बैकिग-विभाग में डाल देती है और उस विभाग से जो नोट मिलते है उन्हे रद्द कर देती है—क्योकि नोट-प्रसार-विभाग मे सिक्यूरिटीज की जगह नोट नही रखे जा सकते। यह भी हो सकता है कि सरकार ट्रेजरी बिलो का भुगतान कर दे और इस प्रकार नोट-प्रसार-विभाग मे जो नोट आवे वे रद्द कर दिए जायँ—अर्थात् मुद्रा-सम्वन्धी सकोच या कमी पैदा कर दी जाय। पहले करेन्सी और बैंकिग-सम्वन्धी सूत्र अलग-अलग हाथो मे थे। करेन्सी का काम स्वय सरकार देखा करती और जहा तक बैंकिग का सरोकार है वह इम्पीरियल बैंक से अपने साधन का काम लेती। अब परिस्थिति भिन्न है। सारे सूत्र रिजर्व बैंक के हाथ मे आ गए है। करेन्सी, एक्सचेज, बैकिग—इन सवसे सम्वन्ध रखनेवाली सरकारी नीति को क्रियात्मक रूप उसीके द्वारा मिलता है। प्रवन्ध-सम्बन्धी जहा पहले अनेकता थी वहा अव एकता है, और इस एकता के कारण अव वह समन्वय हो चला है जिसका पहले अभाव-सा था।

ऊपर सक्षेप मे वताया जा चुका है कि करेन्सी के क्षेत्र मे रिजर्व बैंक के कर्तव्य क्या है। यहा बैंकिग के क्षेत्र मे उसके कर्तव्य का दिग्दर्शन कराना है।

रिजर्व बैंक वास्तव मे बैंको की बैंक है—इस सारे व्यवसाय की उसे धुरी या मेरूदण्ड समझिए। देश मे जितनी ऐसी बैंके है जो कुछ महत्व रखती है और जो रिजर्व बैंक की सूची या शेडूल म दाखिल हो चुकी है—उन सबको एक निश्चित रकम इसके पास रखनी पडती है। वह रकम क्या होगी, यह प्रत्येक बैंक की अपनी देनदारी पर निर्भर है। अगर देनदारी ऐसी है कि पावनेदार के तलब करते ही चुका देनी चाहिए तो उसे उस देनदारी का कम-से-कम ५ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा रखना होगा। और अगर देनदारी चुकाने के लिए समय या मुद्दत मिलने की गुजाइश है तो उस बैंक को पाच की जगह दो प्रतिशत ही जमा कराना होगा। रिजर्व बैंक का जो तलपट ऊपर दिया गया है उसमे "बैंको के डिपॉजिट" प्राय ९० करोड है। इसमे खास कर वह रकमे शामिल है जो शेडूल्ड बैंको को—अपनी-अपनी देनदारी के अनुसार—रिजर्व बैंक के पास जमा करानी पडती है। और बैंको की तरह रिजर्व बैंक व्याज पर डिपॉजिट नही ले सकती। उस प्रतिवन्ध का उद्देश है उसे दूसरी बैंको की प्रतियोगिता करने से रोकना। इस प्रकार रिजर्व बैंक के पास डिपॉजिट रखना इन बैंकों के लिए अपनी हिफाजत का वीमा है। गाढे समय मे किसी भी बैंक को कर्ज के रूप मे मदद के लिए रिजर्व बैंक के पास दौडना पड़ेगा और उसके पास डिपॉजिट के रूप मे जितना अधिक धन जमा होगा उतना ही अधिक वह सहायतार्थियो की सहायता कर सकेगी।

यहा 'शेडूल्ड' या तालिकान्तर्गत बैंको के विषय मे कुछ और कहने की आवश्यकता है।

जब से रिजर्व बैंक की स्थापना हुई,यहा की बैंके दो श्रेणियो मे विभक्त हो चली है—एक तो वे, जो रिजर्व बैंक की तालिका के अन्तर्गत है, दूसरी वे जो उसके बाहर है। कोई भी बैंक—कुछ खास शर्ते पूरी करन पर—तालिका मे दाखिल हो सकती है। एक शर्त यह है कि वह ब्रिटिश भारत मे काम-काज करनेवाली कम्पनी हो, दूसरी शर्त यह कि उसके पास कम-से-कम पाच लाख रुपए की पूजी और रिजर्व हो। ऐसी बैंको की सख्या ३१ मार्च १९४१ को ६४ थी। इनमे ५ बर्मा मे काम करनेवाली बैंके थी।

सबसे बडी शेड्यूल्ड बैंक इम्पीरियल बैंक है। बैंकिंग क्षेत्र मे इसका खास अपना स्थान है। कभी यह इस देश की सेण्ट्रल बैंक होने का हौसला रखती थी। आज भी यह कई कामो मे एजेण्ट की हैसियत से रिजर्व बैंक का प्रतिनिधित्व करती है। इसके बाद विदेशी 'एक्सचेंज बैंको' का नम्बर है। इनकी सख्या २० है, और ये मुख्यत विदेशी हुडियो के लेन-देन का काम करती है। इनके बाद आती है इस देश की पाच बडी बैंके, जिनके नाम है—सेण्ट्रल बैंक ऑव् इण्डिया, बैंक ऑव् इण्डिया, इलाहाबाद बैंक, बैंक ऑव् बडोदा, और पजाब नैशनल बैंक। इनमे प्रत्येक की जगह-जगह शाखाएँ है और प्रत्येक के पास पाच करोड से अधिक डिपॉजिट है। बाकी बैंको का नम्बर इन सबके बाद आता है और इनमे कुछ तो बडी है, पर कुछ बहुत ही छोटी या साधारण।

अब रिजर्व बैंक और शेड्यूल्ड बैंको के बीच के सम्बन्ध पर एक नजर डालनी है।

प्रत्येक शेड्यूल्ड बैंक को रिजर्व बैंक के पास अपनी देनदारी के हिसाब से डिपॉजिट रखना पडता है, यह बात ऊपर बताई जा चुकी है। इसका असली उद्देश यह नही कि सर्वसाधारण का जो रुपया शेड्यूल्ड बैंको के पास जमा है उसे सुरक्षित किया जाय, क्योंकि दो या पाच प्रतिशत के हिसाब से डिपॉजिट लेने से वह उद्देश पूरा होने का नही। उद्देश दरअसल यह है कि रिजर्व बैंक को इस देश की बैकिंग प्रणाली या बैंकिंग व्यवसाय पर कुछ नियत्रण रखने का अधिकार दिया जाय। प्रत्येक शेड्यूल्ड बैंक के लिए यह जरूरी है कि वह भारत-सरकार को तथा रिजर्व बैंक को अपनी स्थिति से अभिज्ञ रखे। इसके लिए उसे प्रति सप्ताह (और अवस्था-विशेष मे प्रतिमास) निर्दिष्ट प्रकार से तैयार करके अपना एक तलपट भेजना पडता है। न भेजने पर रिजर्व बैंक को अधिकार है कि वह उस बैंक के और उसके सचालको के विरुद्ध मुनासिब कार्रवाई करे।

पर रिजर्व बैंक शासक होने के साथ सहायक भी है। शेड्यूल्ड बैंको के लिए कानून ने यह सुविधा कर दी है कि जरूरत पडने पर वे रिजर्व बैंक से कर्ज ले सकती है। यह कर्ज उन्हे कुछ खास तरह की सिक्यूरिटीज और

हुडियो के पेटे मिल सकता है। पर रिजर्व बैक कर्ज देते समय यह भी देख लेगी कि कर्ज मागने या लेनेवाली बैक कैसे कामो मे रुपया लगाती है और उसकी नीति-रीति कैसी है। रिजर्व बैक जिस रेट या दर से निर्दिष्ट प्रकार की हुडियो को डिस्कूट कर सकती है वह बैक-रेट कहाती है। बैक-रेट घटाने-बढाने का रिजर्व बैक को अधिकार है। कुछ समय से यह ३ प्रतिशत चली आती है। सराफे के बाजार पर नियत्रण करने के लिए उसके हाथ मे यही बैक-रेट खास अस्त्र है। पर नियत्रण के लिए इस अस्त्र का प्रयोग वह विशेष रूप से तभी कर सकती है जब बाजार मे रुपए की टान या तगी हो और शेडल्ड बैको को कर्ज के लिए उसका दरवाजा जोर से खटखटाना पडे। जब से रिजर्व बैक की स्थापना हुई, ऐसी अवस्था कभी उत्पन्न नही हुई है। रिजर्व बैक और उपायो से भी कुछ हद तक बाजार पर हुकूमत कर सकती है। जब वह ट्रेजरी बिल बेचने चलती है तब बाजार से रुपए खैच लेती है, जब वह स्टर्लिंग खरीदने चलती है तब बाजार मे और रुपए डाल देती है। मुद्रा-सम्बन्धी इस घटा-बढी का असर बैकिंग व्यवसाय पर पड़े बिना नही रह सकता।

जो बैके रिजर्व बैक की तालिका के बाहर है उनकी स्थिति से भी वह अपने को अभिज्ञ रखती है और उन्हे मुनासिब सलाह देने को तैयार रहती है। एक जगह से दूसरी जगह रुपया भेजने के लिए, रिजर्व बैक ने इनमे से कुछ खास बैको के लिए रियायती दर कर रखी है।

बैको की बैक होने के अलावा रिजर्व बैक सरकार की भी बैक है। इस हैसियत से वह भारत-सरकार और प्रातीय सरकारो का रुपया जमा रखती है (जहा न तो रिजर्व बैक की कोई शाखा है न उसके ऐजट इपीरियल बैक की, वहा सरकारी रुपया उसके अपने खजाने मे रहता है), उनके आदेशानुसार भुगतान करती है, उनकी ओर से कर्ज लेती या चुकाती है और थोडे समय के लिए उन्हे कुछ रुपए की जरुरत आ पडी तो इसे पूरा करती है। सरकार के लिए स्टर्लिंग खरीदने का काम भी रिजर्व बैक ही किया करती है। साधारण बैकिग काम करने के लिए रिजर्व बैक को कोई पुरस्कार नही मिलता, पर साथ ही, वह सरकार को उस रुपए पर कुछ भी व्याज

देने के लिए बाध्य नही जो उसके पास जमा रहता है । पर सार्वजनिक कर्ज-सम्बन्धी काम करने के लिए उसे सरकार से पुरस्कार या कमीशन मिलता है।

विभिन्न आर्थिक विषयो पर—खास कर सार्वजनिक कर्ज लेते समय—भारत-सरकार और प्रातीय सरकारे रिजर्व बैंक से सलाह मागा करती है, और सलाह देने से पहले रिजर्व बैंक प्रत्येक विषय पर व्यापक दृष्टि से विचार कर लेती है।

रिजर्व बैंक का एक खास विभाग किसानो के कर्ज से सम्बन्ध रखने वाली समस्या के हल के लिए है। इस देश के लिए यह प्रश्न कितना महत्वपूर्ण है यह बताने की आवश्यकता नही। रिजर्व बैंक-द्वारा सारे विषय की समीक्षा-परीक्षा की गई है और यह ऐलान किया गया है कि अगर सहकारी या कोऑपरेटिव बैंके हमारी शर्ते पूरी कर सकती है तो हम उन्हे उधार देने को तैयार है।

रिजर्व बैंक की जिम्मेवारियो मे एक का सम्बन्ध एक्सचेज को १८ पेंस के करीब टिकाए रखने से है। इसके लिए वह कुछ निर्दिष्ट सीमा के भीतर स्टर्लिंग की खरीद-बिक्री करने को बाध्य है। जब स्टर्लिंग बेचेगी तब १७ ४९/६४ पेंस से नीची रेट से नही—अर्थात् एक्सचेज इससे नीचे नही जा सकता। जब स्टर्लिंग खरीदेगी तब १८ ३/१६ पेंस से ऊंची रेट से नही—अर्थात् एक्सचेज इससे ऊपर नही जा सकता।

साधन-सम्पन्न होते हुए भी रिजर्व बैंक को कानूनी मर्य्यादा के भीतर चलना पडता है और वह अपने साधनो का उपयोग केवल कमाई की दृष्टि से नही कर सकती। उसे अपने धन को बराबर ऐसे रूप मे रखना पडता है कि आवश्यकता पडने पर उसे शीघ्र-से-शीघ्र, बिना नुकसान उठाए, मुद्रा मे परिणत कर सके। जो औरो की हिफाजत के लिए है उसे अपनी हिफाजत का सबसे पहले ध्यान रखना पडता है।

१२

साहूकार की समस्या

३ सितम्बर १९३९ को—प्रथम महासमर छिडने के प्राय २५ वर्ष बाद—द्वितीय महासमर की आग धधक उठी और उसकी लपट मे इस देश को फिर आ जाना पडा। उस आग मे भारतीय धन-जन की काफी बडी आहुति पड चुकी है, और अभी पता नही कि हमे इस आहुति को कब तक जारी रखना पडेगा। कहा गया है कि हमारा यह त्याग यज्ञ-कुड मे होम-द्रव्य डालने के समान फल-प्रद होगा। इसमे कहा तक सचाई है यह भविष्य ही बता सकता है।

अभी तक हमारे त्याग का सबसे बडा नतीजा यह हुआ है कि जहा हम इगलैण्ड के कर्जदार थे वहा अब साहूकार बन गए है। पर इसका यह अर्थ नही कि हमारी सुख-समृद्धि बढ गई है या हमारी दीनता-हीनता कम हो गई है। साहूकार होते हुए भी हमे खाने-पीने को—पहनने को पहले से कम मिल रहा है। इस अभाव के प्रश्न ने इधर कही-कही बडा ही भीषण रूप धारण कर लिया है। कागजी जमा-खर्च से हम साहूकार जरूर साबित होते है, पर इस साहूकारी की बुनियाद हमारी फाकाकशी है—अर्थात् स्टर्लिंग के रूप मे हम जो धन जमा कर सके है वह पेट काट कर। उस स्टर्लिंग के सम्बन्ध मे तरह-तरह के प्रश्न उठ रहे है—तरह-तरह की आशकाए हो रही है। पर उनकी आलोचना से पहले कुछ और घटनाओ का उल्लेख आवश्यक है।

महासमर छिडते ही सोने के मुकाबिले स्टर्लिंग का विनिमय-मूल्य नीचे गिर पडा। अगस्त मे हुडी की दर ४ ६८ डॉलर के आसपास थी। सितम्बर मे सरकार को यह दर ४ ०३ के आसपोस बाध देनी पडी। लन्दन मे सोने का बाजार २ से ४ सितम्बर और बम्बई मे ४ से ७ सितम्बर तक

बन्द रहा। ५ सितम्बर को इगलैण्ड मे सोने की खरीद-बिक्री की मनाही कर दी गई। भारतवर्ष मे यह नियम कर दिया गया कि बिना रिजर्व बैंक से लाइसेंस प्राप्त किए कोई भी सोने को न तो बाहर से यहा मगा सकेगा और न यहा से बाहर भेज सकेगा। देश के भीतर सोने की खरीद-बिक्री पर किसी प्रकार का नियत्रण नही किया गया। तब से यहा सोने के दाम पर सामरिक घटनाओ के (जिनमे आशाए और आशकाए भी शामिल है) असर पडते रहे है और उनके अनुसार वह घटता-बढता रहा है। मुख्य बात यह है कि आयात और निर्यात-सम्बन्धी नियत्रण के कारण यहा का बाजार बाहर के बाजार से पृथक्-सा हो गया है। अब यह आवश्यक नही कि बम्बई मे सोने का दाम लन्दन या न्यूयार्क के दाम का अनुसरण करे। एक औस खालिस सोने का दाम लन्दन मे १६८ शिलिग और न्यूयार्क में ३५ डॉलर चला आ रहा है। पर यहा भारतवर्ष मे दाम उत्तरोत्तर बढता* ही गया है। बम्बई मे इधर ऊचे-से-ऊचा दाम इस प्रकार रहा है —

	फी तोला रु० आ० पा०
१९३८—३९	३७–१०–६
१९३९—४०	४३– ८–०
१९४०—४१	४८– ८–०
१९४१—४२	५८– ४–०
१९४२—४३	७२– ०–०

चादी का दाम भी बढता ही गया है। उसमे उत्तरोत्तर वृद्धि इस प्रकार हुई है—

---

*पुस्तक छपते-छपते (दिसबर, १९४३) बाजार में कुछ मन्दी आ गई है और सोने-चांदी के दाम गिरने लगे है। २३ दिसबर को दाम थे—सोना ७०॥) और चादी ११३॥)। इसका एक कारण तो रिजर्व बैंक की बिकवाली है, दूसरा लोगो की यह धारणा है कि महासमर का अन्त अब दूर नहीं है।

बम्बई मे १०० तोले का ऊचे से ऊचा दाम

	रु०	आ०	पा०
१९३८—३९	५३	१	६
१९३९—४०	६६	४	०
१९४०—४१	६४	१३	०
१९४१—४२	९६	८	०
१९४२—४३	११६	८	०

सोने की तरह चादी का विदेशी व्यापार भी नियन्त्रित है। इसलिए अब यह जरूरी नही है कि न्यूयार्क के बाजार की घटा-बढी के अनुसार ही बम्बई के बाजार मे भी घटा-बढी हो।

और सोने की तरह चादी को भी लोग धरोहर के रूप मे रखने लगे है। लडाई-जैसे समय मे उनका सोने-चादी को ऐसी तरजीह देना अस्वाभाविक या आश्चर्यजनक नही कहा जा सकता। पर जहा एक ओर चादी की माग बढ गई है वहा दूसरी ओर उसकी आमद कम हो गई है। और भारत-सरकार ने लन्दन मे चादी बेचकर यहा उसकी और भी कमी पैदा कर दी है। इन सब कारणो से दाम इतने ऊँचे हो रहे है।

भारत-सरकार-द्वारा लन्दन मे चादी की बिक्री का ऊपर उल्लेख हो चुका है। उसके सम्बन्ध मे कुछ और कहना आवश्यक प्रतीत होता है।

लडाई शुरू होने से पहले ही लन्दन मे चादी के बाजार मे तेजी आ गई थी और जो दाम १० जुलाई १९३९ को १६$\frac{१}{१६}$ पेस था वह २५ अगस्त १९३९ को २०$\frac{१}{१६}$ पेस हो चला था। चादी मिलने मे कठिनाई होने लगी और दाम ऊपर चढने लगा। ऐसे मौके पर भारत-सरकार ने लन्दन मे हमारी चादी बेचना शुरू किया। ऊचे-से-ऊचा दाम २३॥ पेस रखा गया। इससे इगलैण्ड को बडी सहायता पहुची। सिक्को की ढलाई और औद्योगिक कामो के लिए जब बाजार मे काफी चादी नही मिलती तब भारत-सरकार अपनी चादी बेचकर वह कमी पूरी कर देती और दाम २३॥ पेस से ऊपर न उठ पाता। इगलैण्ड के उपकारार्थ इस प्रकार हमारी कितनी चादी बेच दी गई इसका हमे आज तक ज्ञान भी न हो सका।

१९४२ मे फेडरेशन आव् इण्डियन चेम्बर्स (भारतीय व्यापारी-महासभा) ने इस प्रकार की बिक्री का विरोध करते हुए सरकार को एक आवेदन-पत्र भेजा था, जिसमे लिखा था कि—

"फेडरेशन की कमेटी को यह मालूम नही कि चादी की बिक्री के बारे मे भारत-सरकार और ब्रिटिश-सरकार के बीच क्या समझौता हो चुका है। इस विषय मे सर्वसाधारण को कुछ भी बताया नही जाता और सारी कार्रवाई गुप्त रखी जाती है। कमेटी को इस बात का भी पता नही कि भारत-सरकार लन्दन मे जो चादी बेचती है वह २३॥ पेस की दर से ही या उससे नीचे दाम मे भी। अच्छा होता अगर सरकार स्पष्ट और प्रामाणिक रूप से यह बता देती कि कितनी चादी इगलैण्ड को बेची जा चुकी है, और किस दाम मे।

"युद्ध-सम्बन्धी उद्योग-धन्धो मे चादी का उपयोग अनिवार्य-सा हो गया है, इसलिए इगलैण्ड तथा दूसरे मित्र-राष्ट्रो को इसकी जो सख्त जरूरत है उसे महसूस करते हुए भी हम यह कह देना चाहते है कि जब उस चादी का दाम और भी ऊचा मिल सकता है तब उसे इतने नीचे दाम मे बेच देना इस देश की सम्पत्ति को लुटा देना है।

"हमारी मुद्रा-प्रणाली मे चादी का विशेष स्थान रहा है। इधर सरकार ने रुपए मे चादी की मात्रा ११/१२ से घटा कर १/२ कर दी है। रुपए मे अब तक जनता का जो विश्वास चला आया है उसको इस कार्रवाई से आघात पहुचने की सम्भावना है। आज नही तो कल सरकार को इस विषय पर पुर्नविचार करना पडेगा और रुपए मे चादी की मात्रा बढाकर फिर वही ११/१२ कर देनी पडेगी। इस दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि सरकार के पास जो कुछ भी चादी हो उसे वह बचाकर रखे, या किसी मित्र-राष्ट्र के हाथ बेचना आवश्यक भी हो तो ऐसे दाम मे बेचे कि लडाई के बाद जब बाजार मे चादी खरीदनी पडे तब उसे किसी तरह का घाटा न हो।"

अमेरिका मे चादी का दाम १० जुलाई १९३९ से प्राय ३५ सेण्ट (फी औंस खालिस चादी) चला आ रहा था। १९४२ मे अमेरिका का मेक्सिको से चादी के दाम के बारे मे नया समझौता हुआ। इसके फल-

स्वरूप ३१ अगस्त से अमेरिका मे सरकार-द्वारा चादी की खरीद की दर ४५ सेण्ट कर दी गई। जब वहा दर इतनी ऊची हो चली तब भारत-सरकार ने लन्दन में चादी बेचना बन्द कर दिया। इधर अमेरिका से इगलैण्ड को चादी उधार मिलने लगी है और लन्दन मे दाम वही २३॥ पेस चला आ रहा है।

चादी के सिक्को का चलन इधर बराबर कम होता गया है और आजकल नही के बराबर रह गया है। सरकार-द्वारा सिक्के गला-गला कर चादी की बिक्री और लडाई के जमाने मे लोगो का सिक्को को धरोहर के रूप मे रख लेना—इन दो कारणो से ऐसी स्थिति हुई है। १९२५ के लगभग चलन मे चादी के रुपयो की सख्या प्राय दो अरब समझी जाती थी। पन्द्रह साल बाद का तखमीना था प्राय १ अरब। १९४० मे कई साल बाद रुपयो की ढलाई फिर शुरू हुई और नए सिक्के मे चादी की मात्रा १६५ से घटाकर ९० ग्रेन कर दी गई।

विभिन्न देशो के बीच व्यापारिक सग्राम के सिलसिले मे एक्सचेज-सम्बन्धी नियन्त्रण का उल्लेख हो चुका है। लडाई छिडने पर भारत-सरकार ने भी इस प्रकार का नियन्त्रण आरम्भ कर दिया। इसके लिए उसने रिजर्व बैंक को आवश्यक अधिकार दे दिए और रिजर्व बैंक को इस विषय मे प्राय बैंक आव् इगलैण्ड की नीति-रीति का अनुसरण करना पडा।

आखिर यह नियन्त्रण है क्या ?

मोटे तौर पर इसका अभिप्राय यह है कि विदेशी मुद्रा मे हमे जो भुगतान मिलता है वह हम सरकार के हवाले कर दे और विदेश मे भुगतान करने के लिए हमे जिस रकम की जरूरत हो वह हम सरकार से हासिल करे।

साधारण समय मे जब इस प्रकार का कोई नियन्त्रण नही होता तब इस प्रकार के भुगतान के लिए कोई सरकार का दरवाजा नही खटखटाता। बाजार में ही हुडियो की खरीद-बिक्री के जरिए सब भुगतान हो जाते है। पाट या टाट बेच कर अगर किसीने कुछ मार्क या डॉलर प्राप्त किए है तो वह उस रकम को बैंक के हाथ बेच देता है और उसके बदले यहा रुपए ले लेता है। जिसको आयात वस्तुओ का दाम चुकाने के लिए मार्क या डॉलर चाहिए वह बैंक को रुपए देकर बदले मे मार्क या डॉलर हासिल कर लेता

है। पर मुद्राओ के विनिमय की दर निर्धारित कर देने के वाद सरकार या रिजर्व बैंक इस विषय मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करती और मुद्राओ की अदला-वदली या खरीद-विक्री अनियत्रित तथा अवाधित रूप से हुआ करती है।

पर असाधारण समय मे—विशेषत ऐसे महासमर के समय मे—यह स्थिति नही रह सकती। कई कारणो से सरकार के लिए इस विनिमय को नियन्त्रित करना—इसपर प्रतिबन्ध लगाना—आवश्यक हो जाता है। आधुनिक लडाई जिन उपायो से लडी जाती है उनमे आर्थिक व्यवस्था या योजना का बहुत ऊचा स्थान है। इस व्यवस्था या योजना के लिए वडी तैयारिया करनी पडती है—वडी वदिशे वाधनी पडती है। सामान जुटाने मे जो पिछड गया, समझ लीजिए, उसकी हार हो चुकी। और इतने वडे पैमाने पर सामान जुटाना कोई आसान काम नही। यथासभव एक देश को दूसरे से सहायता लेनी ही पडती है—जिसका अर्थ है कि उनके वीच लेन-देन के भुगतान के लिए मुद्राओ का विनिमय अनिवार्य हो जाता है।

पर यह विनिमय पहले की तरह अनियत्रित रूप से होता रहे तो कोई भी देश अपनी आर्थिक स्थिति को अपने काबू मे नही ला सकता। इगलैण्ड का उदाहरण देते है। उसे अमेरिका मे तरह-तरह के सामान खरीदने के लिए डॉलर चाहिए। ऋण लेने की वात छोड दी जाय तो डॉलर प्राप्त करने का प्रधान उपाय यही हो सकता है कि जिन लोगो ने वहा माल वेच रखा है और जिन्हे वहा की मुद्रा मे भुगतान मिला है उन्हे अपने डॉलर सरकार के हवाले कर देने को मजवूर किया जाय। अगर ऐसा नही होता तो वे अपने डॉलर वाजार मे वेच देगे और इनका सभवत ऐसा उपयोग होगा जिसे राष्ट्रीय दृष्टि से दुरुपयोग कहा जा सकता है। हो सकता है कि कोई पैसेवाला अपना पैसा इगलैण्ड से उठा कर अमेरिका ले जाना चाहता था और उसने स्टर्लिंग देकर इन डॉलरो को खरीद लिया। हो सकता है कि किसी व्यापारी ने अमेरिका से कुछ ऐसा माल मगा रखा था जो अमीरो के ठाटवाट को और भी वढाने वाला था और उसने इन डॉलरो को खरीद कर अपना देना चुका दिया। हो सकता है, कोई शख्स सैर-सपाटे के लिए अमेरिका जाना चाहता था या

वहा पहुच चुका था और उसने स्टर्लिग के बदले उन डॉलरो को लेकर उनका मनमाना उपयोग किया। हर हालत मे नतीजा यह हुआ कि नियन्त्रण न होने के कारण वे डॉलर सरकार को न मिल सके—उनसे उस आवश्यकता की पूर्ति न हो सकी जो सरकार महसूस करती थी—और उलटा उनका उपयोग ऐसे काम मे हुआ जो युद्ध-प्रयास की सफलता की दृष्टि से अवाछनीय था।

नियन्त्रण क्यो आवश्यक था, यह हमारे पाठक समझ गए होगे। अब उसके रग-ढग के बारे मे कुछ कहने की जरूरत है।

नियन्त्रण का श्रीगणेश इस नियम से हुआ कि अब एक्सचेंज—अर्थात् विदेशी मुद्रा में भुगतान की रकम – की खरीद-बिक्री कुछ खास बैको की ही मार्फत हो सकेगी। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत कनाडा, न्यूफौडलैण्ड और हागकाग के डॉलरो को छोड और मुद्राओ के विनिमय या खरीद-बिक्री पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नही लगाया गया। पर साम्राज्य के बाहर की मुद्राओ के सम्बन्ध मे यह नियम कर दिया गया कि वे उन्हीको प्राप्त हो सकेगी जिन्हे व्यापार के सिलसिले मे कोई भुगतान करना था या सफर-खर्च के लिए उनकी जरूरत थी या जिन्हे जाती खर्च के लिए छोटी-मोटी रकमे कही बाहर भेजनी थी।

तब से यह नियन्त्रण उत्तरोत्तर व्यापक और कठोर होता गया है। इस समय परिस्थिति यह है—

नियन्त्रण की दृष्टि से संसार को दो प्रधान क्षेत्रो में विभाजित समझिए। एक तो 'स्टर्लिंग क्षेत्र' है जिसके अन्तर्गत विभिन्न देशो के बीच लेन-देन का भुगतान स्टर्लिंग मुद्रा-द्वारा होता है। दो-एक देशो को छोड (जिनमे मुख्य कनाडा है) सारा ब्रिटिश साम्राज्य और उसके आश्रित देश (जैसे मिस्र, ईराक आदि) सभी इस क्षेत्र के अन्तर्गत है। दूसरा प्रधान क्षेत्र वह है जिसमे अमेरिका की मुद्रा 'डॉलर' का बोलबाला है।

भारतवर्ष से जो माल बाहर जाता है उसके दाम का भुगतान प्रधानत या तो स्टर्लिंग मे होता है या डॉलर मे या रुपए मे। रिजर्व बैंक ने इस सम्बन्ध मे कुछ नियम बना दिए है और माल भेजनेवाले को उनका पालन

करना पडता है। जबतक वह निर्दिष्ट रीति से यह आश्वासन नही देता कि वह नियमो की पूरी पावन्दी कर चुका है या करने जा रहा है तबतक उसे वाहर माल भेजने की इजाजत ही नही मिल सकती। अगर आश्वासन देने के वाद वह किसी नियम का उल्लघन करता है तो कठोर दण्ड का भागी वन जाता है। उसे आरम्भ में ही यह वताना पडता है कि दाम के भुगतान के वारे में क्या तय पाया है और यह भुगतान कौन-सी वैक के द्वारा हुआ है या होनेवाला है। फिर उसे विदेश मे माल मगानेवाले के पास सारे कागजात किसी निर्दिष्ट वैक की मार्फत ही भेजने पडते है। माल मगानेवाला जब भुगतान कर देगा तव वैक सारे कागजात उसके हवाले कर देगी और वह जहाज से माल छुडा सकेगा। वह वैक फिर रिजर्व वैक को यह सूचित कर देगी कि भुगतान मिल चुका और उस विदेशी मुद्रा का रिजर्व वैक जो उपयोग मुनासिव समझेगी, करेगी। ऐसे नियन्त्रण के कारण न तो कोई यहा से माल के रूप मे अपना पूजीपल्ला ही वाहर भेज सकता है, न भुगतान मे मिली हुई विदेशी मुद्रा का मनमाना उपयोग ही कर सकता है।

यह नियन्त्रण दो-तरफा है, अर्थात् माल भेजनेवाले को ही नही, माल मगानेवाले को भी अव रिजर्व वैक-द्वारा अनुशासित होना पडता है। माल भेजनेवाला तो सरकार को विदेशी मुद्रा दिलाता है, पर माल मगानेवाला उससे विदेशी मुद्रा मागता है— इसलिए आयात-सम्वन्धी नियन्त्रण को निर्यात-सम्वन्धी नियन्त्रण से भी कठोर समझना चाहिए। १९४० मे ही यह नियम कर दिया गया कि विना सरकार से अनुमति प्राप्त किए कोई भी व्यापारी अमुक-अमुक वस्तु को विदेश से यहा न मगा सकेगा। व्यापार के अलावा और कामो के लिए पैसा वाहर भेजने पर कई प्रकार के प्रतिवन्ध लगा दिए गए। १९४२-४३ मे आयात-सम्वन्धी नियन्त्रण और भी सख्त कर दिया गया। अव सरकार जिस चीज को मौजूदा हालत मे जरूरी समझती उसीको मगाने की अनुमति मिल सकती थी। इसका उद्देश केवल इतना ही नही था कि विदेश मे जो धन प्राप्त हो उसका अनावश्यक वस्तुओ के दाम चुकाने मे दुरुपयोग न होने पावे। और प्रकार के दुरुपयोगो को रोकने के उद्देश से भी आयात-सम्वन्धी नियन्त्रण कठोर

कर दिया गया। अनावश्यक वस्तुओ के निर्माण मे अमेरिका की उत्पादन-शक्ति का दुरुपयोग सभव था। फिर, यह भी सभव था कि ऐसी वस्तुओ को वहा से यहा लाने मे उस स्थान का दुरुपयोग हो जो जहाजो मे मिल सकता था। वास्तव मे जहाजो की वडी कमी हो रही थी, जितने जहाजो की जरूरत थी उतने मिल नही रहे थे। ऐसी स्थिति मे आयात को उन्ही वस्तुओ तक परिमित कर देने का नियम हो गया जो सरकार की दृष्टि मे आवश्यक* थी—वल्कि इस आवश्यकता का भी श्रेणी-विभाजन कर दिया गया और जिस वस्तु की आवश्यकता ऊचे दर्जे की न हो उसका आना असम्भवप्राय हो गया।

वैक आव् इगलैण्ड ने डॉलर तथा कुछ दूसरी मुद्राओ मे पौड का विनिमय-मूल्य बाध दिया था। पर यह विनिमय-मूल्य ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर ही मान्य हो सकता था। साम्राज्य के बाहर पौड का मूल्य इन वातो पर निर्भर था कि उसकी माग के मुकाविले उसकी 'विकवाली' कैसी थी और लडाई के नतीजे के वारे मे वाहरी दुनिया का खयाल क्या था। इसलिए पौड की दो दरे रहने लगी— एक तो वैक आव् इगलैण्ड-द्वारा नियत्रित या निर्धारित दर, दूसरी वह दर जो न्यूयार्क-जैसे अनियत्रित या स्वतन्त्र वाजार मे प्रचलित थी। इस स्वतन्त्र वाजार मे पौड की दर नियन्त्रित दर से नीची या सस्ती रहने लगी—मसलन, जिस समय वैक आव् इगलैण्ड-द्वारा निर्धारित दर ४०३॥ डॉलर थी उस समय न्यूयार्क की वाजार-दर सिर्फ ३०२ डॉलर थी। इसका एक नतीजा यह हुआ कि भारतवर्ष से अमेरिका जानेवाले माल का दाम डॉलर-मुद्रा मे न चुक कर स्टर्लिग मे चुकने लगा। मान लीजिए किसीने यहा से १३।-)। अर्थात् १ पौड का माल अमेरिका भेजा। वहा अगर सरकारी दर से भुगतान होता है तो माल मगानेवाले को ४०३॥ डॉलर देने पडते है। इस हालत मे डॉलर

---

*यह दूसरी बात है कि क्या आवश्यक है और क्या अनावश्यक, इस सम्बन्ध में सरकार का निर्णय कभी-कभी वास्तविकता से दूर—बहुत दूर रहता है।

तो सरकार ले लेगी और यहा से माल भेजनेवाले को रुपए मिल जायगे। पर चूकि न्यूयार्क मे बाजार-दर से पौंड ३.०२ डॉलर मे ही मिल रहा है, इसलिए वहा माल मगानेवाला उतने मे एक पौड खरीद कर इगलैण्ड मे दाम चुका देता है और यहा के व्यापारी को १३।~)। मिल जाता है। इस तरीके से भुगतान होने पर सरकार को डॉलर नही मिलते और उस हद तक उसकी भुगतान-सम्बन्धी अपनी कठिनाई बढ जाती है। यही कारण है कि कुछ समय बाद सरकार ने विभिन्न उपायो का अवलम्बन कर उन छिद्रो को प्राय बन्द कर दिया जिनके द्वारा डॉलर-मुद्रा उसकी पहुच से बाहर निकलती जा रही थी ।

ब्रिटिश भारत की प्रजा की जो रकम डॉलर के रूप मे जमा थी उसे सरकार ने दिसम्बर १९४० मे स्वायत्त कर ली। जिनके डॉलर ले लिए गए उन्हे बदले मे यहा रिजर्व बैंक से रुपए दिला दिए गए। निर्ख था १०० डॉलर = ३३० रुपए। १० मार्च १९४१ को सरकार इस दिशा मे एक कदम और आगे बढी। जिन लोगो ने अमेरिका मे कुछ खास सिक्यूरिटीज खरीद रखी थी उनके लिए भी यह लाजिमी कर दिया गया कि वे अपने कागज सरकार के हवाले कर दे और बदले मे उसी निर्ख से रुपए ले ले। पिछले दिन के बाजार-भाव से उन सिक्यूरिटीज की डॉलरो मे जो कीमत हुई उसका यहा रुपयो मे भुगतान कर दिया गया।

रुपए के विनिमय-मूल्य मे सरकार ने किसी प्रकार का हेर-फेर नही किया है और हुडी की दर प्राय १८ पेस रहती आई है। चादी का दाम काफी ऊँचा होते हुए भी एक्सचेज बढा कर इतिहास की पुनरावृत्ति नही की गई है। पाठको को याद होगा कि पिछली लडाई मे चादी की तेजी का नाम लगाकर रुपए के विनिमय-मूल्य को १६ से २४ पेस (सोना) कर दिया गया था। कहा गया था कि जब रुपए की चादी की कीमत बढ रही है, तब उसका विनिमय-मूल्य बढाए बिना वह चलन मे किस प्रकार रखा जा सकता है? वास्तव मे रुपया प्रतीक-मुद्रा का काम करता था, इसलिए चादी चाहे जितनी महँगी हो रुपए की कीमत मे हेर-फेर नही होना चाहिए था। जैसा कि उस समय भी सरकारी नीति के आलोचको ने कहा था—

अगर चादी महँगी हो चली है तो कुछ समय के लिए या तो रुपए मे चादी की मात्रा घटा दीजिए या कागजी रुपए से ही काम चलाइए। अगर गज लोहे के छड का हो और लोहा महँगा हो जाय तो गज किसी और सस्ती चीज का काम मे लाया जायगा या समस्या हल करने के नाम पर गज की नाप ही सोलह से बत्तीस गिरह कर दी जायगी? मगर उस समय सरकार पर इस दलील का कुछ भी असर नही हुआ और वह अपने मनकी ही करके रही। इस बार भी चादी का वही हाल है, पर रुपए के विनिमय-मूल्य ने उससे बाजी ले जाने की कोशिश नही की है। पहले रुपए मे १६५ ग्रेन खालिस चादी होती थी। अब वह ९० ग्रेन कर दी गई है—अर्थात् लम्बाई नापनेवाला गज कुछ हद तक लोहे का बना रहा, पर लोहा महँगा होने के कारण उसकी चौडाई या मुटाई आधी कर दी गई*। किसी भी हालत मे चादी के दाम के घटने-बढने का कोई असर हमारे प्रतीक के विनिमय-मूल्य पर नही पडना चाहिए। गनीमत है कि इस बार वह मूल्य बढाया नही गया है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस महासमर मे हमारी आर्थिक स्थिति की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई है कि विदेश मे हमने अपना ऋण चुकाकर अब कुछ पूजी-पल्ला इकट्ठा कर लिया है।

पहले हम इगलैण्ड के कर्जदार थे—अब इगलैण्ड हमारा कर्जदार है। यह परिवर्तन इस कारण हुआ है कि इगलैण्ड हमसे जो कुछ ले रहा है उसकी पूरी कीमत चुकाने मे असमर्थ है, लेहाजा उसने हमसे उधार लेना शुरु किया है। हमने इस सिलसिले मे पहले अपना कर्ज उतारा, फिर उसे उधार देते गए। यों इस लडाई के जमाने मे हम कर्जदार से साहूकार बन गए।

स्टर्लिंग मे हमारा कर्ज या देना कब कितना था यह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जायगा। इसमे १८ पेस के हिसाब से पौड स्टर्लिंग के रुपए कर दिए गए है —

---

*देखिए फुटनोट, पृष्ट १७२ और १७३

मार्च के अन्त मे—	करोड रुपए
१९१४	२६५ ८१
१९१९	३०४ ०८
१९२४	३९७ ७६
१९२९	४७२ ७८
१९३४	५१२ १५
१९३९	४६९ १०
१९४३	५७ ४१

अर्थात् लडाई छिडने से पहले जहा लन्दन मे हमारा देना प्राय ४६९ करोड था वहा मार्च १९४३ के अन्त मे प्राय ५७॥ करोड ही रह गया था। बाकी देना या कर्ज हम अपने सिर से उतार चुके थे। और इसके बाद लन्दन मे हमारा जो पावना हो चला था उसके भी, उसी १८ पेस की दर से, मार्च १९४३ के अन्त मे प्राय ५११ करोड रुपए होते थे। जबसे लडाई छिडी तबसे ३१ मार्च १९४३ तक का हिसाब इस प्रकार था —

जमा	करोड रुपए
१—अगस्त १९३९ मे रिजर्व बैंक के पास स्टर्लिंग	६४
२—समय-समय पर रिजर्व बैंक ने जो स्टर्लिंग बाजार मे खरीदा	३८७
३—ब्रिटिश सरकार से जो भुगतान स्टर्लिंग मे मिला	५७१
	१,०२२
खर्च	
१—मार्च १९४३ के अन्त तक भारतवर्ष का कर्ज चुकाने मे स्टर्लिंग लगा	३८०
२—दूसरी देनदारी चुकाने में स्टर्लिंग लगा	१३१
	५११

वाकी ५११ करोड रुपए का स्टर्लिंग मार्च १९४३ के अन्त मे रिजर्व बैंक के पास लन्दन मे जमा था।

ऊपर के जमा-खर्च मे रिजर्व बैंक-द्वारा स्टर्लिंग की खरीद ३८७ करोड रुपए दिखाई गई है। बाजार मे स्टर्लिंग बेचनेवाले वे ही हो सकते है जिन्होंने अपना माल या श्रम बेच कर इगलैण्ड मे उसे हासिल किया है। साधारणत यहा जितने रुपए का माल बाहर से आता है उससे अधिक का माल यहा से बाहर जाता है। ऐसी स्थिति मे जिस हद तक वह आधिक्य होता है उस हद तक दूसरे देश हमारे देनदार बन जाते है। अगर बात इतनी ही होती तो हम आरम्भ से ही साहूकार होते और कभी हमारे इगलैण्ड के कर्जदार बनने की नौबत न आती। पर होता यह रहा कि व्यापार मे हमारा जो कुछ पावना निकला उसे तो इगलैण्ड ने ले ही लिया, जमा-खर्च के मुताबिक हमे उलटा देनदार बना दिया।

ईस्ट इडिया कम्पनी की अपनी पूजी उसके कारोबार के लिए काफी नही थी, इसलिए बगाल मे उसे बराबर जगत्सेठ की कोठी से कर्ज लेना पडता था। अन्त मे जगत्सेठ के लाखो रुपए डूब भी गए, क्योंकि प्रभुता हो जाने पर कम्पनी के सचालको ने अपना देना चुकाने से इनकार कर दिया। अब इस देश का बाकायदा दोहन होने लगा—हमारे विदेशी शासक हमारी पराधीनता से जहा तक फायदा उठा सकते थे उठाने लगे। फिर एक दिन कम्पनी को रगमच से हटना पडा और शासन की बागडोर ब्रिटिश सरकार ने खुद अपने हाथ मे ले ली। पर अब हमारा बोझ और भी भारी हो चला। कम्पनी को जो हर्जाना दिया गया, इस देशके आधिपत्य की जो कीमत चुकाई गई और परिस्थिति को काबू मे लाने के लिए इगलैण्ड को जो खर्च करना पडा उस सारी रकम के देनदार हम ठहराए गए। और फिर तो यह सिलसिला चला कि हम साल-ब-साल इगलैण्ड से लेने की अपेक्षा कही अधिक माल इगलैण्ड को देते गए, और फिर भी ऋण से हमारा पिण्ड न छूटा, बल्कि हम देनदारी के दलदल मे फसते ही गए।

श्रीबिडलाजी ने इस विषय का विवेचन करते हुए एक जगह दिखाया है कि १८६४ और १९२९ के बीच हमने बाहर से जितने

रुपए का माल लिया उससे प्राय २८ अरब रुपए अधिक का माल बाहर भेजा। इस माल मे सोना-चादी शामिल नही है। इतने समय में बाहर से प्राय १४ अरब की सोना-चादी यहा आई। तो इस हिसाब से हमारा १४ अरब पावना रहा। पर असलियत मे हम इस रकम से हाथ धो चुके थे और इगलैण्ड के काफी बडे देनदार बन चुके थे। १९२९ में हमारी इस देनदारी का तखमीना प्राय १० अरब रुपया किया गया था। यह देनदारी स्टर्लिंग-ऋण के ही रूपमे नही रही है। अगरेजो ने हमे यहा भी जो कुछ उधार दे रखा है या यहा वाणिज्य-व्यवसाय मे जो कुछ लगा रखा है उस सबको इस देनदारी के अन्तर्गत समझिए।

जब से यह सिलसिला चला हम उस स्टर्लिंग को जो, आयात से निर्यात अधिक होने के कारण, हमे भुगतान मे मिलता गया है, भारत-सचिव को यह कह कर अर्पित करते आए है कि—

"लीजिए—अपनी दरिद्रता को बरकरार रखते हुए हम जो कुछ बचा सके है उसे स्वायत्त कीजिए। हमारे देश मे जितनी सरकारी नौकरिया अपने भाईबन्द को दे सकते है देते जाइए और इस रकम से उनकी पेन्शने चुकाइए—उन्हे ऊचे से ऊचा भत्ता दीजिए। यह जरूरी नही कि सरहदी लडाइयो का ही खर्च हमसे वसूल किया जाय, क्योकि हमारे देश की सर-हद वही है जहा इगलैण्ड को लडाई लडनी हो। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार या हित-रक्षाके लिए भारतवर्ष के बाहर लडी हुई कितनी ही लडाइयो का खर्च हमसे वसूल किया जा चुका है—आगे भी ऐसे सिलसिले में आप जो चाहे हमारे नाम लिख कर वसूल कर सकते है। वेतन, पेन्शन, पुरस्कार, भत्ता, लडाई-खर्च—इनके अलावा और भी जिस मद मे चाहे इस स्टर्लिंग का उप-योग कर सकते है। लाल-समुद्र या भारत-समुद्र मे काम करनेवाली किसी ब्रिटिश कम्पनी को हर्जाना देना है? इगलैण्ड मे किसी पागलखाने को इम-दाद पहुचाना है? लन्दन मे आए हुए तुर्की के सुलतान के मनोरजन के लिए नाच-रग का आयोजन करना है? आपके बस की बात है कि जो बोझ चाहे हम पर लाद दे, जिस रकम के लिए चाहे हमे देनदार बना दे और सूद लगा कर उसे हमसे पाई-पाई वसूल कर ले।"

'रिजर्व बैंक ने समय-समय पर जो स्टर्लिंग खरीदा वह कहा से आया और कहा गया यह अब स्पष्ट हो गया होगा। इतने समय मे आयात से निर्यात का जो आधिक्य हुआ उसकी कीमत स्टर्लिंग मे चुको और वह स्टर्लिंग हमे रिजर्व बैंक की मार्फत, अपने शासको के हवाले कर देना पडा। उन्होंने उसका उपयोग हमारी बाहर की 'देनदारी' चुकाने मे किया। ऊपर की मदो मे एक है—'दूसरी देनदारी चुकाने मे स्टर्लिंग लगा १३१ करोड रु०'। यह 'देनदारी' वही है जो हमे हर साल लन्दन मे चुकानी पडती है और जिसे अगरेजी मे Home Charges कहा जाता है। वास्तव मे यह वह रकम है जो हमे अपने शासको की 'सेवाओ' के पुरस्कार-स्वरूप हर साल इगलैंड को देना पडता है। सितम्बर १९३९ से मार्च १९४३ तक इस मद मे हमे १३१ करोड रुपए देने पडे। स्थायी ऋण चुकाने मे जो स्टर्लिंग लगा उसके ३८० करोड रुपए अलग थे।

वास्तव मे अगर ब्रिटिश सरकार से भुगतान में हमें ५७१ करोड रुपए न मिले होते तो न तो हमारा इतना कर्ज चुका होता और न हमारे पास इतनी बचत होती। यह भुगतान उन चीजो की कीमत का है जो इगलैंड, अपने और दूसरे मित्र-राष्ट्रो के लिए, हमसे लेता आया है।

इस बार धन-जन से इगलैंड की सहायता के लिए हमे जो त्याग करना पडा है वह अभूतपूर्व है। लडाई-सम्बन्धी विभिन्न कामो के लिए हम इतने बडे पैमाने पर सामान और आदमी जुटाते आए है—और वह भी ऐसी कठिनाइयो के बीच—कि उस दिशा मे आगे बढना अब हमारे लिए बहुत मुश्किल हो रहा है। हमारी सरकार भी यह कहने लगी है कि यहा के लोग काफी थक चुके है, अब हमे उनकी थकावट और न बढाकर, उन्हे सुस्ताने का, कुछ हद तक अपनी भी आवश्यकताओ की पूर्ति करने का अवकाश देना चाहिए। बात यह हुई है कि हमने अपने आप को आवश्यक-से-आवश्यक वस्तुओ से बचित रखकर इगलैंड के लिए सामान मुहैया किया है और उसकी तरह-तरह की सेवाए करते आए है। अगर वस्तुओ की प्राप्ति का अर्थ सुख है और उनके अभाव का अर्थ दुख, तो इसमे तनिक भी सन्देह करने की गुजाइश नही हो सकती कि

आज भारतवर्ष लडाई से पहले की अपेक्षा अधिक दीन और दुखी है। अपने को भूखा रखकर हमने मित्र-राष्ट्रो को अन्न दिया है—अपने को नग्न रखकर हमने उनके लिए वस्त्र जुटाया है। यही बात और दिशाओ मे भी समझनी चाहिए। हमारे कारखाने बडी ही कठिनाइयो का सामना करते हुए चल रहे है। विशेषज्ञो की कमी है। जो कच्चा माल मिलता भी है उसे कारखाने तक पहुँचाने मे सौ-सौ दिक्कते उठानी पडती है। कल-पुरजो की घिसाई का कोई ठिकाना नही। और नियत्रण के नाम पर तरह-तरह की अडचने अलग डाली जाती है। फिर इतनी कठिनाइयो के होते हुए भी कारखानेवाले जो माल तैयार कर पाते है उसका काफी बडा अश सरकार ले लेती है। ऐसी स्थिति मे यही कहा जा सकता है कि हमे स्वय उपवास कर अपने भोजन की सामग्री दूसरो को दे देनी पडती है।

उस सामग्री की कीमत हमे न तो जिन्सो मे मिली है, न सोने-चादी मे। उलटा हमारी ही चादी इगलैंड को बेच दी गई ह। हमे जो डॉलर प्राप्त होते है वे भी हमसे ले लिए जाते है। हमे कीमत चुकाई जाती है स्टर्लिंग मे, क्योकि इगलैंड उसे किसी भी दूसरे रूप मे चुकाने मे असमर्थ है। ३१ मार्च १९४३ तक हमे ५७१ करोड रु० का भुगतान मिल चुका था। इधर और भुगतान मिला है। सब ले-देकर ३१ दिसम्बर १९४३ को रिजर्व बैक के नोट-प्रसार-विभाग मे प्राय ७३५ करोड रुपए का स्टर्लिंग जमा था। इसके अलावा उसके बैंकिंग विभाग मे, इस देश के बाहर, प्राय. १२० करोड रुपए रोकड और सिक्यूरिटीज के रूप मे थे। याद रखने की बात है कि हमने अपना प्राय सारा स्टर्लिंग-ऋण चुका दिया है, और अब हम इगलैंड के कर्जदार नही बल्कि साहूकार है। जब तक लडाई जारी रहेगी, इगलैंड का उधार लेना जारी रहेगा और हमारे पावने की रकम बढती ही जावेगी।

अब हमारे सामने प्रश्न यह उपस्थित है कि हमने वहा जो कुछ जमा किया है या करते जायेंगे उसे कब और किस रूप मे यहा ला सकेंगे ?

जब हम इगलैंड के कर्जदार थे तब उसे यह चिन्ता रहती थी कि कही शक्तिशाली होने पर भारतवासी अपना देना चुकाने से इनकार न कर दे, और उसकी ओर से बराबर इस बात पर जोर दिया जाता था कि स्वराज्य-सम्बन्धी विधान या सघटन मे उसके हित के सरक्षण के लिए खास व्यवस्था होनी चाहिए। अब वह तो निश्चिन्त हो गया और तरह-तरह की चिन्ताए हमको होने लगी है। आर्थिक क्षेत्र में इगलैंड की आज तक की करतूतो को देखते हुए, हमारा यो चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। पर इस विषय के विवेचन मे हम यह मानकर ही आगे वढ सकते है कि इगलैंड न तो जोर-जबर्दस्ती करेगा न टाट उलटेगा—वल्कि हमसे जो कुछ ले चुका है या लेता जा रहा है उसे एक दिन पाई-पाई वापस कर देगा।

श्रीबिडला जी ने 'कर्जदार से साहूकार' नामक पुस्तिका* मे बताया है कि इस सिलसिले मे हमारी माग क्या होनी चाहिए। वह लिखते है—

"ब्रिटिश सरकार से हमारी पहली माग यह होनी चाहिए कि हमारी स्टर्लिंग की बचत रकम, जो अभी है या बाद को इकट्ठी होगी, किसी तरह नष्ट न की जायगी, इसका वह हमे आश्वासन दे।

"पिछली लडाई का अनुभव इस सिलसिले मे सर्वथा सुखद नही कहा जा सकता। यह बात छिपी नही है कि पिछली लडाई के बहुत से खर्चे, जो ब्रिटिश सरकार को देने चाहिए थे वे हिन्दुस्तान के मत्थे मढे गए। अगर हिन्दुस्तान अपने भाग्य का निर्णय स्वय कर सकता, तो जितनी रकम उसे लडाई के खर्च के हिसाब मे मिली थी उससे कही ज्यादा रकम मिलती। परन्तु जो मिला था वह भी बाद मे योहीं बन्दर-बाट मे गायब हो गया।

"...अगर हिन्दुस्तान सावधान न रहा तो इतिहास की पुनरावृत्ति हो सकती है। अत हमे बराबर सावधान रहना चाहिए और यह माग करना चाहिए कि जिस खर्चे से हमारी अपनी सीमाओ की रक्षा का सीधा

सम्वन्ध नही है वह हिन्दुस्तान के नाम न लिखा जाय, न तो भविष्य में पेंशन चुकाने के लिए आज ही ब्रिटिश सरकार को एक मोटी रकम दे दी जाय और न युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण के लिए कोई रकम अलग कर दी जाय। हमारी रकम पर हमारा पूरा कब्जा रहे, क्योकि हमारी रकम हमारी अपनी है। किसीको हमसे यह कहने का अधिकार नही होना चाहिए कि अपने धन का हम क्या उपयोग करें, और क्या न करे। इस मामले में इससे कम कुछ भी हमको स्वीकार नही हो सकता।

"परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात इस बात की सावधानी रखना है कि भविष्य मे हमारे बचे हुए स्टर्लिग की कीमत कम न हो जाय।"

इस विषयको कुछ विस्तार से समझाने की आवश्यकता है।

मान लिया कि स्टर्लिग के बदले हमे स्टर्लिग ही मिलेगा, पर हो सकता है कि आज स्टर्लिग की जो क्रय-शक्ति है वह कल न रहे—आज स्टर्लिग से जितना माल खरीदा जा सकता है कल उतना न खरीदा जा सके। उस हालत मे हमको बडी हानि उठानी पडेगी। जब हमने इगलैड को कर्ज दिया उस समय स्टर्लिग की जिन्सो के रूप मे जो कीमत थी वह कीमत बनी रही तब तो चिन्ता की कोई बात नही, पर अगर वह कीमत गिर गई—अर्थात् स्टर्लिग के बदले जिन्से कम मिलने लगी—तो हमको क्षतिग्रस्त होना पडा। श्रीबिडलाजी का कहना है कि उस अवस्था में ब्रिटिश सरकार को हमारी क्षतिपूर्ति करने को तैयार रहना चाहिए। इसकी व्यवस्था यो हो सकती है कि हमारा जो स्टर्लिग जमा हो उसकी मालियत जिन्सो में मुकर्रर कर दी जाय और कर्ज चुकाने के समय अगर वह मालियत कम हो तो हमे और रकम देकर वह कमी पूरी कर दी जाय ताकि हमें कोई घाटा उठाना न पडे। स्टर्लिग की क्रय-शक्ति मे क्या कमी हुई है यह 'इण्डेक्स नम्बर्स' अर्थात् 'सूचक अको' से जाना जा सकता है और तदनुसार क्षति-पूर्ति की जा सकती है। मान लीजिए, जिस समय इगलैड को हमने कर्ज दिया उस समय वहा जिन्सो के दामो का 'इण्डेक्स नम्बर' १२५ था, और जिस समय वह कर्ज चुका उस समय 'इण्डेक्स नम्बर' था २५०। तो इसके माने हुए कि इस बीच में

स्टर्लिंग की क्रय-शक्ति आधी हो गई। ऐसी स्थिति मे हमारा स्टर्लिंग मे जो पावना था उसका दुगुना मिलने से ही हमारे साथ न्याय हो सकता है और हम क्षति-ग्रस्त होने से बच सकते है।

कहा जा सकता है कि स्टर्लिंग की मालियत का घटना ही नही उसका बढना भी सभव है। दाम तेज हो गए तो जिन्सो मे स्टर्लिंग की मालियत घट गई। पर अगर दाम मन्दे हुए तो वह मालियत बढ गई। अगर श्रीबिडलाजी के प्रस्तावानुसार हमारे स्टर्लिंग की मालियत बाध दी जाती है तो हम उतनी ही पाने के हकदार होते है और जब दाम चढते है—अर्थात वह मालियत घटती है तब हमारे देनदार को हमे और स्टर्लिंग देकर अपने कर्तव्य का पालन करना पडता है। पर अगर दाम गिर गए—अर्थात् जिन्सो मे स्टर्लिंग की मालियत बढ गई तब ? चूकि हमे तो वही मालियत मिल सकती है जो निश्चित हो चुकी है, स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति मे हमे कम स्टर्लिंग से ही सन्तोष करना पडेगा। क्या यह बेहतर न होगा कि हम अपने स्टर्लिंग की मालियत को निश्चित कराने की माग पेश न करे—उसे अनिश्चित ही रहने दे और उसकी मालियत बढने की सूरत मे उस परिस्थिति से लाभ उठावे ?

इस प्रश्न के उत्तर मे निवेदन है कि निकट भविष्य मे उस मालियत के घटने की—अर्थात् दामो के चढने की ही विशेष सभावना है। लडाई बन्द होते ही आज की स्थिति बहुत कुछ बदल जायगी। नियत्रण-सबन्धी बन्धन या तो रहेगे ही नही, या रहेगे भी तो शिथिल रूप मे। तरह-तरह की चीजो की चारो ओर से माग होने लगेगी। आज नियत्रण के कारण लोग अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करने से रह जाते है। जो चीजे उन्हे चाहिए वे मिल नही सकती। उनकी क्रय-शक्ति दबी पडी है। पर कल यह अवस्था न रहेगी। सरकार की खरीदारी बन्द होने का अर्थ होगा लोगो की खरीदारी के मार्ग का खुल जाना। आज जो क्रय-शक्ति दबी पडी है कल वह स्वच्छन्दतापूर्वक चलने-फिरने लगेगी—और इसके फलस्वरूप दाम बढे बिना न रहेगे। पुर्निर्माण का काम बरसो चलेगा और उसके लिए बहुत ही बडे पैमाने पर चीजो की माग

होगी। यत्रादि-जैसे साधनो के दाम ऊचे रहने की तो और भी अधिक सभावना है, क्योकि ऐसी चीजे इगलैण्ड से विशेषत बाहर जानेवाली है। और भारतवर्ष को अपनी उत्पादन-शक्ति बढाने के लिए—नए कल-कारखाने खोलने के लिए इगलैण्ड से प्राय ऐसी ही चीजे चाहिए।

पर हम मालियत की ऐसी घटा-बढी के झमेले मे पडे ही क्यो ? राष्ट्र की ओर से जुआ खेलने या दाव लगाने का किसीको अधिकार नही है। हमारी माग तो यही होनी चाहिए कि हमने मालियत के रूप मे जो कुछ दिया है हमे वह वापस मिलना चाहिए—न कम, न ज्यादा। जहा आग लगने या जहाज डूबने की सभावना कम—बहुत कम—होती है वहा भी कुशल व्यवसायी या व्यापारी बीमा कराए बिना नही रहते। वे कभी ऐसा तर्क नही करते कि जब सभावना इतनी कम है तब बीमा कराने के खर्च का बोझ क्यो उठाया जाय ? फिर हमारी माग यह क्यो न हो कि इगलैण्ड मे जमा होनेवाली हमारी रकम का ब्रिटिश सरकार बीमा कर दे—अर्थात् स्टर्लिंग की मालियत घटने की सूरत मे हमारी क्षति-पूर्ति करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ले। कौन कह सकता है कि यह प्रस्ताव किसी भी अश मे अनुचित या अनुपयुक्त है ?

इगलैण्ड का स्टर्लिंग ऋण तो हमने चुका दिया। पर इस देश मे उसने अपना जो धन वाणिज्य-व्यवसायमे लगा रखा है—और इस प्रकार हमे कर्ज दे रखा है—वह अभीतक हम नही चुका पाए है। कनाडा, दक्षिण अफ्रीका जैसे साम्राज्यान्तर्गत दूसरे देशो ने, ऐसी ही परिस्थिति से लाभ उठाकर, अपने इस प्रकार के ऋण को बहुत बडी हद तक चुका दिया है। पर वहा की तरह यहा भी यह तभी हो सकता है जब कि सरकार ब्रिटिश व्यवसायियो या पूजीपतियो को अपना-अपना भुगतान लेकर हमारा बोझ हलका करने को बाध्य करे।

मुख्य बात यह है कि सारा ऋण चुका देने के बाद हमारा जो पावना निकले वह हमे जिन्सो के—अर्थात् उत्पादन-सम्बन्धी साधनो के—रूप मे अनतिविलम्ब चुका दिया जाय। इसमे न कोई अडचन डाली जाय, न कोई आनाकानी हो।

०

१३

सिंहावलोकन

अगरेज यहा व्यापार के द्वारा धनोपार्जन के उद्देश से आए थे। उस काम में उन्हे आशातीत सफलता प्राप्त हुई। धीरे-धीरे वे तुलाधार से शासन-सूत्र ार बन बैठे। पर शासक हो जाने पर भी वे लक्ष्मी के आराधक पूर्ववत् ही बने रहे—कहना चाहिए कि उनकी धनलिप्सा की आग में नई परिस्थिति ने घी की आहुति का काम किया। उसके तेज और विस्तार दोनो मे कही-से-कही वृद्धि हो गई।

अगरेजो के पूर्ववर्ती भारत-विजेता स्थायी रूपसे भारत-निवासी बन गए थे और हमारा-उनका आर्थिक स्वार्थ एक हो गया था। अगरेजो ने हमारे साथ अपनी ऐसी एकता कभी स्थापित नही की। हमारे शासन की बागडोर अपने हाथ मे रखते हुए भी उन्होने भारतवर्ष को अपना देश नही बनाया। उनका देश—उनका 'घर' इगलैण्ड ही बना रहा।

भारतवर्ष के सम्बन्ध मे उनकी नीति हो चली इसको इगलैण्ड के खेत या खान की तरह बरतने की—यहा से जितना धन-धान्य खीच सकते थे, खीचकर इगलैण्ड पहुचा देने की। उनकी, इस नीति के कारण दोनो देशो के आर्थिक हित या स्वार्थ परस्पर-विरोधी बन गए। और चूकि यहा भक्षक से रक्षक भिन्न नही था, उस पारस्परिक विरोध या सघर्ष मे इस देश के साथ न्याय होना असभव हो गया।

रुपए की कहानी वास्तव मे इस बात की कहानी है कि भारतवर्ष की मुद्रा-नीति का सचालन किन विविध उपायो से और किस हद तक इगलैण्ड के हित-साधन के लिए किया गया है। अगर हम पराधीन न होते तो जो इतिहास हम पिछले अध्यायो मे सुना चुके है वह और ही प्रकार का होता, अर्थात् उस हालत मे—

(१) हमारी मुद्रा-नीति का प्रधान लक्ष्य यहा के किसानो को तथा अन्य उत्पादको को अधिक-से-अधिक लाभ पहुचाना होता—न कि ब्रिटिश व्यवसायियो या कर्मचारियो को।

(२) १८९३ मे चादी की टकसाल बन्द न की जाती।

(३) कभी सोने का मान या स्टैण्डर्ड ग्रहण भी किया जाता तो दूसरे देश को लाभ पहुचाने के उद्देश से किसी विकृत रूप मे नही।

(४) सोना भारतवर्ष मे सचित किया जाता, सात समुद्र-पार इगलैण्ड मे नही। और इस बात का बराबर ध्यान रखा जाता कि हमारे नोटो की पुश्ती के लिए हमारे पास अधिक-से-अधिक सोना हो।

(५) भारतवर्ष मे ब्रिटिश माल की खपत बढाने तथा ब्रिटिश कर्मचारियो को लाभान्वित करने के उद्देश से रुपए का विनिमय-मूल्य कृत्रिम उपायो से ऊचा न किया जाता। और इन प्रयत्नो की सफलता के लिए वह भयानक गिरावटी नीति काम मे न लाई जाती जिससे समय-समय पर हमारी अमित हानि हुई है।

(६) रुपए का विनिमय-मूल्य १८९३ मे १६ पेंस (सोना) न किया जाता, पर एक बार कर देने पर उसमे ये हेरफेर हर्गिज न किए जाते —

१९१९ मे २४ पेंस (सोना)
१९२७ मे १८ पेंस (सोना)

(७) २४ पेंसवाली दर को टिकाने के लिए उन दामो उलटी हुडिया न बेची जाती और गिरते हुए को उठाने के प्रयत्न मे हमारे करोड रुपए बरबाद न किए जाते।

(८) १९३१ मे जब रुपए का सोने से पल्ला छूट गया तब उसका स्टर्लिंग से गठबन्धन न किया जाता।

(९) मन्दी का दौर-दौरा होने पर ऐसी मुद्रा-नीति बरती जाती जो दामो को ऊपर उठाने मे सहायक होती—न कि वैसी जिसने उन्हे और भी नीचे गिरा दिया।

(१०) अरबो रुपए का सोना इस देश से बाहर न जाने दिया जाता।

बाजार मे बिक्री के लिए आनेवाले सोनेको सरकार खरीदती जाती और इगलैण्ड, अमेरिकादि देशो की तरह उन्हे, नोटो की पुश्ती के लिए, अपने कोष या रिजर्व मे रखती जाती।

(११) इस देश के रुपए गला-गला कर चादी न बेच दी जाती, और अगर बेची भी जाती तो उसकी जगह कोष या रिजर्व में सोना खरीद कर रख दिया जाता।

यह कोई पूरी सूची या तालिका नही है, केवल भारत की मुद्रा-नीति के इतिहास की कुछ मोटी बातो को उदाहरण-स्वरूप देकर यह बताया गया है कि स्वतत्र होने पर हम अपनी भलाई के लिए क्या करते, और क्या न करते।

हमारे शासको की दृष्टि सकीर्ण न होकर व्यापक होती तो वे हमारे हित मे अपना अहित न देखते और इस देश मे ऐसी नीति बरतते जिससे हमारी ही नही, उनकी अपनी भी विशेष भलाई होती। भारत-वर्ष की औद्योगिक उन्नति का तात्कालिक फल चाहे जो हो, अन्त मे उससे इगलैण्ड को लाभ-ही-लाभ पहुचेगा। यह सच है कि जब यहा नए उद्योग-धधे खुलेगे तब इगलैण्ड को उनकी प्रतियोगिता का सामना करना पडेगा और सभवत उस प्रतियोगिता से उसकी कुछ हानि भी होगी। पर दूसरी ओर, भारतवर्ष की उत्पादन-शक्ति, और इसके साथ उसकी क्रय-शक्ति, बढने से इगलैण्ड के कपडे के नही तो और कितनी ही चीजो के नए खरीदार पैदा हो जायगे। इगलैण्ड मे ऊचे दर्जे की व्यवसाय-बुद्धि होती तो वह हमारे मार्ग मे रोडे न अटका कर आगे बढने मे हमारा सहायक होता और हमारे हृदय पर अधिकार जमाता हुआ, अपने कल-कारखानो की पैदावार के लिए, यहा बहुत बडा बाजार तैयार कर लेता। इस सिलसिले मे मि० ग्राहम के शब्द दोहराने लायक है —

"चादी के और एक्सचेज के गिरने से स्वय मुझे नुकसान पहुचा है। पर मेरा विश्वास है कि यह नुकसान थोडे समय के लिए है। लोग मुझसे पूछते है कि आप कपडे के इम्पोर्टर होते हुए चादी की टकसाल

खोल देने के पक्ष में कैसे हैं? मैं उत्तर देता हूं कि यह प्रश्न एक्सपोर्ट या इम्पोर्ट का नहीं, यह तो देश की भलाई का प्रश्न है। देश की उत्पादन-शक्ति बढ़ जाय तो एक्सपोर्टर और इम्पोर्टर दोनों ही फायदे में रहेंगे। फर्क इतना ही है कि एक्सपोर्टर फौरन फायदा उठा लेगा और इम्पोर्टर को—अर्थात् मुझको कुछ देर ठहरना पड़ेगा।"* पर मि० गाइस-जैसे विचार रखनेवाले ब्रिटिश व्यापारी या पदाधिकारी विरले ही हुए हैं। कलकत्ते से लन्दन तक उदारता अथवा दूरदर्शिता का नितान्त अभाव-सा रहा है। इंगलैण्ड के दृष्टिकोण में ऐसी संकीर्णता न होती तो वह इस देश से छोटे स्वार्थ के सामने अपने बड़े स्वार्थ को देखने में असमर्थ न होता और भारतवर्ष को खुशहाल बना कर अपनी खुशहाली की नींव को आज से कहीं ज्यादा मजबूत बना लेता।

असलियत यह है कि उसने इस देश में ऐसी नीति से काम लिया जो हमारी खुशहाली को आगे न बढ़ाकर पीछे ढकेलनेवाली थी। खासकर यहां की मुद्रा-नीति ऐसी रखी गई जो इंगलैण्ड की अपनी दृष्टि से श्रेयस्कर थी, न कि भारतवर्ष की।

कर सकें—जिससे ब्रिटिश माल यहा सस्ता बिक सके और उसकी अधिक-से-अधिक खपत हो सके।

पर इगलैण्ड के लाभ का अर्थ था भारतवर्ष की हानि। जब रुपए की मालियत बढती है तब यहा दाम गिरते है। यह सभव नही कि नुकसान से बचने के लिए हम अपने दाम बढा सके। विदेश मे माग नही बढी है या हमारे प्रतियोगी पुराने दामो मे ही माल बेच रहे है तो हमे ऊचे दाम मिल ही कैसे सकते है ? तो बाहर दाम तो पुराने ही बने रहे और हमारे प्रतीक की कीमत या मालियत बढ जाने से हमारे उत्पादको को कम रुपए मिलने लगे। उनकी लागत प्रायः वही बनी रही जो पहले थी। लगान वही देना पडता है, कर वही देने पडते है, महाजन को सूद वही देना पडता है। और सबसे बडी बात यह कि मजूरी भी वही देनी पड़ती है। अगर उत्पादक मजूरो से यह कहते है कि रुपए का विनिमय-मूल्य बढने के कारण यहा दाम गिर गए है, अब आप लोग अपनी मजूरी मे कटौती मजूर कीजिए तो वे मानते नही। झगडा बढता है तो हडताले होती है, कल-कारखाने बन्द हो जाते है। यो भी उत्पादक ऐसी अवस्था मे एक हद तक ही अपना काम-काज जारी रख सकते है। जब वे देखेगे कि बोझ बेहद भारी हो गया तब वे उसे जमीन पर पटक देगे और उत्पादन के धधे से हाथ खीच लेगे। उद्योग-धधो के बन्द होने से बेकारी बढेगी, धन-धान्य की पैदाइश घटेगी, लोग और भी दीन-हीन-विपन्न हो जायगे। सरकार की मुद्रा-नीति के कारण यहा ऐसी स्थिति एक नही, अनेक वार उत्पन्न हो चुकी है।

जब-जब यहा सरकार ने मुद्रा की मालियत—या यो कहिए कि हुडी की दर—ऊची बाधी है तब-तब उसे अभीष्ट-सिद्धि के लिए गिरावट-नीति का अवलम्बन करना पडा है। किसी चीज की बाजार-दर १२ पेस है, और सरकार चाहती है कि वह १६ पेस हो जाय, तो यह कैसे हो सकता है ? स्पष्ट है कि अगर उस चीज की पैदाइश सरकार के अपने हाथ मे है तो वह उसमे कमी करके—उस वस्तु को दुर्लभ बनाके—बाजार मे अपनी ऊची दर चला सकती है।

वरसो से रुपए के सम्बन्ध मे सरकार यही करती आई है। १८९३ मे चादी की टकसाल का दरवाजा सर्व-साधारण के लिए वन्द कर दिया गया। अब मुद्रा का प्रसार सरकार की अपनी मर्जी पर रह गया। जब चाहे जितना करे, न करे। रुपए की वह जो कीमत मागती है, अगर लोग उसे देने को तैयार नही है तो उन्हे अपनी बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए रुपए मिलने के नही। हा, मुद्रा-प्रसार रोक कर ही सरकार सन्तुष्ट नही हुई। जब उसने देखा कि हाथ खीच लेने से ही काम नही चलता तब उसने, गिरावट की दिशा मे और आगे बढकर, तरह-तरह की कारसाजिया शुरू कर दी। उद्देश था मुद्रा के प्रसार को समेट लेना—चलन से जहा तक हो सके रुपयो को खैच लेना। ऊचे-से-ऊचे व्याज पर कर्ज लेकर, बाजार मे रुपए की भीषण टान या तगी पैदा कर दी गई। जो रुपए नोटो के रूप मे आए वे जला दिए गए—जो चादी के रूप मे आए वे गला दिए गए।

मुद्रा के अभाव के कारण दाम गिरे, और दाम गिरने से तरह-तरह के सकट उपस्थित हो गए। उत्पादन की गति या तो वन्द हो गई या बिलकुल रुक गई, किसानो की मुसीवत खास तौर से बढ गई। आय कम हो जाने के कारण लोगो की क्रय-शक्ति क्षीण हो गई और देश भर मे दु ख -दारिद्र्य का विस्तार हो गया। ऐसी स्थिति मे सरकार की अपनी आय कम हुए बिना कब रह सकती थी ? पर जब उसकी आय घटी तब करो के रूप मे प्रजा का बोझ और भी भारी कर दिया गया। इस प्रकार हर ओर से वही तग-तबाह की गई।

पर इस गिरावट-नीति के अवलम्बन का एक कुफल और हुआ। जब रुपए की दर ऊची कर दी जाती है अर्थात् स्टर्लिंग सस्ता कर दिया जाता है तब स्वभावत स्टर्लिंग की माग बढ जाती है। यह माग उस हालत मे और भी अधिक होती है जब लोग समझते है कि इतनी ऊची दर को टिकाने मे सरकार कभी सफल न होगी।

मान लीजिए, आज १ रुपए के वदले सरकार ३० पेस स्टर्लिंग देने को तैयार है और बाजार का विश्वास है कि यह दर ठहरनेवाली नही

है। उस हालत मे जिन्हे कल स्टर्लिंग खरीदना है वे आज ही उसे खरीदने को दौडेगे, बल्कि बहुत-से खरीदार ऐसे होगे जो आज स्टर्लिंग लेकर लन्दन मे छोड देगे और दर गिरने पर—मसलन १५ पेस हो जाने पर—घर बैठे एक रुपए के दो रुपए कर लेगे। यह कृत्रिम माग पूरी करने के लिए सरकार ने समय-समय पर करोडो के स्टर्लिंग और सोने को काफूर हो जाने दिया है। २४ पेस (सोना) की दर को टिकाने के प्रयत्न मे ही हमे ५५,५३२,००० स्टर्लिंग से हाथ धोना पडा था और प्राय ३६ करोड रुपए की हानि उठानी पडी थी।

जब-जब यहा मुद्रा की मालियत बढाई गई है तब-तब उससे होनेवाले लाभो का हमारे शासको-द्वारा बडा ही आकर्षक चित्र खीचा गया है। पर इस सम्बन्ध मे आज भी एक बात पूछी जा सकती है। अगर मुद्रा की मालियत बढाने से सचमुच ऐसा हित-साधन हो सकता था तो क्या कारण है कि किसी भी दूसरे देश ने आज तक उस मार्ग का अनुसरण नही किया? पृष्ठ २१२ पर जो तालिका है उसकी ओर पाठको का ध्यान आकर्षित किया जाता है। उससे पता चलता है कि किस हद तक ससार मे विभिन्न मुद्राओ की मालियत कम की जा चुकी है। स्वय इगलैण्ड ने १९२५ मे गोल्ड स्टैण्डर्ड का पल्ला फिर-से पकडते समय अपनी मुद्रा की सोने मे वही मालियत रखी जो लडाई से पहले थी। यह गौरव सिर्फ हमको प्राप्त हुआ कि जहा उस लडाई से पहले हमारे रुपए की मालियत १६ पेस थी वहा लडाई के बाद वह पहले तो २४ और फिर बाद १८ पेस हो चली। यह बात समझाने के लिए विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नही कि अगर मालियत बढानेवाला नुसखा इतना गुणकारी होता तो और देश भी उससे लाभ उठाए बिना न रहते।

अगर इगलैण्ड को हमारे हित का ध्यान होता तो १९३१ मे वह हमे अपना अनुकरण करने से न रोकता और रुपए को स्टर्लिंग के बन्धन से मुक्त हो जाने देता। मन्दी के उस दारुण समय मे भी इस देश की मुद्रा-नीति दामो को उठानेवाली, किसानो के कर्ज का बोझ हलका करनेवाली, बुझे हुए दिलो में आशा और उत्साह को लौटानेवाली न हो सकी।

फिर एक बार लडाई छिडी और इगलैण्ड भारतवर्ष से धन-जन-सम्बन्धी जितनी सहायता ले सकता था, लेने लगा। इगलैण्ड हम से जो कुछ लेता है उसकी कीमत सोने-चादी या डॉलर-जैसी मुद्रा मे चुकाने में असमर्थ है, इसलिए वह सारा भुगतान कागजी स्टर्लिंग मे करता है। भारत-सचिव को ब्रिटिश सरकार से जो स्टर्लिंग प्राप्त होता है वह उसे रिजर्व बैंक को देकर उससे यहा सरकार को रुपए दिला देते है। उस स्टर्लिंग से सिक्यूरिटीज खरीद कर रिजर्व बैंक की लन्दन-शाखा मे रख दी जाती है और यहा उनके मद्दे नोट निकाल कर चलन मे डाल दिए जाते है। लन्दन में प्राप्त होनेवाले स्टर्लिंग का एक हिस्सा भारतवर्ष के ऋण को चुकाने में खर्च कर दिया गया है, फिर भी इस समय वहा प्राय ८५० करोड का स्टर्लिंग जमा है। यो भारतवर्ष कर्जदार से साहूकार वन गया है, और इस समय हमे चिन्ता है तो इस वात की, कि इगलैण्ड से हमारा यह पावना कव और किस रूप मे वसूल हो सकेगा।

ऊपर कहा जा चुका है कि उस स्टर्लिंग के मद्दे यहा नोटो के रूप मे रुपए जारी कर दिए गए है। इस समय नोट-प्रसार प्राय ८५० करोड है। लडाई से पहले यह प्राय २१७ करोड था। मुद्रा के परिमाण मे यह वृद्धि 'फुलावट' कही जा सकती है या नही ?

इसके उत्तर के लिए मीमासा-भाग का तृतीय अध्याय देखना चाहिए। वहा फुलावट की परिभाषा यह दी गई है—"आवश्यकता से अधिक · हद से वाहर नोटो का चलण", और वताया गया है कि "यह तरीका तभी काम मे लाया जाता है जव कि सरकार आर्थिक कठिनाइयो मे फसी हुई होती है या दिवालिया वनने की राह पर होती है।"

भारत-सरकार की स्थिति ऐसी नही कही जा सकती। न तो वह आर्थिक कठिनाइयो मे फसी हुई है, न दिवालिया वनने की राह पर है। यहाँ जो नोट-प्रसार हुआ है उसे मीमासा-भाग के लेखक के शब्दो मे "स्वाभाविक विस्तार" कहना ही उपयुक्त होगा। यहा भारत-सरकार को आर्थिक सकट से उवारने के लिए नोट नही छापे गए है। यहा तो इतना ही हुआ है कि इस देश की उत्पादन-शक्ति वढी है, दाम वढे है,

और आवश्यकतानुसार नोटो का प्रसार वढा है। यह सच है कि रिजर्व मे इन नोटो की पुश्ती के लिए सोने की जगह स्टर्लिग है। पर स्टर्लिग के पीछे ब्रिटिश सरकार की साख है और उसकी क्रय-शक्ति आज भी खासी अच्छी है।

नोटो के चलन के सम्वन्ध मे दो-एक और वाते ध्यान मे रखने की है। पहले नोटो के साथ चादी के रुपए भी चलन मे थे। अव चादी के रुपयो का चलन नही के वरावर रह गया है। फिर नोटो की वहुत वडी तादाद वैको मे या अन्यत्र अक्रिय पडी हुई है। वाजार मे माल के खरीदार है, पर माल नही है। कहना चाहिए कि लोगो की क्रय-शक्ति दवी पडी है और उसका दामो पर कोई असर नही पड रहा है। यहा दामो का वढना विशेषत जिन्सो के अभाव के कारण हुआ है, न कि चलन के विस्तार के कारण।

रुपए से हमारी जो सेवा हो सकती थी उसे वह अभी तक नही कर पाया है। पर आशा की जाती है कि देश के भावी निर्माण मे वह समुचित भाग ले सकेगा। हमे यह नही भूलना चाहिए कि रुपया आखिर एक प्रकार का टिकट या चिह्न-मात्र है जिससे केवल यह सूचित होता है कि अमुक ने इतना श्रम किया या उत्पादन किया या इतने का माल बेचा। वडे अफसोस की वात होगी अगर निर्माण का कार्य इसलिए स्थगित रहे कि सरकार के पास काफी टिकट या प्रमाणपत्र नही है। भारत-भूमि रत्नगर्भा है। उन रत्नो को वाहर निकालने के लिए करोडो श्रमिक मौजूद है। आवश्यकता है ऐसी मुद्रा-नीति की जो अक्रिय को सक्रिय बना सके, बेकार को काम मे लगा सके, प्रकृति ने अपनी मुट्ठी मे जो कुछ बन्द कर रखा है उसे वाहर निकाल कर सर्वसाधारण के लिए उपलभ्य कर सके।

पर यह तभी हो सकता है जब वह मुद्रा-नीति सचमुच हमारी अपनी हो। रुपए के इतिहास की सडक अन्त मे हमे इसी नतीजे पर पहुचाती है कि स्वतत्र हुए विना हम न तो उसका अपने हित-साधन के लिए सदुपयोग कर सकते है, न दुख-दारिद्र्य के इस दलदल से निकल सकते है।

परिशिष्ट

१

जिन्सों का आयात और निर्यात*

साल	आयात	लाख रुपए निर्यात	आयात से निर्यात अधिक
१९०९–१० से १९१३–१४ तक का सालाना औसत	१४५,८५	२२४,१२	७८,२७
१९१४–१५ से १९१८–१९ तक का सालाना औसत	१४७,८०	२२४,११	७६,३१
१९१९–२० से १९२३–२४ तक का सालाना औसत	२५४,०५	३००,९६	४६,९१
१९२४–२५ से १९२८–२९ तक का सालाना औसत	२४१,४३	३५१,९२	११०,४९
१९२९—३०	२४०,८०	३१७,९३	७७,१३
१९३०—३१	१६४,८०	२२५,६४	६०,८४
१९३१—३२	१२६,३७	१६०,५५	३४,१८
१९३२—३३	१३२,५९	१३५,४९	२,९०
१९३३—३४	११५,३६	१५०,६७	३५,३१
१९३४—३५	१३२,२९	१५५,२२	२२,९३
१९३५—३६	१३४,४२	१६४,२९	२९,८७
१९३६—३७	१२५,२४	२०२,३७	७७,१३

*जो माल भारत-सरकार ने मगाया या बाहर भेजा वह इस तालिका के बाहर है।

१९३७—३८ से बर्मा ब्रिटिश भारतवर्ष का अग नहीं है।

	१७३,७९	१८९,२१	१५,४२
१९३८—३९	१५२,३६	१६९,२२	१६,८६
१९३९—४०	१६५,२९	२१३,५८	४८,२९
१९४०—४१	१५६,७९	१९८,६७	४१,८८
१९४१—४२	१७३,०१	२५२,९१	७९,९०
१९४२—४३	११०,३४	१९४,५५	८४,२१

२

सोने का आयात (+) या निर्यात* (−)

साल	औंस मे वजन	रुपयो मे कीमत
१९००–०१ से १९०४–०५ तक का सालाना औसत	+९७६,२०६	+ ६,२३,४३,७७४
१९०५–०६ से १९०९–१० तक का सालाना औसत	+१,८४४,७७९	+११,७४,५३,०६५
१९१०–११ से १९१४–१५ तक का सालाना औसत	+४,१११,३८८	+२४,३४,२१,७१७
१९१५–१६ से १९१९–२० तक का सालाना औसत	+२,१४५,८३४	+१३,४१,४२,७७६
१९२०–२१ से १९२४–२५ तक का सालाना औसत	+४,५१९,८०७	+२८,७०,९५,२८२

---

* भारत-सरकार और व्यापारियो-द्वारा जो सोना या चादी यहा मगाई गई या बाहर भेजी गई उसकी स्थिति इन दो तालिकाओ में दिखाई गई है। जोड़-बाकी के बाद जो आयात या निर्यात बचा वही सख्याओ-द्वारा सूचित किया गया है। जब से लड़ाई छिड़ी, सोने-चादी के आयात या निर्यात से सम्बन्ध रखनेवाले आकड़ो का प्रकाशन बन्द है।

१९२५–२६	+ ६,१३५,५८१	+ ३४,८५,४५,७९९
१९२६–२७	+ ३,३८५,५२९	+ १९,४०,०५,४४८
१९२७–२८	+ ३,१८१,७५९	+ १८,१०,००,०२३
१९२८–२९	+ ३,७८५,४४१	+ २१,१९,८६,९७८
१९२९–३०	+ २,५२३,५६२	+ १४,२२,०८,३९६
१९३०–३१	+ २,२४२,६५३	+ १२,७५,१८,११५
१९३१–३२	– ७,६२९,३७७	– ५७,९७,२७,८४२
१९३२–३३	– ८,३५३,८२९	– ६५,५२,२७,९५६
१९३३–३४	– ६,६९५,२९८	– ५७,०५,३५,९६१
१९३४–३५	– ५,६९४,८२०	– ५२,५३,७४,६०७
१९३५–३६	– ४,०१९,२६२	– ३७,३५,५९,९५५
१९३६–३७	– ३,०११,०३६	– २७,८४,६१,१२९
१९३७–३८	– १,७६६,८१७	– १६,३३,१८,१२९
१९३८–३९	– २,३८७,६४७	– २३,२६,०२,०६८
१९३९–४०	– ४,१५५,३४३	– ४४,६४,३०,४२२
१९००–०१ से १९३०–३१ तक ३१ वर्षों का जोड	+ ८९,२४४,५९२	+ ५,४७,७५,४७,८२९
१९३१–३२ से १९३९–४० तक ९ वर्षों का जोड	– ४३,७१३,४२९	– ३,८२,५२,३८,०६९

३

चांदी का आयात (+) या निर्यात* (–)

साल	औस मे वजन	रुपयो मे कीमत
१९००–०१ से १९०४–०५ तक का सालाना औसत	+५७,०४९,२७८	+१०,११,४१,९१४

---

* देखिए फुटनोट, तालिका २ (परिशिष्ट)

तक का सालाना औसत	+८७,०३७,३७२	+१५,४५,४४,०३०
१९१०–११ से १९१४–१५		
तक का सालाना औसत	+६१,०११,३०१	+१०,६१,४१,३२३
१९१५–१६ से १९१९–२०		
तक का सालाना औसत	+१०६,७२५,६१५	+२७,९६,३८,६२५
१९२०–२१ से १९२४–२५		
तक का सालाना औसत	+ ७३,६०८,६२३	+१५,७४,१३,८२७
१९२५–२६	+ ९३,३६३,७५४	+१७,१२,४१,१५०
१९२६–२७	+१२४,२४२,३४५	+१९,८६,८०,३३५
१९२७–२८	+ ९२,८२१,८१३	+१३,८३,६४,६२७
१९२८–२९	+ ६३,८२०,९०९	+ ९,७७,०६,९२६
१९२९–३०	+ ६२,५२०,५४४	+ ८,६२,१२,१९८
१९३०–३१	+ ८०,५३५,९३५	+१०,०७,९३,०५६
१९३१–३२	− ११,१४१,२८१	− ४२,१७,०८८
१९३२–३३	− २४,५१७,२९२	− २,०१,३०,९५१
१९३३–३४	− ५२,९८९,०९०	− ६,३५,७१,४२६
१९३४–३५	− ३८,६४३,८९४	− ५,४०,६४,८०२
१९३५–३६	+ १,५१६,०७८	− ५७,३४,७१९
१९३६–३७	+११०,१११,४६५	+१३,५९,१७,०२४
१९३७–३८	+ ११,९४५,२२३	+ १,५०,८२,८३५
भारतवर्ष	+ १५,७७८,९८४	+ १,५७,२८,२९०
बर्मा	− ६,०३१,९९२	− ४४,५९,५८९
१९३८–३९	+ ४,०३६,५७८	+ ५७,९१,६०६
भारतवर्ष	+ ११,८९९,९६०	+ १,६८,५२,७८०
बर्मा	− ८,३०३,२७५	− १,०७,९४,०६३
१९३९–४०	+ १३,८२२,०९६	+ १,४८,४४,२८७
भारतवर्ष	+ १४,८०६,१४१	+ ८५,६२,९७१
बर्मा	− ६०४,३६२	+ ८१,८०,९८६

४

नोट-प्रसार

लाख रुपए

(साल के अन्त मे)	कुल नोट	सार्वजनिक चलन मे
१८९९–१९००	२८,७४	२२,१०
१९०९–१०	५४,४१	३९,९९
१९१३–१४	६६,१२	४९,९७
१९१८–१९	१,५३,४६	१,३३,५८
१९१९–२०	१,७४,५२	१,५३,७८
१९२०–२१	१,६६,१६	१ ४७,८८
१९२१–२२	१,७४,७६	१,५७,२३
१९२२–२३	१,७४,७०	१,६१,१०
१९२३–२४	१,८५,८५	१,६९,०६
१९२४–२५	१,८४,१९	१,६६,५५
१९२५–२६	१,९३,३४	१,६७,७१
१९२६–२७	१,८४,१३	१,६४,३१
१९२७–२८	१,८४,८७	१,७४,५३
१९२८–२९	१,८८,०३	१,७८,१०
१९२९–३०	१,७७,२३	१,५९,३०
१९३०–३१	१,६०,८४	१,४७,९३
१९३१–३२	१,७८,१४	१,६५,१७
१९३२–३३	१,७६,९०	१,५०,३४
१९३३–३४	१,७७,२२	१,६३ ८८
१९३४–३५	१,८६,१०	१,६३ ५६
१९३५–३६	१,९५,५८	१,६८,८०
१९३६–३७	२,०४,००	१,९४,३५

१९३७-३८	भारतवर्ष	२०६,२०	१७८,२०
	बर्मा	७,८३	७,८३
१९३८-३९	भारतवर्ष	१९६,४७	१७८,३६
	बर्मा	१०,७६	१०,७४
१९३९-४०	भारतवर्ष	२३८,४३	२२५,१०
	बर्मा	१३,७८	१३,४५
१९४०-४१	भारतवर्ष	२५१,८१	२४०,५५
	बर्मा	१७,४४	१७,११
१९४१-४२	भारतवर्ष	३९२,७१	३८१,७३
	बर्मा	२८,३५	२८,३३
१९४२-४३	भारतवर्ष	६५५,११	६४३,५८

५

टकसालों में कब कितने (पूरे) रुपए ढले

			रुपए
चतुर्थ विलियम	१८३५		१६,३९,७८,५७२
विक्टोरिया,	१८४०,	पहली बार	३१,१६,७०,९२४
"	१८४०,	दूसरी बार	७६,६५,६०,९३७
"	१८६२		७०,६९,१२,१७९
"	१८७४		४,३५,२२,४००
"	१८७५		३,०९,९१,५४८
"	१८७६		४,०९,५०,३०१
"	१८७७		१३,४८,०६,०१२
"	१८७८		९,६५,८५,०३३
"	१८७९		८,८७,२८,२२९
"	१८८०		७,२१,८५,५१८
"	१८८१		५५,९७,५७७

"	१८८२		७,१४,८७,५६७
"	१८८३		२,३१,४६,१६१
"	१८८४		४,८४,८८,३२७
"	१८८५		९,९०,३०,२०३
"	१८८६		५,२०,२४,५३२
"	१८८७		८,८६,००,१४८
"	१८८८		७,०७,६८,०००
"	१८८९		७,४६,६८,३१०
"	१८९०		११,७६,४१,८६५
"	१८९१		६,४१,६९,९०३
"	१८९२		१०,४६,५५,१२०
"	१८९३		७,८७,३०,३१०
"	१८९७		१५,२४,७७७
"	१८९८		७५,१९,४१३
"	१९००		११,८१,३९,४९९
"	१९०१		१०,९१,३५,९६१
"	१९०१	(१९०२ मे ढले)	९,३१,३९,३८४
सप्तम एडवर्ड	१९०३		२५,०००
"	१९०३		१०,२३,४७,५०६
"	१९०४		१६,०२,७८,९०८
"	१९०५		१२,७४,६०,१०६
"	१९०६		२६,३७,५०,४३३
"	१९०७		२५,२२,४९,८१६
"	१९०८		३,०९,३२,४९८
"	१९०९		२,२२,९७,३२६
"	१९१०		१,७६,८८,६७३
"	१९१०	(१९११ मे ढले)	५८,२३,२८६
पचम जॉर्ज	१९११		९४,४३,०४९

”	१९१२		१२,४१,८९,२०६
”	१९१३		१६,३२,६५,९५१
”	१९१४		४,८३,७०,१५०
”	१९१५		१,५२,७२,११८
”	१९१६		२१,२९,००,२१०
”	१९१७		२६,४७,८२,८७६
”	१९१७	(१९१८ मे ढले)	१७,७४,०२५
”	१९१८		४१,१८,७६,६०३
”	१९१८	(१९१९ मे ढले)	४०,९४,००६
”	१९१९		४२,३५,१२,२७८
”	१९१९	(१९२० मे ढले)	१,४४,००,०३१
”	१९२०		९,४५,३६,६२९
”	१९२०	(१९२१ मे ढले)	६४,००,०६४
”	१९२०	(१९२२ मे ढले)	५,६४,०००
”	१९२०	(१९२३ मे ढले)	४९,३६,०५०
”	१९२१		५१,१५,१२१
”	१९२२		२०,५१,१५०
षष्ठ जॉर्ज	१९३८	(१९४० मे ढले)	९८,०२,१७८
”	१९४०		२,३५,००,००२
”	१९४१		२४,११,००,००१
”	१९४२		२३,७१,००,००१
		जोड	६९८,७५,९७,९६१

१९२२ और १९४० के बीच नए रुपयो की ढलाई नही हुई।

ढलाई के जो आकडे ऊपर दिए गए है उनमे ऐसे सिक्के भी शामिल है जो समय-समय पर देशी रियासतो के लिए ढाले गए है।

६

चलन की घटा-बढ़ी

हर साल के अन्त मे यह हिसाब किया जाता है कि कितने नोट या रुपए चलन मे गए (Absorption of currency) और कितने चलन से निकल आए (Return of currency)। चलन से यहा मतलब सार्वजनिक चलन से है। रिजर्व बैंक की स्थापना से पहले इसे निश्चित करने का यह तरीका था —

(१) नोटो के सम्बन्ध मे यह देखा जाता था कि कितने नोट जारी किए जा चुके थे और साल के अन्त मे कितने सरकारी खजाने (Treasuries) और इम्पीरियल बैंक की प्रधान शाखाओ मे रह गए थे। जो बाकी बचता वह (सार्वजनिक) चलन मे समझा जाता।

उदाहरण—१९२८-२९ के आरम्भ मे (सार्वजनिक) चलन मे १,७४,५३ लाख रुपए के नोट थे। उसके अन्त मे चलन मे थे १,७८,१० लाख रुपए के नोट। तो इसके माने यह हुए कि उस साल और ३,५७ लाख रुपए के नोट चलन मे गए।

१९३४-३५ के आरम्भ मे (सार्वजनिक) चलन मे १,६३,८८ लाख के नोट थे। उसके अन्त मे चलन मे १,६३,५६ लाख के नोट थे। तो इसके माने यह हुए कि उस साल चलन से ३२ लाख के नोट वापस आ गए।

नोट ज्यादा जारी किए गए—उनका प्रसार बढा—लेकिन नए नोट सरकार के अपने खजाने मे ही पडे रहे तो (सार्वजनिक) चलन मे कोई वृद्धि नही हुई। इसी प्रकार अगर चलन से नोट वापस आए और करेन्सी रिजर्व मे न जाकर सरकारी खजाने मे पडे रहे तो नोट जितने जारी किए जा चुके थे उतने ही खडे रहे—उनके प्रसार मे किसी प्रकार की कमी नही हुई।

(२) रुपयो के सम्बन्ध मे यह देखा जाता था कि कितना सरकारी खजाने (Treasuries) और करेन्सी रिजर्व मे बच रहा, कितना टकसाल

से ढल कर आया और कितना गलाने या फिर से ढालने के लिए टकसाल भेजा गया। इस जोड-बाकी हिसाब से यह पता चल जाता कि चलन में कितना गया या चलन से कितना वापस आया। (इम्पीरियल बैंक की प्रधान शाखाओ मे जो रुपया रहता वह इस हिसाब मे नही लिया जाता था, क्योकि उसका परिमाण बहुत कम होता था।)

उदाहरण—१९३२-३३ के आरम्भ मे रोकड इस प्रकार थी —

सरकारी खजाने मे	१,००	लाख	रुपए
करेन्सी रिजर्व मे	१,०१,९६	,,	,,
जोड	१,०२,९६	,,	,,

साल के अन्त मे रोकड इस प्रकार थी —

सरकारी खजाने मे	९३	लाख	रुपए
करेन्सी रिजर्व मे	९६,३४	,,	,,
जोड	९७,२७	,,	,,

अर्थात् ५,६९ लाख रुपए (सार्वजनिक) चलन मे गए। पर उसी साल १३,२५ लाख रुपए टकसाल मे गलाने या फिर से ढालने के लिए भेजे गए। तो निष्कर्ष यह निकला कि उस साल (१३,२५—५,६९) अर्थात ७,५६ लाख रुपए चलन से निकल आए।

रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद से यह हिसाब इस प्रकार होने लगा है —

अब सरकारी खजाने (Treasuries) के नोट सार्वजनिक चलन के अन्तर्गत माने जाते है। कितने नोट चलन मे गए या कितने वापस आए, यह पता लगाने के लिए सिर्फ रिजर्व बैंक के प्रसार-विभाग (Issue Department) के नोटो की घटा-बढी पर ध्यान दिया जाता है। इसी प्रकार, कितने रुपए चलन मे गए या कितने वापस आए—इसका पता अब रिजर्व बैंक के प्रसार-विभाग की रोकड की घटा-बढी से ही चलता है।

कब कितनी करेन्सी चलन में गई और कब कितनी उसमें से वापस आ गई (—) उसका लेखा नीचे दिया जाता है —

	लाख रुपए		
	रुपए*	नोट	जोड़
१९१४-१५ से १९१८-१९ तक ५ वर्षों का औसत	२२,०८	१६,७२	३८,८०
१९१९–२०	२०,०९	२०,२०	४०,२९
१९२०–२१	२५,६८	–५,९०	–३१,५८
१९२१–२२	–१०,४६	९,३५	–१,११
१९२२–२३	–९,५६	३,८७	–५,६९
१९२३–२४	७,६२	७,९६	१५,५८
१९२४–२५	३,६५	–२,५१	१,१४
१९२५–२६	–८,१७	१,१६	–७,०१
१९२६–२७	–१९,७६	–३,४०	–२३,१६
१९२७–२८	–३,७५	१०,२२	६,४७
१९२८–२९	–३,०३	३,५७	५४
१९२९–३०	–२१,७१	–१८,८०	–४०,५१
१९३०–३१	–२१,५८	–११,३७	–३२,९५
१९३१–३२	३,९३	१७,२४	२१,१७
१९३२–३३	–७,५६	–१४,८३	–२२,३९
१९३३–३४	–३०	१३,५४	१३,२४
१९३४–३५	–३,२१	–३२	–३,५३
१९३५–३६	–९,४१	५,२६	–४,१५
१९३६–३७	–२,४९	२५,५३	२३,०४
१९३७–३८	–६,५२	–८,२३	–१४,७५
१९३८–३९	–१२,६०	२,९८	–९,६२
१९३९–४०	१०,०८	४९,४५	५९,५३

*इसमें रेजगारी शामिल नही है। पर इधर भारत-सरकार-द्वारा जारी किए गए एक रुपए के नोट शामिल है।

१९४०–४१	३३,२३	१९,११	५२,३४
१९४१–४२	७,१८	१५२,४०	१५९,५८
१९४२–४३	४४,९७	२६१,८५	३०६,८२
(केवल भारतवर्ष)			
१९१९–२० से १९३८-३९ तक २० वर्षों का जोड़	—१,३०,५५	५२,०८	—७८,४७
१९१९–२० से १९३८–३९ तक २० वर्षों का औसत	—६,५३	२,६०	—३,९३